विमल मित्र

जन गण मन

जन-गण-मन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

विमल मित्र

अनुवाद
जगत शङ्खधर

राधाकृष्ण

प्रथम हिन्दी संस्करण : 1978
द्वितीय आवृत्ति : 1980

मूल्य
27 रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
2 अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

मुद्रक
भारती प्रिण्टर्स
दिल्ली-110032

"नाट्य विशारद
श्री रासबिहारी सरकार
प्रीतिभाजन को…

प्रस्तावना

मनुष्य साहित्य से बहुत कुछ आशा करता है। आशा करता है आनन्द की, आशा करता है रोमांच की, आशा करता है सामयिक मनोरंजन की। किन्तु उससे भी अधिक जो आशा करता है वह है किसी उपलब्धि की। नाटक से भी मनुष्य उस उपलब्धि की ही प्रत्याशा करता है। साहित्य के पढ़ने या नाटक के अभिनय में आनन्द का अंश गौण है, मुख्य लक्ष्य है उपलब्धि का।

दीनबन्धु मित्र का 'नीलदर्पण' इसी प्रकार का एक नाटक है। पराधीन भारतवर्ष में उस दिन रंगमंच के माध्यम से ही अपनी मर्मवेदना प्रकट कर उन्होंने विक्षुब्ध जनता के मन का क्षोभ दूर किया था।

किसी-किसी ग्रन्थ का इसी प्रकार का अचूक प्रभाव रहता है। और वह प्रभाव इतना दूरव्यापी होता है कि अपने प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणाम-स्वरूप इतिहास के पृष्ठों पर वह अमिट छाप छोड़ जाता है। फ्रांस देश के रूसो अगर 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' नाम की अपनी पुस्तक न लिखते तो क्या 1789 वर्ष की फ्रांसीसी क्रान्ति होती? या बोर्बन वंश के चले आ रहे अत्याचार से फ्रांस की जनता मुक्ति पाती? जर्मन मनीषी फ्रांज काफ़्का अगर 'लेटर टु हिज फ़ादर' नाम की पुस्तक न लिखते तो क्या 1914 साल के विश्वयुद्ध में जर्मनी के सम्राट कैसर विलहेम के अत्याचार से उस देश की जनता को मुक्ति मिलती? कार्ल मार्क्स की 'डास कैपिटल' पुस्तक न लिखी जाने से क्या महामान्य जार के लोहे के शिकंजे को छिन्न-भिन्न

कर सोवियत सरकार की स्थापना हो पाती ? बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ' उपन्यास के 'वन्देमातरम्' गीत ने भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए बहुत अधिक प्रेरणा जुटायी थी, यह बात तो इतिहास-विश्रुत है। रवीन्द्रनाथ यदि 'सोनार बांग्ला आमि तोमाय भालोवासि' गीत न लिखते तो क्या बाँगलादेश का मुक्ति-युद्ध सफल होता? गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिखा था, इसीलिए तो आज भारत-महासागर के हृदय में अवस्थित 'मारिशस' द्वीप ने एक स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्र के रूप में भूगोल के मानचित्र में अंकित होने का गौरव प्राप्त किया है।

इंग्लैंड के मनीषी लेखक चार्ल्स डिकेंस ने एक-एक उपन्यास लिखा जो उस देश की पार्लियामेंट के एक-एक क़ानून के परिवर्तन का साधन बने। तभी जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा था, 'कार्ल मार्क्स और चार्ल्स डिकेंस—दोनों ही सोशल साइंटिस्ट या समाज-विज्ञानी थे। अन्तर केवल यही है कि काल मार्क्स थे जाने-बूझे समाज-विज्ञानी और चार्ल्स डिकेंस अज्ञात रूप से।' बैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी के अवतरण और दर्शन, जो परवर्ती काल में महात्मा गांधी में रूपांतरित हुए, का अन्यतम कारण जॉन रस्किन की पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' और हेनरी डेविस थोरो की दो पुस्तकें 'वाल्डेन' और सिविल डिसओबीडिएन्स' थीं।

जब वातावरण में, आकाश में, वायु में एक विशेष रूप की भाप घूमती रहती है तो मानव-समाज में एक-एक कर युग आते हैं। उसी प्रकार का युग आया था चैतन्यदेव के समकाल में। उस समय सारा आकाश और अन्तरिक्ष प्रेम के रस में भीग गये थे। इसी कारण से अमूल्य वैष्णव साहित्य उत्पन्न हुआ। इसीलिए तब जन्म लिया था चंडीदास, विद्यापति, लोचनदास, ज्ञानदास प्रभृति महाजन लोगों ने। इसी से उस समय प्रेम-रस के काव्य और नाट्यलीला की इतनी बाढ़ आयी थी।

इतिहास के एक महासंधि-क्षण में आर्यदेव के आगमन के पहले यहाँ के आदिम अधिवासियों को पराजित कर राक्षस-वंश में उत्पन्न लोगों ने इस देश का एक भाग शारीरिक शक्ति के ज़ोर से ज़बरदस्ती दख़ल कर लिया था। आर्यदेव के आगमन के बाद राक्षस-लोग उनका यज्ञ विध्वंस करते, उनकी खेती-बाड़ी में विघ्न डालते। रामचन्द्र ने एक दिन उन्हीं

आदिम साधारण अधिवासियों की सहायता लेकर दुर्धर्ष राक्षसों का दमन किया था, अर्थात दुष्टों का दमन किया था। उसी कहानी को लेकर महा-कवि वाल्मीकि ने अपने अमर महाकाव्य 'रामायण' की रचना की थी। इस रामायण ने बड़े से छोटे तक जन-साधारण भारतीय के मन में जिस प्रभाव को अंकुरित किया था उसे आज का प्रत्येक भारतवासी बखूबी जानता है। इसीलिए 'रामायण' सात्विक कहानी होकर भी शक्ति-साधना की कहानी है। और उसी शक्ति-साधना के फलस्वरूप उस दिन रामराज्य की स्थापना सम्भव हो सकी थी।

महाकाव्य 'महाभारत' ने सबके हृदयों में जिस भिन्न प्रकार के विराट प्रभाव का विस्तार किया था वह सब लोग मानते हैं। इस महा-भारत ग्रन्थ के ही एक अंश 'श्रीमद्भगवदगीता' में हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को धर्मराज्य की स्थापना के लिए और तो और अपने आत्मीय बन्धु-बान्धवों पर भी शक्ति का प्रयोग कर वध करने का निर्देश दिया था।

मानव-प्रकृति तीन भागों में विभक्त है—सत्व, रजस्, तमस् में। हमारे रामायण, महाभारत, गीता, भागवत—समस्त ग्रन्थ ही सत्वगुण की प्रशंसा में मुखर हैं। किन्तु तमोभाव को दूर करने में रजोगुण का आश्रय लिये बिना क्या चल सकता है? रामकृष्णदेव सत्वगुण के आधार थे, लेकिन उनकी ही सृष्टि तो स्वामी विवेकानन्द हैं। वही स्वामी विवेकानन्द रजोगुण के प्रतीक थे। वेदान्तवादी होकर भी उन्होंने उद्घोष किया था: 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत'। उन्हीं विवेकानन्द की शिष्या थीं सिस्टर निवेदिता। वह उस ज़माने के कलकत्ता के लाठी के खेल के अखाड़ों में जाकर लड़कों से कहती थीं, 'तुम स्वामीजी के पथ का अनुसरण करो।' क्योंकि शक्ति न रहने से संसार में धर्म और न्याय की
जाकर ... किसी की भी रक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए तो उपनिषद्-
बाबू सिपाही ने पूछा, ...आत्मा बलहीनेन लभ्यः'। इस युग के देशबन्धु चित-
...पी के जवाब ...
पूछते, 'बेट, ... गाड़ियों को ...व रूप में मानते हैं। लेकिन उन वैष्णव ने ही
सर्वजय बाबू जब ...लखाने के अभियोग में अभियुक्त श्री अरविन्द के
ही था। होस्टल के दूसरे ले... देखते-देखते समर्थन दिया था? और सुभाष
स्वदेश अपने कमरे में था। अप...

चन्द्र—देशबन्धु के शिष्य सुभाषचन्द्र, जो नेताजी के रूप में अवतरित हुए थे, वह तो शक्ति-साधना के समर्थक ही थे। नेताजी का प्रसिद्ध कथन था कि 'मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा।' स्वतन्त्रता के पूर्वकाल में महात्मा गांधी के समान अहिंसा के पुजारी ने भी नोआखाली में आत्म-रक्षा के लिए और जन-कल्याण के हित में जिस शक्ति-साधना का समर्थन किया था, वह क्या अकारण था ?

पुराणों में हम देखते हैं कि सत्वगुण के आधार-स्वरूप देवतागण भी वार-वार दानवशक्ति के द्वारा पराजित होकर स्वर्गच्युत हुए थे। यही पराजय उनके मन में घोर अवसाद ले आयी थी। तव उन्होंने देवी महामाया की उपासना द्वारा शक्ति-मंत्र से बलशाली होकर फिर असुर-लांछना से मुक्ति पायी थी। इसी से पृथ्वी पर फिर सत्य, न्याय और धर्म की स्थापना लौट आयी। तभी देखा जा रहा है कि सत्य, धर्म, न्याय, सात्विकता को जीवित रखने के लिए चाहिए शक्ति की साधना !

'जन-गण-मन' उपन्यास हृदयंगम करने के लिए ये वातें अनिवार्य मानकर ही यह प्रस्तावना यहाँ संयुक्त कर दी गयी है।

—विमल मित्र

... क पहले यहाँ
...-वश में उत्पन्न लोगों ने
... ज़ोर से ज़बरदस्ती दख़ल कर
...दि राक्षस-लोग उनका यज्ञ विध्वंस
...डालते। रामचन्द्र ने एक दिन उन्हीं

: ·

प्रत्येक कहानी का एक आरम्भ होता है, और उसका एक अन्त भी होता है। किन्तु एक निर्दिष्ट विन्दु पर पहुँचकर प्रत्येक कहानी का अन्त होने पर भी उसका आरम्भ तरह-तरह से हो सकता है।

जैसे इस कहानी का आरम्भ है। इसका आरम्भ इस प्रकार हो सकता था :

कलकत्ता में उस समय आधी रात थी। जेलख़ाने के अन्दर से टन्-टन् कर रात के दो बजने की आवाज़ सुनायी पड़ी। एक आदमी इतनी रात में राह की उलटी ओर से लोहे के रेलिंग वाले गेट की ओर एकटक देख रहा था। उस आदमी के दाढ़ी और मूँछें थीं। शरीर-भर पर बहुतेरे अत्याचारों और बहुत अनिद्रा की छाप थी। चारों ओर कहीं भी और क़ोई न था। सिर्फ़ गेट के आगे बन्दूक लिये एक सिपाही एकाग्रचित्त इधर-से-उधर क़दम रख पहरा दे रहा था।

वह आदमी धीरे-धीरे रास्ता पार कर गेट के सामने जाकर खड़ा हो गया। चारों ओर सन्नाटा था। दिन के समय जिस रास्ते पर भीड़ और कोलाहल का अन्त न रहता, उस समय वहाँ सब-कुछ निस्तब्ध और निस्पन्द था।

उस आदमी ने सिपाही से कहा, 'सिपाही जी...!'

सिपाही रुककर खड़ा हो गया। बोला, 'क्या है?'

वह आदमी बोला, 'मुझे एक बार अन्दर जाने देंगे, सिपाहीजी? मेरा एक बहुत ज़रूरी काम है...।'

सिपाही ने पूछा, 'परमिट है आपके पास?'

आदमी बोला, 'न, अन्दर एक आदमी को फाँसी लगेगी। अन्दर जाकर आसामी से मैं सिर्फ़ अन्तिम बार एक दफ़ा मिलूँगा...।'

सिपाही ने पूछा, 'आप कौन हैं?'

आबू ...मी के जवाब देने के पहले ही दो-तीन गाड़ियाँ गेट के सामने
पूछते, 'बेट, ...ने गाड़ियों को देखते ही दरवाज़ा खोल दिया, और
सर्वजय बाबू जब ...लख़ाने के अन्दर घुस गयीं, और उसके साथ-
ही था। होस्टल के दूसरे ले... देखते-देखते फिर गेट को ज़ोरों की आवाज़
स्वदेश अपने कमरे में था। अ...

के साथ बन्द कर दिया ।

और जेलख़ाने के तमाम वार्डों से चिल्लाहट हुई, 'वन्दे मातरम्', 'वन्दे मातरम्...!'

उस 'वन्दे मातरम्' की चिल्लाहट से रात का तमाम वातावरण गरमा गया ।

लेकिन नहीं । इस तरह का अति-नाटकीय आरम्भ न कर बिलकुल शुरू से ही शुरू करें । चलिए, एकदम सीधे बलरामपुर चलें, जिस पृष्ठभूमि में इस कहानी का सूत्रपात है ।

रेलवे-ऑफ़िस के टाइम-टेबुल में इस 'बलरामपुर' स्टेशन का नाम बहुत ही छोटे अक्षरों में छपा है । स्टेशन ज़रूर बहुत छोटा है । उससे ज़्यादा छोटा वहाँ का स्टेशन-मास्टर है । लेकिन उससे क्या, इस छोटे-से स्टेशन पर ही कभी देश के बड़े-बड़े लोग आकर उतरे थे । इसी स्टेशन पर आकर महात्मा गांधी उतरे थे । उतरे थे जवाहरलाल नेहरू, उतरे थे उन दिनों के देश के और भी बड़े-बड़े लीडर । इसी स्टेशन से ही आना-जाना करते हैं यहाँ के लीडर हरिसाधन चट्टोपाध्याय ।

लेकिन उस ज़माने और इस ज़माने में बहुत अन्तर है । उन दिनों बलरामपुर से कलकत्ता जाने-आने के लिए मिनी बस नहीं चलती थीं । उन दिनों यातायात का एकमात्र माध्यम था रेलगाड़ी । उसी रेलगाड़ी पर चढ़कर डेढ़ घंटे में ही कलकत्ता पहुँचना हो जाता । बलरामपुर से उसी रेलगाड़ी से कलकत्ता के बाज़ारों में मछली ले जायी जाती । सिर्फ़ मछली ही नहीं, आम, कटहल, छेना, दूध—सब इसी रेलगाड़ी से कलकत्ता पहुँचता । और बलरामपुर के आदमी भी रोज़ाना के काम-काज के लिए रेलगाड़ी पर चढ़कर ही कलकत्ता जाते ।

लेकिन आजकल बलरामपुर का दूसरा स्वरूप है। ...न चट्टोपाध्याय ने बलरामपुर गाँव के लिए बहुत का...दख़ल कर एक स्कूल था, लेकिन वह प्राइमरी स्कूल था ...नका यज्ञ विध्वंस बन गया है । एक कॉलेज भी बन गया है ...न्द्र ने एक दिन उन्हीं

बाबू ने बस द्वारा यातायात की व्यवस्था भी करा दी है। रास्ता-घाट जो कुछ भी सम्भव था उसका उन्होंने इन्तज़ाम कर दिया था। कहा जाये तो इस बलरामपुर की इस वक़्त की जो अवस्था है, उसकी उन्नति के मूल में हैं वही हरिसाधन चट्टोपाध्याय।

हरिसाधन चट्टोपाध्याय के घर से सीधा पाँच मिनट का रास्ता है बलरामपुर रेल-स्टेशन का। वह बहुत दिनों पहले मिट्टी का कच्चा रास्ता था। जब महात्मा गांधी पहले-पहल यहाँ आये तभी पहले-पहल वह पक्का रास्ता बना। हरिसाधन चट्टोपाध्याय की उम्र उस समय कम थी। उन्होंने और बलरामपुर के बन्धु-बान्धवों ने मिलकर खुद सिर पर टोकरी उठा ईंटें डाल-डालकर मिट्टी का रास्ता पक्का कर दिया। उस ज़माने में अँग्रेज़ी सरकार से एक पैसा पाने का भी साधन न था। सभी ने अपनी जेब से चन्दा दिया था; तब वे लोग यह रास्ता बना पाये थे। आजकल जो चट्टोपाध्याय का मकान रास्ते के मोड़ पर सिर उठाये खड़ा है उसी घर में उस दिन महात्मा गांधी थोड़ी देर के लिए उतरे थे। उसके बाद शाम को बलरामपुर के गेंद खेलने के मैदान में उन्होंने व्याख्यान दिया था। उन्होंने कहा था : 'आप लोग अगर अँग्रेज़ी शासन से देश को मुक्त करना चाहते हैं तो अपने हाथों चरखे से, हथकते सूत से कपड़ा बनाकर पहनें। विलायती कपड़े का बायकाट करें।'

स्वदेश ने वे दिन नहीं देखे थे। बाबा से वे सब बातें सुनी थीं। छुटपन से ही स्वदेश सुनता आया कि बाबा ही अपने गाँव के लीडर हैं। बाबा के प्रयत्नों से ही इस बलरामपुर की इतनी तरक़्क़ी हुई है। स्कूल की परीक्षाओं में स्वदेश बराबर फ़र्स्ट रहा। गणित के मास्टर हमेशा कहते, 'देखता हूँ, स्वदेश बाप का नाम रखेगा।'

हाँ, सचमुच स्वदेश ने हरिसाधन चट्टोपाध्याय का नाम रखा। बलरामपुर के स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर कलकत्ता जाकर होस्टल में रह उसने स्कूल फ़ाइनल से आरम्भ कर विश्वविद्यालय की अन्तिम परीक्षा तक सभी परीक्षाएँ सम्मान सहित पास कीं। पिता का नाम उज्ज्वल किया। बलरामपुर का नाम भी उज्ज्वल हुआ।

स्वदेश जिन दिनों कलकत्ता के होस्टल में रहता उन दिनों सर्वजय बाबू बीच-बीच में उसके होस्टल आते।

पूछते, 'बेटे, तुम्हें कोई असुविधा-उसुविधा तो नहीं है?'

सर्वजय बाबू जब भी होस्टल गये तभी देखा कि स्वदेश अपने कमरे में ही था। होस्टल के दूसरे लड़कों में कोई भी अपने कमरे में न था। अकेला स्वदेश अपने कमरे में था। अपने कमरे में बैठा कोई किताब पढ़ रहा था।

सर्वजय बाबू ही कलकत्ता में स्वदेश की देखभाल करते। हरिसाधन चट्टोपाध्याय ने सर्वजय बाबू से कह दिया था, 'भाई, मुझे तो वक़्त-उक़्त मिलता नहीं। तुम ही ज़रा स्वदेश के होस्टल जाकर उसे बीच-बीच में देख आना...।'

होस्टल में घुसने के पहले सर्वजय बाबू दरबान से पूछते, 'स्वदेश बाबू अन्दर हैं ?'

'जी नहीं।'

सर्वजय बाबू थोड़ा निराश हो जाते। कहते, 'नहीं माने ? कहाँ गये ?'

दरबान कहता, 'छत पर, सब लोग पतंग उड़ा रहे हैं।'

पतंग उड़ा रहे हैं ! यह सामने परीक्षा है और इस वक़्त सब छत पर चढ़कर पतंग उड़ा रहे हैं !

लेकिन अन्दर जाकर देखा, नहीं। और सब छत पर जाकर पतंग ज़रूर उड़ा रहे हैं, किन्तु स्वदेश अपने कमरे में अकेला बैठा किताब लिये पढ़ रहा है।

सर्वजय बाबू को देखकर स्वदेश ज़रा शरमा जाता। होस्टल के कमरे में कहाँ बैठाये, यह उसकी समझ में न आता।

कहता, 'आप चेयर पर बैठ जाइये।'

सर्वजय बाबू कहते, 'न, न, तुम बैठो, मैं बैठने नहीं आया हूँ। तुम इस वक़्त कमरे में बैठे हो? और लड़कों के साथ पतंग उड़ाने नहीं गये ?'

स्वदेश कहता, 'नहीं, मेरी परीक्षाएँ तो हफ़्तावार होती हैं।'

उसके बाद सर्वजय बाबू पूछते, 'ठीक है, बहुत दिन से मैं आ नहीं सका था। तुम कैसे हो ?'

स्वदेश कहता, 'अच्छा ही हूँ।'

'खाने-पीने की कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?'

स्वदेश कहता, 'नहीं।'

'आज सवेरे क्या नाश्ता किया था ?'

स्वदेश कहता, 'आज हलुआ और डबल रोटी मिली थी।'

सर्वजय बाबू ज़रा ताज्जुब में पड़ जाते। पूछते, 'क्यों, ये लोग अण्डा-टोस्ट नहीं देते ?'

स्वदेश कहता, 'नहीं, मैं वह सब नहीं खाता।'

सर्वजय बाबू चिन्ता का भाव छिपाते। कहते, 'वह सब क्यों नहीं खाते ? वह सब खाने से तो तुम्हारा शरीर अच्छा रहता। अच्छा ब्रेक-फ़ास्ट खाये बिना शरीर कैसे रहेगा ? तो एक काम करूँ। मैं रोज़ सवेरे

अपने ड्राइवर के हाथों तुम्हें ब्रेकफ़ास्ट भेज दूंगा। और अगर कहो तो तुम्हारे लिए रोज़ मछली-मांस बनवाकर भेज सकता हूँ...।'

बहुत बहस के बाद सर्वजय बाबू अन्त में तरह-तरह के पकवान होस्टल भेज देते। कभी अण्डा, कभी केक, कभी खीर। घर पर जब कभी कुछ अच्छा पकता तो सर्वजय बाबू ड्राइवर के हाथों खुकू से उसे स्वदेश के होस्टल भेजने के लिए कहते।

स्वदेश के होस्टल के लड़के वह सब खा डालते। बहुत बार तो स्वदेश को वह सब छूने का भी मौक़ा नहीं मिलता। एम० एल० ए० हरिसाधन चट्टोपाध्याय का बेटा, उसके बाप के पास बहुत-सा रुपया है। भावी ससुर की बहुत-सी सम्पत्ति उसे मिलेगी। तब वह बहुत कुछ खायेगा। उसके घर में खाने वाला कोई नहीं है। अब हम ही खा लें। हम लोगों के पिता भी इतने अमीर नहीं हैं, ससुर भी नहीं। अब यह मौक़ा हम क्यों छोड़ दें?

और लड़के मज़ाक उड़ाते। कहते, 'तेरी शादी हो जाने पर तो हम लोगों को खाने को कुछ मिलेगा नहीं, इसीलिए अभी जो कुछ भी मिलता है, खा लें...।'

एक दिन सर्वजय बाबू के आने पर स्वदेश बोला, 'मेरे लिए आप खाने के लिए कुछ न भेजा करें, काका बाबू...!'

'क्यों? क्यों?'

सर्वजय बाबू ताज्जुब में पड़ गये। उन्हें लगा कि शायद खाना स्वदेश की पसन्द का नहीं आया।

बोले, 'तो फिर दूसरा खाना भेजूं? खुकू से तुम्हारे लिए मुर्ग़ी का रोस्ट बनाने को कहूँ? वह मुर्ग़ी का रोस्ट बहुत अच्छी तरह बना लेती है, समझे...!'

स्वदेश बोला, 'न, न, वह सब भेजने के लिए ज़रूर मना कर दीजियेगा। यहाँ जो लोग रहते हैं, वे सब मुझसे ग़रीब हैं। उनके सामने वह सब बड़े आदमियों का खाना खाने में मुझे शरम आती है।'

सर्वजय बाबू बोले, 'क्यों, तुम्हारे बाबा की हालत अच्छी है, तुम अच्छा खाओगे-पीओगे। जो ग़रीब [illegible] के लड़के हैं, वे ख़राब खायेंगे। यह तो सीधी बात है। इसमें न तो तारीफ़ [illegible] कोई बात है, न बुराई की—यह सचमुच तुम्हारी ज़्यादती है।'

उसके जवाब में उस दिन स्वदेश कुछ न बोला।

इसके बाद एक दिन सर्वजय बाबू खुद आकर उसे घर ले गये।

स्वदेश पहले तो जाना नहीं चाहता था। लेकिन सर्वजय बाबू ने छोड़ा

नहीं। बोले, 'न, आज तुम्हारे लिए खुकू ने बहुत-कुछ पकाया है, आज मैं तुम्हें लेकर ही जाऊँगा, आज तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।'

सर्वजय बाबू की बहुत बड़ी प्रैक्टिस है। कहते हैं कि हरिसाधन बाबू की बदौलत ही सर्वजय बाबू की यह हालत है। हरिसाधन बाबू ने छुटपन से ही तय कर लिया था कि सर्वजय की लड़की के साथ वह अपने लड़के की शादी करेंगे। इससे दोनों के घर का पैसा घर में ही रह जायेगा। और साथ-ही-साथ रोज़गार-वाणिज्य की ओर से भी धन-प्राप्ति होगी। सर्वजय मुखर्जी के लिए यह सम्बन्ध बहुत लाभ का सौदा है।

सर्वजय बाबू ने कहा था, 'लड़की की शादी के बारे में मुझे और कुछ नहीं सोचना है भाई, मैं सिर्फ़ अपनी पत्नी की बात सोचता हूँ कि वह यह शादी न देख पायी, मुझे यही दुख रह गया...।'

हरिसाधन चट्टोपाध्याय भी लड़के के मामले में निश्चिन्त थे। बोले थे, 'भाई, इस मामले में मैं भी निश्चिन्त हूँ। अपने लड़के का भविष्य मैंने तुम्हारे कंधों पर थोप दिया है। अब से स्वदेश का भला-बुरा सब-कुछ तुम्हें ही देखना होगा।'

तभी से सर्वजय बाबू ही स्वदेश का भला-बुरा बराबर देखते आ रहे हैं। परीक्षा के समय बाहर के रास्ते पर गाड़ी लेकर वह खड़े रहते। परीक्षा समाप्त होते ही ड्राइवर उसे लिवा ले जाकर गाड़ी पर बिठाता। साथ में डाब रहता, सन्देश रहता, और भी तरह-तरह की खाने-पीने की चीज़ें रहतीं।

वह कहते, 'लो, पहले डाब खाओ, उसके बाद सन्देश खाना। खुकू ने तुम्हारे लिए अपने हाथ से सन्देश बनाये हैं। उसने बड़े अच्छे सन्देश बनाना ख़ुद ही सीखा है। बलरामपुर के गौर मोदक के मुक़ाबले में भी उसके सन्देश खाने में अच्छे हैं। खाओ, खाकर देखो।'

उसके बाद पूछते, 'आज की तुम्हारी परीक्षा कैसी हुई?'

स्वदेश कहता, 'अच्छी ही हुई।'

सर्वजय बाबू कहते, 'अच्छी क्यों, कहो बहुत अच्छी।'

उस दिन सर्वजय बाबू के घर पहुँचकर मेज़ पर सजाया खाना देखकर स्वदेश ताज्जुब में पड़ गया। इतना खाना!

बोला, 'इतना तो मैं खा न सकूँगा, काका बाबू!'

काका बाबू दुलार के स्वर में धमकाते। कहते, 'न, न, होस्टल का खाना खाते-खाते तुम्हें अरुचि हो गयी है। यही तो तुम्हारी खाने की उमर है। खाओ, खाओ, अभी ख़ूब खा लो...।'

उसके बाद लड़की को बुलाकर कहते, 'अरे खुकू, अपना वह स्वेटर तो

स्वदेश को दिखाना...।'

खुकू कहती, 'वह अभी पूरा नहीं हुआ।'

काका बाबू कहते, 'पूरा न सही, जितना हुआ है उतना ही दिखा न। स्वदेश देखे तो कि डिज़ाइन कैसा है।'

उसके बाद अधबुना स्वेटर लेकर काका बाबू स्वदेश को दिखाते। कहते, 'देखो, देखो, खुकू ने यह तुम्हारे लिए बुना है। देखते हो, उसने तुम्हारे लिए यह रंग ख़ुद पसन्द किया है। रंग अच्छा है न ?'

स्वदेश खाते-खाते उस ओर देखता। न देखना अभद्र माना जाता है, इसीलिए देखता। कहता, 'अच्छा है।'

काका बाबू उत्साहित होकर पूछते, 'तो तुम्हें अच्छा लगा ?'

स्वदेश कहता, 'हाँ, अच्छा लगा।'

काका बाबू कहते, 'मैं जानता था कि तुम्हें अच्छा लगेगा। जानते हो स्वदेश, मैंने बराबर देखा है कि तुम्हारा और खुकू का टेस्ट एक तरह का है !'

जयन्ती का टेस्ट अच्छा है, यह हमेशा से उसके पिता सर्वजय बाबू ही सबसे कहते आये हैं। सारे तो बापों के लिए उनके बेटे-बेटी सोने की डली के समान होते हैं। लेकिन सर्वजय बाबू के निकट उनकी बेटी मानो अतुलनीय हो। वह सिर्फ़ स्वदेश से ही नहीं, अपने मुवक्किलों से भी मौक़ा पाते ही कहते।

कहते, 'यह देख रहे हो न, इस कमरे के परदों का डिज़ाइन। ये सब जयन्ती की पसन्द से ख़रीदे गये हैं।'

सर्वजय बाबू कभी स्वदेश के होस्टल में घर का बना खाना भेज देते, कभी लड़की के हाथ उसके लिए स्वेटर बनवाकर भेज देते। और कभी घर पर बुलाकर ले आते और पेट-भर खिलाते। किसी दिन जो लड़का उनका दामाद बनेगा उसके लिए वह शुरू से ही एक दुलार और ख़ातिरदारी का बड़ा इन्तज़ाम करते।

सब बातें अभी कह ही क्यों रहा हूँ ? बाद की बात बाद में कहना

ही अच्छा है। अब सीधे-सीधे बात कहूँगा। बिलकुल शुरू से ही शुरू करता हूँ। इस बार बिलकुल कहानी के मूल-पात्र हरिसाधन चट्टोपाध्याय को लेकर ही शुरू करता हूँ। उसके बाद एकदम हरिसाधन चट्टोपाध्याय के बेटे स्वदेश चट्टोपाध्याय, मुक्ति, संध्या, जयन्ती, कानाई घोष आदि सब की बात कहूँगा। क्योंकि इन सारे पात्रों को लेकर ही तो यह उपन्यास है।

जिस दिन से कहानी कहने का भार शौक से अपने सिर ले लिया, उसी दिन से मेरा दिन का चैन चला गया, रात की नींद ने विदा ले ली। कहानी की तलाश में उस दिन से ही आकाश-पाताल-अन्तरिक्ष में घूमता रहता हूँ। इस तरह कहानी की तलाश में कई बार ट्रेन में चढ़कर तमाम दुर्गम गाँवों में गया हूँ। पैदल चलकर कितने बड़े-बड़े रास्तों को नापा है। पूरी तौर पर अपरिचित अंचल में कितनी ही बार कितनी मुसीबतों में पड़ा। और कितनी बार निराश होकर जान बचाकर घर लौटना पड़ा। लेकिन उससे भी मैं रुका नहीं। अब लोगों के तक़ाज़े से फिर एक दिन अनिर्दिष्ट की ओर पैर बढ़ाया है।

हरिसाधन बाबू का काम भी ठीक मेरी ही तरह सख्त काम था। ठीक मेरी ही तरह हरिसाधन बाबू कहते, 'तुम लोग ही तो मेरा भरण-पोषण करते हो विपिन, तुम लोगों के कारण ही तो मैं जिन्दा हूँ।'

बड़े बाबू की बात सुनकर विपिन वग़ैरह बड़ी लज्जा में पड़ जाते। कहते, 'हुज़ूर, आप यह क्या कह रहे हैं! आप हैं तो हम भी ज़िन्दा हैं, आप तो बड़ी उलटी बात कह रहे हैं।'

हरिसाधन बाबू कहते, 'नहीं भाई नहीं, वे सब दिन और ज़माना बदल गये हैं। अब तुम लोग ही सब-कुछ हो, मैं कुछ भी नहीं। तुम चलाओगे तो मैं चलूँगा। तुम हुक्म करोगे, मैं काम करूँगा।'

बहुत विनयी, बहुत नम्र, बड़े सज्जन थे इस बलरामपुर के हरिसाधन बाबू। इस क्षेत्र से विधानसभा के सर्वसम्मत एम० एल० ए० थे वह। लोग उन्हें अपनी तबीयत से ही वोट दे आते।

जिस दिन चुनाव होता उस दिन वह निस्पृह होकर घर की बैठक में बैठे रहते। जो कोई घर आता उसे वह ख़ातिर से बैठाते। ज़रूरत होती तो चाय पिलाते। बातें करते-करते पूछते—'तुम लोग शायद वोट दे आये?'

विपिन वग़ैरह कहते, 'जी हाँ, मालिक।'

'किसे वोट दिया? मुझे तो नहीं दिया?'

विपिन वग़ैरह कहते, 'क्या कह रहे हैं मालिक, आपको वोट न देकर

क्या उस कानाई घोष को वोट देने जायेंगे ? कानाई घोष का अपना कहने को रहने-सहने का कुछ नहीं, वह हमारा क्या भला करेगा ?'

हरिसाधन बाबू कहते, 'यह लो, तुम लोगों ने भी मुझे वोट दिया। यही तो तुम लोग मुझे बड़ी मुश्किल में डाल देते हो। बताओ तो मैं तुम लोगों के लिए और कितना करूँगा ? बलरामपुर में रास्ता नहीं था, रास्ता बनवा दिया। यहाँ डाकघर नहीं था, डाकघर बनवा दिया। खेत-खलिहान में पानी के अभाव में खेती नहीं होती थी, सिंचाई की व्यवस्था करा दी। अकेला मैं तुम्हारे लिए कितना कर सकता हूँ ? स्कूल-कॉलेज सभी तो मैंने बनवा दिये। फिर उसके सिवा मेरी उमर भी देखो तो क्या हो गयी है ! उमर तो तुम्हारे लिए रुकी नहीं रहेगी।'

विपिन वग़ैरह कहते, 'आपकी ऐसी क्या उमर हुई, हुजूर ! गांधी महाराज की कितनी उमर हो गयी थी, फिर भी तो वह कितना काम कर गये थे।'

'देख रहा हूँ कि तुम बहुत बेअदब हो गये हो। मैं कहाँ का हरिदास हाजरा ! मेरे साथ उस महापुरुष की तुलना करोगे ? उनके साथ मेरा नाम लेते तुम्हें शरम नहीं आती ?'

कहकर सामने की दीवार पर टँगे महात्मा गांधी के चित्र की ओर आँख मूँद दोनों हाथ जोड़ बड़ी देर तक हाथ सिर से लगाये, प्रणाम करते। मानो विपिन आदि के किये अपराध को अपना ही मानकर उनके अपराध के परिमार्जन के लिए प्रार्थना कर रहे हों।

उसके बाद विपिन आदि की ओर देखकर कहते, 'तुम्हें याद है विपिन, जब गांधीजी बलरामपुर आये थे ? याद है तुम्हें ?

विपिन वग़ैरह कहते, 'जी, हम तब छोटे थे, बाबा-काका से वह कहानी सुनी है।'

'तो सुनाता हूँ, सुनो ! यह तुम लोग जहाँ बैठे हो, यहीं पर एक आराम-कुर्सी डालकर मैंने उन्हें बैठाया था, और मैं बैठा था उनके पैरों के पास।'

'उनके पैरों के पास ?'

'हाँ भाई हाँ, उनके पैरों के पास। उस तरह के महापुरुष के पैरों के पास बैठने का सौभाग्य कितने लोगों को मिला है ? सो उसी समय गांधीजी ने मुझसे कहा था—हरिसाधन, तुम गाँव की भलाई के लिए काम करते जाओ। यानी हरिसाधन, तुम अपने गाँव की अच्छाई के लिए काम करते रहो।...उसके बाद कहाँ गये वह गांधीजी और कहाँ गये वे अँग्रेज ! तभी लगा कि देश के साधारण आदमी की सेवा में ही अब अपना जीवन बिता दूंगा।'

विपिन वग़ैरह कहते, 'हम वही वात तो कहते हैं हुज़ूर, मालिक आदमी नहीं, देवता हैं।'

मालिक ख़फ़ा हो जाते। कहते, 'देखो भाइयो, तुम अपनी यह ख़ुशामदी वातें मुझे और न सुनाना। देख रहा हूँ कि ख़ुशामद कर-करके ही तुम मेरा सत्यानाश कर दोगे। जितना मनुष्यत्व मुझमें था, देख रहा हूँ कि वह भी तुम लोगों की वजह से न रहेगा।'

विपिन-दा कहते, 'आप खुशामद में भूल नहीं जाते, यह वात वलरामपुर के जानवर तक जानते हैं, हुज़ूर।'

इस तरह रोज़ ही वैठक होती। कभी गांधीजी की वात, कभी पंडित नेहरूकी वात, कभी डॉ० विधान राय की वात कहकर वह मजलिस जमाते। कभी ज़ेलख़ाने की बातें सुनकर भी सवको मन्त्रमुग्ध किये रहते।

विपिन वग़ैरहकहते, 'आप वह जेल काटने की वात वताइए, हुज़ूर।'

हरिसाधन वावू कहते, 'वह वात सुनायी तो है तुमको कई वार, और कितनी वार कहूँगा ?'

विपिन आदि कहते, 'न हुज़ूर, इन लोगों ने वह सव नहीं सुना है, ये सव आजकल के लड़के हैं। अव ये सव नक्सल हुए जा रहे हैं, माओत्से-तुंग के भक्त ये भी सुनें कि हमारे देश में ही माओत्से-तुंग से भी वड़े नेता हैं। इन सवको भी वह सव सुनना-जानना उचित है।'

हरिसाधन वावू बोले, 'धत्, उस तरह कानाई घोष की तरह अपना ढोल ख़ुद बजाना मुझे पसन्द नहीं। मैं उस सवसे नफ़रत करता हूँ। मैं महात्मा गांधी का शिष्य हूँ भाई, मुझे वह सव नहीं करना है। यह जो वलरामपुर गाँव के लिए इतना कुछ करता हूँ वह क्या कभी अपने मुंह से लोगों से कहता फिरता हूँ ? वताओ, तुम सवसे कभी वे वातें कहीं ? चुप क्यों हो, बोलो न ?'

विपिन वग़ैरह इस वात का कोई जवाब न देते। कुछ देर वात कहते, 'चुनाव का नतीजा कव निकलेगा, हुज़ूर ?'

हरिसाधन वावू कहते, 'वह मैं कैसे जानूंगा ! मैं न तो सात में हूँ, न पाँच में, वह सव सरकारी काम-काज है, मैं कैसे जानूंगा ? तुम तमाम लोगों ने जिसे वोट दिया है वही जीतेगा। तुम अगर चाहते हो कि मैं देश-सेवा करूँ तो मैं देश-सेवा करूँगा। पर यह भी कहे देता हूँ, चुनाव में मैं जीतूँ या न जीतूं, देश की सेवा मैं करता ही रहूँगा। देश-सेवा का भाव मेरी रग-रग में है। मेरे पड़दादा के दादा के ज़माने से यह नशा हमारे ख़ून में धँस गया है। अब यह नशा छोड़ न सकूंगा—तीन-चार पीढ़ियों का नशा क्या आसानी से छोड़ा जाता है, भाई ?'

विपिन वग़ैरह कहते, 'छोटे बाबू को भी देखते हैं कि यह नशा लगा है, हुज़ूर।'

हरिसाधन बाबू कहते, 'सो लगेगा नहीं ? मैंने इसीलिए तो उसका नाम रखा है स्वदेश...। मैंने स्वदेश से यही तो कहा है। कहा है, खाने को मिले या न मिले बाबा, देश के लोगों की बात मत भूलना। जितने दिनों देश का एक आदमी भी पैसे के अभाव से भूखा रहेगा, उतने दिन तुम देश की सेवा करते रहना। यह प्रतिज्ञा मैंने स्वदेश से करा ली है। जानते हो ?'

बातें कभी पूरी न होतीं। बातों के बीच में नन्द कमरे में आ जाता। कभी-कभी आकर कहता, 'बड़े बाबू, आपका टेलीफ़ोन आया है...।'

हरिसाधन बाबू कहते, 'कह दो, अभी बाबू व्यस्त हैं। काम के वक़्त लोग क्यों टेलीफ़ोन करते हैं, समझ में नहीं आता। देख रहा है, मैं इन लोगों के साथ बातें कर रहा हूँ।'

नन्द कहता, 'जी हाँ, मैंने यह कहा था, फिर भी बोले बहुत ज़रूरी है।'

'कौन टेलीफ़ोन कर रहा है ?'

'जी, टेलीफ़ोन कलकत्ता से है।'

'कलकत्ता से ?'

कलकत्ता का नाम सुनते ही हरिसाधन बाबू के चेहरे की शकल जैसे बदल जाती। लेकिन वह चुनाव का दिन था। दूसरा आदमी होता तो आकाश-पाताल एक कर देता। लेकिन हरिसाधन बाबू की बात अलग है। उस ओर से वह बिलकुल ही निस्पृह हैं। लोग उन्हें वोट दें या न दें, उससे उनका कुछ आता-जाता नहीं।

वह खड़े हो गये। बोले, 'देखो तो, मैं तुम्हारे साथ ज़रा सुख-दुख की बातें करूँ, उसका भी मौक़ा नहीं। बस बुलाहट पर बुलाहट आयेगी।'

विपिन वग़ैरह बोले, 'न हुज़ूर, हम मामूली लोग हैं, हमारी बात छोड़ें। आप हमारे साथ बातें करते हैं, यही हमारे चौदह पुरखों का भाग्य है। हम चलें हुज़ूर, आप जाकर टेलीफ़ोन लें।'

कहकर विपिन आदि एक साथ चले गये।

यह सब पहले ज़माने की बात है। पहला ज़माना कहने से यह सब अब नहीं होता, ऐसी बात नहीं है। यह घटना बलरामपुर में अभी भी होती है। अभी भी हरिसाधन बाबू जीवित हैं। गौरव के साथ और अच्छी तन्दुरुस्ती के साथ पूरे गाँव के लोगों पर राज करते जा रहे हैं। इस गाँव में किसी

के साथ किसी का झगड़ा हो तो फ़ैसला कौन करेगा ? वही हरिसाधन बाबू—हरिसाधन चाटुर्ज्या मशाई। किसी के घर व्याह या श्राद्ध हो तो सारा काम-काज कौन संभालेगा ? वही हरिसाधन बाबू। वही हरिसाधन चाटुर्ज्या मशाई। ज़मीन-जायदाद लेकर भाई-भाई में, पट्टीदारों में अगर झगड़ा हो तो उसे कौन निपटायेगा ? वही हरिसाधन बाबू। हरिसाधन चाटुर्ज्या मशाई।

इस बलरामपुर में महाराजा कहो, राजा कहो, ज़मींदार कहो, बुज़ुर्ग कहो, या नेता कहो—सब वही एक हरिसाधन चाटुर्ज्या मशाई को ही कहा जाता है।

इस चाटुर्ज्या वंश का जिस तरह एक अन्त है, उसी तरह एक आदि भी है। तलाश करने पर एक लम्बी जड़ भी मिलेगी।

यहाँ जब पहले ज़िला काँग्रेस की स्थापना हुई तो सर्वसम्मति से अध्यक्ष हुए हरिसाधन बाबू। इस बीच कलकत्ता से काँग्रेस की बाढ़ आयी। आये एक दिन सुभाष बोस। आये किरणशंकर, आये जे० एम० सेनगुप्त। उस समय हरिसाधन बाबू के पिता शम्भुसाधन जीवित थे। काँग्रेस-ऑफ़िस की स्थापना हुई। हरिसाधन बाबू उस समय उम्र के छोटे थे। उन्हीं शम्भु चाटुर्ज्या मशाई की बैठक में ऑफ़िस बना। गाँव के लोगों का वहाँ एक ठिकाना बना। उस समय से ही वह खद्दर की धोती, और ऊपर खद्दर की चादर लेने लगे।

पहले-पहल यह चीज़ अच्छी लगने पर भी अन्तिम समय में शम्भु चाटुर्ज्या मशाई को अच्छी न लगी। क्योंकि लड़का हरिसाधन उसी समय से काँग्रेस के पीछे दीवाना हो गया था। उसने बहुत ज़ोरों से काम करना शुरू कर दिया था।

एक दिन पिता ने बेटे को पास बुलाया। हरिसाधन बाबू पिता से बहुत डरते थे।

पूछा, 'दिन-भर कहाँ रहते हो ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'काँग्रेस के काम में...।'

'सो काँग्रेस के काम में दिन-भर दीवाना रहने पर तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई कौन देखेगा ?'

'जी, वह भी तो मैं करता हूँ।'

शम्भु चाटुर्ज्या मशाई बोले, 'ख़ाक करते हो ! समझते हो कि मैं कुछ नहीं देखता ? दिन-रात सिर्फ़ छोटे लोगों के साथ घूमना क्या अच्छी बात है ? वे भी क्या आदमी हैं ? उनके साथ मिलने से क्या फिर तुम्हें कोई संभ्रान्त व्यक्ति मानेगा ?'

तभी कलकत्ता के प्रदेश काँग्रेस-ऑफ़िस से शराब की दूकानों पर पिकेटिंग का हुक्म आया। शम्भु चाटुर्ज्या मशाई डर गये। लड़के से कह दिया, उस सब झमेले में न रहे। अपने घर की बैठक से काँग्रेस-ऑफ़िस के काग़ज़-पत्तर-खाते, मेज़-कुर्सी—सब निकालकर दरवाज़े के अन्दर से कुंडी लगा ली जिससे कि फिर कोई उस कमरे को काम में न ला सके।

लेकिन उससे क्या होता, देश-सेवा जिसे जन्म से ही खून में मिल गयी हो वह कैसे देश-सेवा से पीछे रहेगा ?

उस दिन रात को शम्भु चाटुर्ज्या मशाई खा-पीकर सोने जा रहे थे कि तभी पूछा, 'खोका कहाँ है, हरिपद ? खा-पीकर शायद सो गया ?'

हरिपद मालिक का ख़ास नौकर था। बोला, 'जी, खोका बाबू तो घर आये नहीं ...।'

'इतनी रात गये भी घर नहीं आये ? समझता हूँ कि फिर उन निकम्मे लोगों के साथ अड्डेबाज़ी कर रहा है ?'

उसके बाद हुक्म दिया, 'जा, जहाँ से हो सके, उसे बुलाकर ले आ। मैं यहीं बैठा हूँ, उसके आने पर ही मैं सोने जाऊँगा।'

लेकिन हरिपद को तकलीफ़ उठाकर तलाश करके लाना न पड़ा। उसका समाचार थाने से पुलिस का सिपाही ही आकर बता गया। शराब की दूकान पर पिकेटिंग करने के लिए पुलिस ने उसे ले जाकर जेल की हवालात में बन्द कर दिया है। उसके बाद जब कचहरी में वह मुक़दमा आया तो उसे छः महीने की जेल हो गयी।

शम्भु चाटुर्ज्या मशाई उस ख़बर को सुनकर बीमार पड़ गये। और उस समय के बीमार पड़े तो फिर वह बीमारी उनके जीवन में अच्छी न हुई।

हरिसाधन बाबू इस घटना को विस्तार के साथ सबको बताते।

कहते, 'देश का काम करने में उन्होंने अपना कितना नुक़सान किया है, उसे आज कोई नहीं जानता। और मैं कानाई घोष की तरह उन सब बातों का प्रचार करता भी नहीं फिरता।'

श्रोता लोग कहते, 'आप कानाई घोष से अपनी तुलना न करें, हुज़ूर ! कानाई घोष भी क्या आदमी है ?'

हरिसाधन बाबू कहते, 'अरे, आदमी नहीं तो जानवर कहूँ ? जानवर क्या आदमी की तरह बातें कर सकता है ? उस दिन मीटिंग में कानाई घोष ने क्या कहा था, मालूम है ?'

'जी हाँ, सब मालूम है हुज़ूर, हमने सब सुना है...।'

'न, तुम्हें कुछ नहीं मालूम है। मेरे कानों में सब पड़ा है। कहा कि मैं

पूँजीपति हूँ। मैं पूँजीपतियों का दलाल हूँ। बात तो सुनो ! और बलरामपुर के लोग भी सब ऐसे गधे हैं कि उन्होंने उस बात का कोई विरोध नहीं किया। सब नमकहराम हैं। समझे विपिन, सब नमकहराम! मैंने जिन्दगी-भर जिनके लिए इतना कुछ किया, जिनके लिए मैंने इतनी जेल काटी, जिनके लिए मैंने अपनी गाँठ का पैसा बरबाद कर शरीर का खून तक दिया उन्होंने कानाई घोष के उस व्याख्यान को ध्यानपूर्वक चुपचाप सुना !'

श्रोता कहते, 'आप उसके लिए दुख न करें हुजूर, वे लोग सचमुच गधे हैं। आजकल के छोकरों की बात छोड़ें। वे तो अपने बाप-दादों तक की नहीं सुनते !'

'अरे, मुझे क्या चुनाव के लिए खड़े होने की ऐसी ज़रूरत है कि घर फूँक तमाशा देखूँ ? मेरे लिए कोई काम-काज नहीं है ? तो देश के लिए शरीर का इतना खून पानी कर क्यों मरता फिरूँ ? तुम लोग ही बताओ, क्यों मरूँ ?'

श्रोता लोग कहते, 'आप देश की भलाई चाहते हैं, इसीलिए तो इतना करते हैं।'

हरिसाधन बाबू कहते, 'अरे नहीं, वह क्या ? मेरे सिवा क्या देश के लोगों की भलाई करने वाला कोई नहीं है ? बहुत लोग हैं। देश के लोगों का भला करने वाले लोगों की क्या कमी है ? तलाश करके देखो तो कितने लोगों ने हमसे ज्यादा दिन जेल काटी है ! कितने लोगों ने पुलिस की गोली से जानें दी हैं। और मैं ऐसा पाखंडी कि डर के मारे देश के लिए जान भी न दे सका ! तो फिर देश के लिए इतना क्यों कर रहा हूँ, बताया न ? महात्मा गांधी के लिए। तुमसे उस दिन बताया था कि गांधीजी ने मुझसे कहा था—हरिसाधन, तुम गाँव की भलाई के लिए काम करते रहो। उस बात से ही हमारी यह हालत है। उसी के लिए आज भी चुनाव में खड़ा होता हूँ।'

लेकिन यह सब भी अतीत की बात है।

बलरामपुर को बाहर से देखने पर वह बहुत शान्त और शिष्ट क्षेत्र

है। ट्रेन से या बस से उतरकर पहले ही दिखायी पड़ेगा कि मिठाई की दूकानों की शीशे की अलमारियों में थालों में रसगुल्ले, सन्देश, राजभोग सजाये गये हैं।

सवेरे पाँच बजे बलरामपुर में पहली डाउन ट्रेन आती है। पैसेंजर लोग उसके पहले ही आ जाते हैं। उन सबके लिए चाय चाहिए। ठंडी चाय होने से काम नहीं चलेगा। एकदम होंठों को गरम कर देने वाली चाय न होने से ख़फ़ा हो जायेंगे। उसके बाद ज्योंही लाइन क्लीयर की घंटी बजे, उसके साथ-ही-साथ वे प्लेटफ़ार्म की ओर चले जाते।

स्टेशन पर प्लेटफ़ार्म की दीवार पर बड़े-बड़े पोस्टर लगे हैं :

'बलरामपुर के देश-सेवक
हरिसाधन चट्टोपाध्याय को
वोट देकर
जन-गण के हाथ मज़बूत करें।'

जो लोग पोस्टरों को देखते हैं वे जानते हैं कि चुनाव में हरिसाधन बाबू की हार नहीं होगी। उस 1933 के साल से जन-गण का हाथ मज़बूत किये हुए हैं हरिसाधन चट्टोपाध्याय मशाई। इस बेटे के लिए ही एक दिन शम्भुसाधन चट्टोपाध्याय मशाई के प्राण गये थे। उन्होंने सोचा था कि देश-सेवा का व्रत लेकर लड़का उनकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर डालेगा।

लेकिन वैसा हुआ नहीं।

शम्भुसाधन बाबू जो सम्पत्ति छोड़ गये थे, उस सम्पत्ति का नष्ट होना तो दूर रहा, हरिसाधन बाबू ने उसे दस गुना कर दिया। वह भी अपने बेटे स्वदेश को समझाते।

पूछते, 'कहाँ था इतनी देर से ?'

स्वदेश कहता, 'मास्टर साहब के घर।'

'मास्टर साहब के घर क्यों ?'

'पढ़ा हुआ समझने के लिए।'

'पढ़ा हुआ समझने के लिए मास्टर साहब के घर क्यों ? मास्टर साहब तो सवेरे ही पढ़ाने आयेंगे।'

स्वदेश कहता, 'एक जगह समझ में नहीं आया, कल को मेरी परीक्षा है। इसीलिए...।'

फिर भी उस पर बहुत ही नज़र रखते। बचपन की उम्र बहुत ख़राब होती है। इसी उम्र में लड़के बिगड़ जाते हैं। हरिसाधन बाबू खुद ही स्कूल के प्रधान हैं। उनके बेटे को कोई फ़ेल नहीं करेगा। फिर भी उनको डर लगा रहता। वह मास्टरों से पूछते, 'मास्टर, स्वदेश कैसा पढ़ता-उढ़ता

है ? वह पास-वास हो जायेगा ?'

प्रधानजी को देखकर मास्टर संभ्रम के साथ प्रणाम करके कहते, 'आप कह क्या रहे हैं ! स्वदेश क्या पास ही होगा ? उसे सोने का मेडल मिलेगा।'

'ऐसी वात है ?'

'मुझे तो यही लगता है, सर। ऐसा हीरे-सा लड़का हमारे स्कूल में दूसरा नहीं है।'

हरिसाधन वावू विश्वास न करने का भाव दिखाते।

कहते, 'क्या पता वावू, प्रधान के वेटे को गोल्ड मेडल देने से दूसरे लड़कों के वाप सन्देह न करें। देखो मास्टर, वे लोग यह न कहें कि मैं प्रधान हूँ इसलिए तुम लोगों ने मेरे लड़के को सोने का मेडल दिया। वावा, मैं वह सव पक्षपात ज़रा भी पसन्द नहीं करता।'

वात बिलकुल खरे देशसेवक की तरह ही थी। न, सचमुच हरिसाधन वावू खरे देशसेवक हैं। उनके लड़के को ज़वरदस्ती तुम लोग फ़र्स्ट न करना। 'वड़ा आदमी होने की वजह कोई ख़ास रियायत करने से मैं प्रधान की पोस्ट से इस्तीफ़ा दे दूँगा, कहे दे रहा हूँ।'

स्वदेश को उन्होंने फिर बुलवा भेजा।

वोले, 'तुम अव वड़े हो गये हो, समझे ? अव तो तुम्हें चारों ओर देख-सुनकर, सोचकर चलना उचित है।'

स्वदेश की समझ में न आया कि उसे पास बुला-वैठाकर इन सव वातों को कहने की वावा को अभी क्या ज़रूरत पड़ गयी !

वोला, 'मैं तो सोच-समझकर ही सब काम करता हूँ।'

'न, देखो, मेरे वावा ने भी मुझे एक दिन पास बुलाकर यही सव वातें कही थीं—मैं सव-कुछ देखकर, सुनकर, सोचकर तव काम करूँ। वावा ने चाहा था कि मैं गाँव के छोटे लोगों से न मिलूँ-जुलूँ। सो मैंने क्या किया, जानते हो ?'

स्वदेश कुछ न कहकर चुप रह गया।

हरिसाधन कहने लगे, 'मैं देख-सुन-सोचकर काम करता। लेकिन वावा की वह वात मैंने नहीं मानी, मैं ग़ाँव के छोटे लोगों के साथ मिलता-जुलता रहा।'

स्वदेश ने पूछा, 'छोटे लोग कौन ?'

'यही समझो, हमारी रिआया। जिन्हें हम मोची, किसान, शूद्र कहते हैं। उन दिनों उनको ही छोटे आदमी माना जाता था। अव ज़रूर वह सव नहीं रहा, पता है क्यों ? महात्मा गांधी के कहने से। अव हम सवको आदमी मानते हैं। अव हम उन्हें मनुष्यत्व की मर्यादा देते हैं। लेकिन उन

दिनों लोगों का और तरह का ख़याल था। महात्मा गांधी ही मुझे इस कमरे में वैठकर कह गये थे—हरिसाधन, तुम अपने गाँव की भलाई के लिए काम करते रहो। सो मैं बाबा की बात सुनकर महात्मा गांधी की बात बराबर सुनता-मानता आया।'

उसके बाद थोड़ा रुककर बेटे की ओर देखकर-पूछा, 'अच्छा, बताओ तो, बाबा की बातें न सुनकर मैंने अच्छा किया या बुरा किया?'

स्वदेश की समझ में न आया कि क्या जवाब दे!

हरिसाधन बाबू बोले, 'बोलो, जवाब दो, बताओ तुम्हारी क्या राय है?'

फिर भी स्वदेश कुछ न कह सका। एक ओर पिता और दूसरी ओर महात्मा गांधी, किसकी बात का मूल्य ज़्यादा है? कौन अधिक पूज्य है?

हरिसाधन बाबू ने और अधिक आग्रह न किया। बोले, 'अभी तुमको इसका जवाब देने की कोई ज़रूरत नहीं। पर यह याद रखो कि मैंने अपने बाबा की बात का कोई भी जवाब उस दिन नहीं दिया, या जवाब न दे सका। और उसके बाद क्या हुआ, पता नहीं। शराब की दूकान पर पिकेटिंग करने के लिए कुछ दिन बाद ही मुझे छः महीने की जेल हो गयी।'

स्वदेश चुप रहकर बाबा की सारी बातें सुन रहा था।

'और उसके बाद हमारे देश की क्या हालत हुई वह तुम्हें मालूम है; तुमने वह सारा क़िस्सा इतिहास में पढ़ा है। अन्त में हमारा देश स्वतन्त्र हो गया। महात्मा गांधी का नाम देश-भर में फैल गया। असल में वही हो गये हमारे देश के सर्वेसर्वा। जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री होने पर भी महात्मा गांधी के कहने से ही सब-कुछ करते। सो महात्मा गांधी का नाम भुनाकर तो अब भी देश का सब-कुछ चल रहा है।'

इस बार यहाँ पर हरिसाधन बाबू ने ज़रा साँस ली।

उसके बाद फिर बोलने लगे, 'लेकिन तुमको तो मालूम है, बाबा से जो सम्पत्ति मुझे मिली थी वह बढ़ी है या कम हुई है। बाबा से मिली थी चालीस बीघा ज़मीन, वह बढ़कर अब हो गयी है अठारह सौ बीघा। उसके सिवा बैंक में जो रुपया है वह तुम्हें अन्त तक के लिए काफ़ी है। मेरे जाने के बाद वह सब तुम लोगों का होगा—तुम्हारा और तुम्हारी बहन का। अब तुम ठीक तरह जानकर, सुनकर, सोचकर देखो कि बड़े होकर क्या करोगे?'

स्वदेश फिर भी कुछ न बोला। चुप रहा।

हरिसाधन बाबू ने फिर पूछा, 'बताओ, तुम बड़े होकर क्या करोगे?'

स्वदेश बोला, 'आप अगर कहें तो मैं भी राजनीति में रहूँगा।'

हरिसाधन बाबू लड़के की बात सुनकर ताज्जुब में पड़ गये। बोले,

है ? वह पास-वास हो जायेगा ?'

प्रधानजी को देखकर मास्टर संभ्रम के साथ प्रणाम करके कहते, 'आप कह क्या रहे हैं ! स्वदेश क्या पास ही होगा ? उसे सोने का मेडल मिलेगा।'

'ऐसी वात है ?'

'मुझे तो यही लगता है, सर। ऐसा हीरे-सा लड़का हमारे स्कूल में दूसरा नहीं है।'

हरिसाधन वावू विश्वास न करने का भाव दिखाते।

कहते, 'क्या पता वावू, प्रधान के वेटे को गोल्ड मेडल देने से दूसरे लड़कों के वाप सन्देह न करें। देखो मास्टर, वे लोग यह न कहें कि मैं प्रधान हूँ इसलिए तुम लोगों ने मेरे लड़के को सोने का मेडल दिया। वावा, मैं वह सव पक्षपात ज़रा भी पसन्द नहीं करता।'

वात विलकुल खरे देशसेवक की तरह ही थी। न, सचमुच हरिसाधन वावू खरे देशसेवक हैं। उनके लड़के को ज़वरदस्ती तुम लोग फ़र्स्ट न करना। 'बड़ा आदमी होने की वजह कोई ख़ास रियायत करने से मैं प्रधान की पोस्ट से इस्तीफ़ा दे दूँगा, कहे दे रहा हूँ।'

स्वदेश को उन्होंने फिर बुलवा भेजा।

वोले, 'तुम अव वड़े हो गये हो, समझे ? अव तो तुम्हें चारों ओर देख-सुनकर, सोचकर चलना उचित है।'

स्वदेश की समझ में न आया कि उसे पास बुला-वैठाकर इन सव वातों को कहने की वावा को अभी क्या ज़रूरत पड़ गयी !

वोला, 'मैं तो सोच-समझकर ही सव काम करता हूँ।'

'न, देखो, मेरे वावा ने भी मुझे एक दिन पास बुलाकर यही सव वातें कही थीं—मैं सव-कुछ देखकर, सुनकर, सोचकर तव काम करूँ। वावा ने चाहा था कि मैं गाँव के छोटे लोगों से न मिलूँ-जुलूँ। सो मैंने क्या किया, जानते हो ?'

स्वदेश कुछ न कहकर चुप रह गया।

हरिसाधन कहने लगे, 'मैं देख-सुन-सोचकर काम करता। लेकिन वावा की वह वात मैंने नहीं मानी, मैं ग़ाँव के छोटे लोगों के साथ मिलता-जुलता रहा।'

स्वदेश ने पूछा, 'छोटे लोग कौन ?'

'यही समझो, हमारी रिआया। जिन्हें हम मोची, किसान, शूद्र कहते हैं। उन दिनों उनको ही छोटे आदमी माना जाता था। अव ज़रूर वह सव नहीं रहा, पता है क्यों ? महात्मा गांधी के कहने से। अव हम सवको आदमी मानते हैं। अव हम उन्हें मनुष्यत्व की मर्यादा देते हैं। लेकिन उन

दिनों लोगों का और तरह का ख़याल था। महात्मा गांधी ही मुझे इस कमरे में वैठकर कह गये थे—हरिसाधन, तुम अपने गाँव की भलाई के लिए काम करते रहो। सो मैं वावा की वात सुनकर महात्मा गांधी की वात वरावर सुनता-मानता आया।'

उसके वाद थोड़ा रुककर वेटे की ओर देखकर पूछा, 'अच्छा, वताओ तो, वावा की वातें न सुनकर मैंने अच्छा किया या बुरा किया ?'

स्वदेश की समझ में न आया कि क्या जवाव दे !

हरिसाधन वावू वोले, 'वोलो, जवाब दो, वताओ तुम्हारी क्या राय है ?'

फिर भी स्वदेश कुछ न कह सका। एक ओर पिता और दूसरी ओर महात्मा गांधी, किसकी वात का मूल्य ज्यादा है ? कौन अधिक पूज्य है ?

हरिसाधन वावू ने और अधिक आग्रह न किया। वोले, 'अभी तुमको इसका जवाव देने की कोई ज़रूरत नहीं। पर यह याद रखो कि मैंने अपने वावा की वात का कोई भी जवाव उस दिन नहीं दिया, या जवाब न दे सका। और उसके वाद क्या हुआ, पता नहीं। शराव की दूकान पर पिकेटिंग करने के लिए कुछ दिन वाद ही मुझे छः महीने की जेल हो गयी।'

स्वदेश चुप रहकर वावा की सारी वातें सुन रहा था।

'और उसके वाद हमारे देश की क्या हालत हुई वह तुम्हें मालूम है; तुमने वह सारा क़िस्सा इतिहास में पढ़ा है। अन्त में हमारा देश स्वतन्त्र हो गया। महात्मा गांधी का नाम देश-भर में फैल गया। असल में वही हो गये हमारे देश के सर्वेसर्वा। जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री होने पर भी महात्मा गांधी के कहने से ही सव-कुछ करते। सो महात्मा गांधी का नाम भुनाकर तो अव भी देश का सव-कुछ चल रहा है।'

इस बार यहाँ पर हरिसाधन वावू ने ज़रा साँस ली।

उसके बाद फिर वोलने लगे, 'लेकिन तुमको तो मालूम है, वावा से जो सम्पत्ति मुझे मिली थी वह वढ़ी है या कम हुई है। बावा से मिली थी चालीस बीघा ज़मीन, वह वढ़कर अव हो गयी है अठारह सौ बीघा। उसके सिवा बैंक में जो रुपया है वह तुम्हें अन्त तक के लिए काफ़ी है। मेरे जाने के वाद वह सव तुम लोगों का होगा—तुम्हारा और तुम्हारी बहन का। अव तुम ठीक तरह जानकर, सुनकर, सोचकर देखो कि बड़े होकर क्या करोगे ?'

स्वदेश फिर भी कुछ न बोला। चुप रहा।

हरिसाधन बाबू ने फिर पूछा, 'वताओ, तुम बड़े होकर क्या करोगे ?'

स्वदेश बोला, 'आप अगर कहें तो मैं भी राजनीति में रहूँगा।'

हरिसाधन बाबू लड़के की बात सुनकर ताज्जुब में पड़ गये। बोले,

'राजनीति ? तुम पॉलिटिक्स में रहोगे ?'

स्वदेश कुछ न कहकर चुपचाप सिर नवाये रहा।

हरिसाधन वाबू वोले, 'तुम कह क्या रहे हो ? पॉलिटिक्स में रहोगे ? तुम पॉलिटिक्स कर सकोगे ?'

इस वार भी स्वदेश कुछ न वोला।

हरिसाधन वाबू वोले, 'तुम तो मुँह छिपाने वाले आदमी हो। किसी के साथ मुँह उठाकर बात भी नहीं कर सकते। तुम्हारा किस तरह पॉलि-टिक्स में गुज़ारा होगा ?'

उसके वाद कुछ रुककर फिर वोले, 'तुमसे पॉलिटिक्स में रहने को किसने कहा ? किससे सुना कि पॉलिटिक्स में रहने से आदमी का भला होता है ?'

फिर भी स्वदेश चुप।

'तुम तो अपने घर में क्या हो रहा है उसकी ख़वर नहीं रखते। कहाँ से इस घर का दाल, चावल, नमक, तेल आता है, वह भी नहीं जानते। तुम देश किस तरह चलाओगे ? किस तरह तुम देश का काम करोगे ? और किस तरह अपना ही भला करोगे ?'

उसके वाद थोड़ा रुककर फिर वोलने लगे, 'तुम क्या सोचते हो कि पॉलिटिक्स में खेलना ऐसा आसान है ? किस तरह हज़ारों लोगों के सामने लेक्चर देना होता है, यह तुम्हें मालूम है ? तुम मेरे सामने ही मुँह उठाकर वात नहीं कर सकते, तो तुम हज़ारों लोगों के सामने मुँह उठाकर कैसे वात करोगे ? उसके सिवा लिखना-पढ़ना है। तुमने लिखना-पढ़ना सीखा है, अच्छा-बुरा भी समझना सीखा है। ज़रूरत होने पर इस लाइन में शरावी-लम्पट जुआरियों के साथ भी प्रेम कर दोस्ती करना पड़ेगी। फिर उनके वीच अपना काम भी निकालना पड़ेगा। वह सव तुम कर सकोगे ?'

हरिसाधन बाबू उस दिन सहसा जोश में आ गये थे। स्वदेश ने अपने वावा को अपने सामने इसके पहले कभी इतना उत्तेजित होते नहीं देखा था। इसके सिवा बाबा का पेशा ही पॉलिटिक्स का था। बाबा का तो सारा काम ही राजनीति तक सीमित था। राजनीति ही था बाबा का ध्यान-ज्ञान-स्वप्न ! कलकत्ता के कितने ही मिनिस्टर, कितने ही एम० एल० ए०, तमाम एम० पी० उनकी बैठक में आकर बैठकर गपशप कर चुके थे। स्वदेश ने ओट से उन्हें देखा था। कभी सामने ज़रूर नहीं गया, किन्तु जब संयोग से वह कभी सामने पड़ गया तभी बाबा ने कहा, 'प्रणाम करो, इन्हें प्रणाम करो।'

स्वदेश बेमन से और विवश होकर किसी तरह उनके सामने जाकर पैरों पर हाथ लगाकर सिर झुकाता ! किन्तु कभी भी उनके मुँह की ओर ताककर देखने का साहस नहीं हुआ। सिर्फ़ यही देखता कि सभी लोग खद्दर पहने हुए हैं।

उनके आने पर उसके घर के आगे बड़ी-बड़ी क़ीमती गाड़ियाँ खड़ी रहतीं। उन्हें देखकर गाँव के लोग जमा हो जाते। कोई कहता, 'वह देखो, प्रसन्न सेन।' कोई कहता, 'यह देखो, अमूल्य घोष।'

कभी-कभी दूसरे मन्त्री भी आते। उस दिन जनता को रोककर रखा जा सकता। वे चिल्ला उठते, 'वन्दे मातरम् !'

उस 'वन्दे मातरम्' की गूँज को सुनकर और बहुत-से लोग घर के सामने जमा हो जाते। एक बार पंडित मोतीलाल नेहरू के बेटे जवाहरलाल नेहरू भी उनके घर आये थे। कलकत्ता के अमूल्य घोष उन्हें ले आये थे। उस दिन बलरामपुर के मैदान में भाषण दिया था जवाहरलाल नेहरू ने। थोड़े ही समय का भाषण। वह क्या बोले थे, यह अब भी स्वदेश को याद है। वह जो कुछ बोले थे उसका सारांश था—आप लोग गांधीजी के आदर्श का तन-मन से अनुसरण करें। देश को प्यार करें, देश के मनुष्य को प्यार करें।

याद है कि जवाहरलाल नेहरू उनके घर जलपान करेंगे, इसलिए बाबा कलकत्ता की न्यू मार्केट से बढ़िया विलायती चीनी की प्लेटें, डिश-कप, गिलास पेशगी भुगतान करके ख़रीद लाये थे। नेहरूजी के बैठने के लिए बढ़ई से सागौन की लकड़ी की मेज़-कुर्सी तैयार करवायी थीं। और लोगों के बैठने के लिए भी बाबा ने बहुत-सी कुर्सियाँ बनवायी थीं। नेहरूजी मुर्ग़ी का गरम-गरम-रोस्ट खाना पसन्द करते हैं, इसलिए एक सौ ताजी मुर्ग़ियाँ कलकत्ता से ख़रीदकर मँगवायी थीं। घर-भर को रंग कराकर नया कर दिया था। दरवाज़े और खिड़कियों के लिए असली खद्दर के नये परदे ख़रीदे गये थे।

लेकिन उस समय नेहरूजी को वक़्त नहीं था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन से लौटने के बाद भाषण देकर ही वह कलकत्ता लौट गये थे। उनका प्लेन छूटने का वक़्त हो रहा था, इसलिए वह खाने में समय नष्ट न कर सके। वह सारा खाना अन्त में उन्हें खुद और नौकर-नौकरानियों को खा-खिलाकर ख़त्म करना पड़ा था। इसके सिवा उन्हीं कुछ घंटों के लिए बाबा का प्रायः बारह हज़ार रुपयों के क़रीब ख़र्च हो गया था।

उन दिनों स्वदेश की माँ जीवित थीं।

माँ ने पूछा था, 'हाँ जी, तुम्हारे जवाहरलाल नेहरू ने तो हमारे घर

खाया भी नहीं और तुम्हारा बारह हज़ार रुपया तो बेकार बरबाद हुआ।'

बाबा माँ की बात पर ख़फ़ा हो गये थे।

कहा था, 'तुम औरत हो, तुम इस सबको लेकर क्यों दिमाग़ ख़राब करती हो?'

माँ ने कहा था, 'दिमाग़ ख़राब नहीं करूँगी? तुम्हारे ख़ून की कमाई का रुपया इस तरह बरबाद हो और मैं दिमाग़ ख़राब न करूँ तो और कौन करेगा? मुझे भी तो चुभता है। वह लड़की बढ़ रही है, उसका भी तो एक दिन ब्याह होना है, तब वह रुपया रहने से कितना गहना गढ़ाया जाता, बताओ तो?'

जवाब में बाबा ने कहा था, 'तुम क्या कहती हो, उसका कुछ अर्थ नहीं। वह रुपया काँग्रेस ने ही मुझे दिया था, मैं काँग्रेस से ही वह रुपया फिर वसूल कर लूँगा। यों ही क्या तुम लोगों को औरत कहा जाता है!'

माँ समझीं नहीं। बोलीं, 'वह कैसे होगा? रुपया भला कैसे वसूल करोगे?'

बाबा ने कहा, 'तुम समझतीं क्यों नहीं, जवाहरलाल नेहरू की ख़ातिर करने के ही माने होते हैं अमूल्य बाबू की ख़ातिर करना। अगले बरस जब काँग्रेस की कांफ्रेंस बैठेगी तब बाँस और ट्यूबवेल का कन्ट्रैक्ट तो पूरे-का-पूरा अमूल्य बाबू मुझे ही देंगे। प्राय: एक लाख रुपयों के बाँस सप्लाई करना होंगे, जानती हो? और उसके साथ तीस लाख रुपयों के ट्यूबवेल। तो फिर हिसाब लगाकर देखो, मेरे हिस्से में कितना रुपया आयेगा?'

स्वदेश यह सब जानता था। मुँह से कुछ नहीं कहता था, लेकिन आँखें खोलकर सुनता सब था। समझता था कि इसका ही नाम पॉलिटिक्स है।

उस दिन बाबा ने जब बातें कही थीं, तो पहले की देखी और सुनी घटनाएँ उसे बार-बार याद आने लगीं। क्या वह 'पॉलिटिक्स' कर सकेगा? 'पॉलिटिक्स' करने पर मुँह छिपाने वाला आदमी बनकर तो काम चलेगा नहीं। दोनों हाथों से ख़र्च कर फिर उसका सौ-गुना रुपया वसूल कर लेने का नाम ही तो 'पॉलिटिक्स' है। यह 'पॉलिटिक्स' क्या वह कर सकेगा?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'मेरी तो इच्छा थी कि तुम मेरी ही तरह पॉलिटिक्स करो। अपनी लाइन में ही तो मैंने तुम्हें चाहा था। लेकिन इस लाइन में जो असल काम है वही तो तुम कर नहीं पाओगे।'

'असल काम? असल काम माने?'

'असल काम माने जिसे हम कहते हैं 'पोलिटिकल मोरैलिटी।'[1] तुम

1. राजनीतिक चरित्र।

जिसे 'झूठ बात' कहते हो, हमने उसका नाम रखा है 'पोलिटिकल मोरैलिटी'। उसे सीखे बिना तुम इस लाइन में चमक न सकोगे।'

स्वदेश चुप रहा। बात को उसने समझा या नहीं समझा, वह भी नहीं समझा जा सका।

हरिसाधन बाबू बोले, 'क्या हुआ ? तुम चुप क्यों हो ? बोलो, जवाब दो।'

इतने में स्वदेश बोला, 'मैं क्या कहूँ ?'

'वाह ! अपनी बात तुम न कहोगे तो कौन कहेगा ? मैं कहूँगा !'

स्वदेश ने अब डरते-डरते मुँह उठाकर देखा। बोला, 'मैं क्या करूँगा, यह मैंने अभी तक नहीं सोचा है।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'क्यों नहीं सोचा ? तुम्हारी उम्र हो गयी है; तुमने बी० ए० की परीक्षा दी है। दो दिन बाद ही तुम्हारी परीक्षा का नतीजा निकलेगा। तुम्हारी उम्र में ही तो मैंने तय कर लिया था कि मैं पॉलिटिक्स करूँगा। बाबा ने सोचा था कि मैं और तमाम लड़कों की तरह घर की ज़मीन-जायदाद की देखभाल करूँगा और डेली पैसेंजरी करके कलकत्ता के किसी ऑफ़िस में एक मोटी तनख़्वाह की नौकरी पाकर सन्तोष करूँगा। सो सोचकर देखो, मैं अगर बाबा की बात का ख़याल कर वैसा ही करता, तो कैसा सत्यानाश होता ? महीने-भर में एक हज़ार या डेढ़ हज़ार रुपये महीने की एक नौकरी करता, और बैठक में शाम को इस बलरामपुर के लोगों के साथ ताश पीटता ! उससे ज़्यादा तो कुछ न कर पाता। और उसके बाद एक दिन नौकरी से रिटायर होकर ब्लड-प्रेशर या डायबिटीज़ से पट से ख़त्म हो जाता।'

स्वदेश काफ़ी देर बाद बोला।

उसने कहा, 'मेरे कॉलेज के एक दोस्त के पिता राइटर्स बिल्डिंग में कमिश्नर हैं। पच्चीस बरस नौकरी करने के बाद उनकी तनख़्वाह हुई उन्नीस सौ रुपये। और वह जिस मिनिस्टर के अंडर में काम करते हैं वह मैट्रिक फ़ेल है।'

लगा कि हरिसाधन बाबू लड़के की बात सुनकर ख़फ़ा हो गये। बोले, 'मैट्रिक फ़ेल ! तो मैट्रिक फ़ेल से क्या ! और मैट्रिक फ़ेल न हो तो एम० ए० पास करने से ही क्या आदमी के दस हाथ-पैर हो जाते हैं ? बाहर से देखते हो कि वह मैट्रिक फ़ेल है। अमूल्य बाबू तो प्रेज़िडेंट हैं, उन्होंने शायद उनमें और गुण देखे हों। हो सकता है कि वे अच्छी तरह सजा-सँवारकर झूठ बोल सकते हों। या हज़ारों लोगों के आगे रोबीला, ज़ोरदार लेक्चर दे सकते हों। अच्छी तरह जमकर झूठ बोलना भी तो

एक गुण है। या अच्छी तरह लेक्चर देने को ही क्या आसान समझते हो ? वह भी तो एक बड़ा गुण है। मेरा लेक्चर कभी सुना है ? देखा है कि तव कितनी तालियाँ वजती हैं, और कितनी वाह-वाही होती है ?'

हाय, इंडिया में इसी का नाम पॉलिटिक्स है ! पॉलिटिक्स माने ही झंझट। झंझट की भी विलकुल हद ! लेकिन फिर भी इस देश में उसी झंझट को कंधों पर उठाने वाले लोगों की कमी नहीं है !

सवेरे के समय वलरामपुर के स्टेशन के रास्ते पर जाते-जाते स्वदेश ने देखा कि हर दीवार पर वावा के चुनाव के पोस्टर लग गये हैं :

'महान देश-सेवक
हरिसाधन चट्टोपाध्याय को
वोट देकर
देश की उन्नति
क़ायम रखिये।'

और विलकुल उसके पास ही था कानाई घोष का पोस्टर। वामपंथी पार्टी की ओर से उस वार खड़ा था कानाई घोष। उस समय तक आसमान अच्छी तरह साफ़ नहीं हुआ था। लगता था कि पिछली ही रात पोस्टर लगाये गये थे।

सहसा पीछे से किसी की आवाज़ आयी।

'क्या देख रहे हैं, छोटे वावू, पोस्टर ? चुनाव के पोस्टर देख रहे हैं ?'

पीछे घूमकर स्वदेश ने देखा कि गौर है। गौर मोदक। पहली सवारी-गाड़ी के आने के पहले ही उसे आकर दूकान खोलना पड़ती है। उस समय अलस्सुवह की गाड़ी के मुसाफ़िर आकर चाय पीते हैं। आँखें फाड़े रास्ते की ओर ग्राहकों की आशा में वह देखता रहता है।

'चाय पिएँगे, छोटे वावू ?'

स्वदेश हँसा। बोला, 'मैं क्या चाय पीता हूँ ? कभी भी तुम्हारी चाय की दूकान पर चाय पी है काका, जो चाय पीने को पूछ रहे हो ?'

'सो तो मुझे मालूम है। वड़े वावू का यही तो गुण है। खुद भी कभी चाय नहीं पिएँगे, बेटे-वेटियों को भी कभी न पीने देंगे। पर चाय क्या ख़राव चीज़ है ? सारी दुनिया के लोग चाय पीते हैं और बड़े वावू का इतना ग़ुस्सा है, चाय पर...!'

स्वदेश वोला, 'तो तुम ही वताओ काका, चाय क्या ख़ास अच्छी चीज़ है ? चाय पीने से क्या स्वास्थ्य अच्छा रहता है ? वावा कहते हैं, जितना हो सके, संयमी वनना ही अच्छा है। वावा को तो एक तमाखू के सिवा कोई नशा नहीं है। वह नहीं चाहते कि मैं चाय पिऊँ।'

गौर बोला, 'आप लोगों के घर चाय बनती ही नहीं ?'

स्वदेश बोला, 'नहीं काका, मैं भी चाय नहीं पीता, मेरी बहन भी चाय नहीं पीती। और माँ तो पीती ही नहीं...।'

गौर बोला, 'इस युग में तो यह सोचा ही नहीं जा सकता, छोटे बाबू। बड़े बाबू संन्यासी आदमी हैं, सो देखता हूँ कि बेटे-बेटियों को भी संन्यासी बना देंगे। मेरे अपने घर पर तो चाय न हो तो चले ही नहीं।'

सहसा पीछे से आवाज़ आयी : 'कानाई घोष ज़िन्दाबाद।'

दोनों ने ही पीछे घूमकर देखा। बलरामपुर के नये छोकरों का दल था। वही इतने सवेरे जुलूस बनाकर निकले थे। एक के हाथ में लेही की बाल्टी लटक रही थी, साथ ही पोस्टरों की गड्डियाँ। ख़ाली दीवार देखते ही वे उस दीवार पर पोस्टर चिपका देते।

गौर बोला, 'देख रहे हैं छोटे बाबू, इनका हाल देख रहे हैं न ?'

स्वदेश ने पूछा, 'क्या हाल ?'

'आपको देख लिया न, इसीलिए यह इतना गला फाड़कर चिल्ला रहे हैं—तमाम छोटे लोगों का झुंड...!'

स्वदेश बोला, 'छोटे लोग ? छोटे लोग क्यों कह रहे हो ?'

गौर बोला, 'छोटे लोग न कहूँ ? उस कानाई घोष से अभी भी मुझे अस्सी रुपये लेना है, यह जानते हैं ? उस बार चुनाव के वक़्त मेरी दूकान से खाना गया था तीन सौ रुपयों का। एक बरस से वह रुपया पूरा अभी भी चुकता नहीं हुआ है। जब-जब तकाज़ा करने गया उतनी बार कह दिया, इस वक़्त यह रुपये ले लो, बाद में और दूंगा। सो इस बार तो फिर चुनाव आया है, इस बार भी शायद मुझे खाना सप्लाई करना पड़ेगा। इस बार दिखा दूंगा, इस बार मैं दया-माया नहीं करूँगा।'

स्वदेश बोला, 'अच्छा, कानाई घोष मशाई करते क्या हैं ? माने कानाई बाबू का खाना-पीना चलता कैसे है ?'

गौर बोला,'चलता कहाँ है ? चलता ही तो नहीं है। पॉलिटिक्स करके कभी किसी का चलता है ? उसकी लड़की को तो पहचानते हैं ? उसका नाम संध्या है। उसे पढ़ने को उन्होंने स्कूल भेजा था। नियम से फ़ीस न दे सका, इसलिए स्कूल से संध्या का नाम भी कट गया।'

'और खाना-पहनना ?'

गौर बोला, 'सब बड़े बाबू देते हैं।'

'मेरे बाबा ?'

'हाँ, और नहीं तो क्या ! बड़े बाबू के नाम से बलरामपुर के लोग दोनों हाथ सिर से लगाकर क्यों प्रणाम करते हैं, छोटे बाबू ? वही तो कहता हूँ,

दाँत रहते दाँतों की क़ीमत कोई नहीं समझता। जितने दिनों बलरामपुर में बड़े बाबू हैं, उतने दिनों मज़ा उड़ा लो, उसके बाद अगर कानाई घोष के ज़माने में कभी हमें आना-जाना पड़े तो समझेंगे—क्या आदमी थे बड़े बाबू !'

उसके बाद थोड़ा रुककर गौर फिर कहने लगा, 'उन लोगों को आप पर बहुत ग़ुस्सा है, छोटे बाबू !'

'मेरे ऊपर ? मैंने क्या किया है ? मैं आधे दिनों तो बलरामपुर में रहता ही नहीं।'

गौर बोला, 'यह कहने से क्या होगा ? आपको इतनी सुविधाएँ रहने पर भी आप राजनीति न करेंगे ? सभी तो यही करते हैं, छोटे बाबू। पंडित मोतीलाल नेहरू के बेटे से शुरू करके जिसके भी उपयुक्त बेटे हैं वे सभी तो यही करते आये हैं। जिस तरह वकील का बेटा वकील बनता है, डॉक्टर का बेटा जिस तरह डॉक्टर बनता है, मन्त्री के बेटे भी वैसे ही मन्त्री बनने की कोशिश करेंगे। बाप भी तो यही चाहते हैं कि बेटा ही उनकी कुर्सी पर बैठे।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन मेरे बाबा वैसा नहीं चाहते।'

'उनकी बात अलग है। देखते नहीं हैं, इतनी सुविधा रहते भी बड़े बाबू एक दिन के लिए भी मन्त्री नहीं बने। कितने अग़ल-बग़ल के लोग मन्त्री बन गये ! और उनकी तुलना में तो वह देवता हैं ! बलरामपुर के सारे लोगों ने हर बार उन्हें किस साध में वोट दिये ? वह कानाई घोष दल के लड़कों को लेकर पोस्टर लगा रहा है, आप क्या सोचते हैं, वह बेटा चुनाव जीतेगा ?'

'नहीं जीतेगा ?'

'अरे हाँ, जीतना होता तो इतने दिनों में कब का जीत जाता। काफ़ी ज्यादा समय से कानाई घोष चुनाव में उतर रहा है। इधर लड़कियों के स्कूल में फ़ीस नहीं दे पाता, बड़े बाबू छिपाकर मदद करते हैं तो माँ और लड़की का खाना चलता है। उधर चुनाव के वक़्त बड़े बाबू के पीछे पड़ना चाहता है...।'

अचानक डाउन ट्रेन के आने के लाइन क्लियर के घंटे की आवाज़ होने लगी।

स्वदेश बोला, 'तो गौर काका, मैं चलूँ। मेरी ट्रेन आ गयी।'

इतनी देर में गौर को भी याद आ गया कि वह मिठाई की दूकान का मालिक है। याद आ गया कि उसे शरीर की मेहनत से रोज़गार करके

खाना मिलता है। याद आ गया कि अभी उसकी चाय के गाहक आ जायेंगे। याद आते ही वह फिर अपनी दूकान में घुस गया।

किन्तु बलरामपुर का गौर मोदक जो चाहे कहे और जो चाहे करे, उसकी बात से इतिहास नहीं चलता। कानाई घोष चुनाव में जीते या हरि-साधन चट्टोपाध्याय चुनाव में जीतें—उसके इतिहास में कोई कमी-वेशी नहीं होती। इसी से तो इतिहास-देवता बहुत निष्ठुर हैं। उनकी निष्ठुरता से ही एक दिन बँगला-देश के नवाब सिराजुद्दौला की हत्या हुई। किन्तु नवाब की यदि उस दिन हत्या न होती तो क्या वे इसीलिए इतिहास की चोट से छुटकारा पा जाते? उनकी हत्या तो होती ही। वह चाहे क्लाइव के हाथों होती, या आत्मीय-स्वजनों के हाथों होती। नहीं तो नवाब सिराजुद्दौला की अपनी माँ ने क्यों बेटे का बुरा चाहा था? क्यों बँगला-देश के तमाम लोगों ने उसका बुरा चाहा था? इस युग में महात्मा गांधी का भी तो हम लोगों ने बुरा चाहा था। सिर्फ़ अँग्रेज़ सरकार को दोष देने से कोई फ़ायदा नहीं। महात्मा गांधी की एक दिन वास्तव में हत्या होती ही। एक दिन बाद में हत्या न होकर एक दिन पहले हो गयी—इतना ही अन्तर है।

'असल में हम सब हत्यारे हैं। हमसे प्रभाव में, प्रतिष्ठा में जो बड़ा होना चाहेगा, धन में, मान में, बुद्धि में जो कोई भी हममें अधिक सिर ऊँचा करे, उसी की हम हत्या कर डालते हैं। या हत्या करने का साहस नहीं होता तो मन-ही-मन चाहते हैं कि कोई और उसकी हत्या कर दे। उसी कारण से, जिस दिन मुर्शिदाबाद की गंगा के किनारे रॉबर्ट क्लाइव आकर खड़े हुए, देश-भर में हम सबने गंगा के इस पार खड़े होकर शंख बजाकर उनका स्वागत-सत्कार किया।

'यहीं अन्त नहीं है। शर्म की बात और भी है।'

कहते-कहते हरिसाधन बाबू ज़रा रुके।

बलरामपुर के मैदान में भाषण हो रहा था। चारों ओर ठट-के-ठट आदमी जमा थे। वह फिर बोलने लगे, 'यह हमारा स्वभाव है, हम बंगालियों

का, हम भारतीयों का। मैं अपनी बुराई नहीं कर रहा हूँ। मेरा शरीर आज थका हुआ है। आपकी सेवा कर-करके शरीर टूट गया है। लेकिन आप लोग पूछ सकते हैं, मैं आपकी सेवा क्यों करता हूँ? सेवा करता हूँ महात्मा गांधी के कारण। महात्मा गांधी मेरे पिता-तुल्य थे। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस दिन मैं पितृहीन हो गया। आप बलरामपुर के रहने वाले जानते हैं कि मैंने उस दिन अशौच रखा था। अब भी हर सप्ताह शुक्रवार को मैं निरामिष भोजन करता हूँ। लेकिन क्यों करता हूँ? उन्हें स्मरण करने के लिए करता हूँ। वह मुझे जिस काम का भार दे गये हैं मेरा वह काम, वह व्रत अभी भी पूरा नहीं हुआ। वह मुझसे कह गये थे—'हरिसाधन, तुम अपने गाँव की अच्छाई के लिए काम करते रहना।' उनकी वही बात मैं अभी तक भूला नहीं हूँ। वह पितृ-ऋण उतारने के लिए ही आज भी आपसे वोट चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि बलरामपुर गाँव की जितनी उन्नति मैंने करना चाही थी वह मैं नहीं कर सका। मैं मानता हूँ कि मुझे यहाँ के सामान्य मनुष्य की जितनी सेवा करना चाहिए थी वह मुझसे सम्भव न हुई। मैं जानता हूँ कि बलरामपुर के सब निवासी मेरे ऊपर प्रसन्न नहीं हैं। किन्तु उस अपराध की सारी ज़िम्मेदारी मेरी है। मेरी अक्षमता ही उसके लिए उत्तरदायी है। बलरामपुर में अभी भी ऐसे लोग हैं जो दोनों जून पेट-भर खाना नहीं खाते। यहाँ ऐसे लोग भी हैं जो अपना नाम भी नहीं लिख सकते। लेकिन उसके लिए ज़िम्मेदार कौन है? बताइये, उसके लिए कौन ज़िम्मेदार है?

सभा में सामने की ओर से एक आदमी बोल उठा, 'ज़िम्मेदार सरकार है...।'

बात हरिसाधन बाबू के कान में पड़ी। वह बोले, 'न, सरकार ज़िम्मेदार नहीं है। कोई ज़िम्मेदार नहीं है, ज़िम्मेदार मैं हूँ। इस गाँव में सारे अन्याय-अविचार के लिए मैं ही ज़िम्मेदार हूँ। मैं अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन न कर सका जिससे आज भी बलरामपुर में लोग भूखे रहते हैं, अशिक्षा है, ग़रीबी है। मैं चाहता हूँ कि आप उसके लिए मुझे ज़िम्मेदार ठहरायें। क्योंकि इसी सबके प्रतिकार के लिए ही आपने मुझे विधानसभा में भेजा था। लेकिन मैं आप लोगों का कोई भी उपकार नहीं कर सका। आप मुझे क्षमा न करें। आप मेरा विचार न करें। ठीक समझें तो मुझे दण्ड दें—आज इससे ज़्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता...।'

कहकर वह वहाँ और न रुके। चारों ओर अनगिनत लोगों की ठसाठस भीड़ थी। भाषण समाप्त होने के साथ-ही-साथ सबने तालियाँ बजायीं, लेकिन तब तक हरिसाधन बाबू वहाँ से विदा ले चुके थे। यही उनका

हमेशा का क़ायदा था। वह सामान्यतः भाषण देना नहीं चाहते थे। वह कहते, 'तुम लोग काम करने को कहो, काम कर दूँगा। लेकिन हमारे देश में एक अजब क़ायदा हो गया है कि मीटिंग में खड़े होकर लेक्चर भी देना होगा। क्यों भाई! मुँह से तो सभी लोग बादशाह और वज़ीर मार सकते हैं। वह क्या मुश्किल काम है? हाथ में क़लम लेकर काम करके दिखाओ, तब तुम्हारी करामात समझूँगा।'

जो लोग बहुत निकट के लोग थे वे शाम को घर आते।

आकर कहते, 'ओह, आज आपका जो भाषण हुआ वह मुँह पर सीधा जूता था...।'

हरिसाधन बाबू ने विनयपूर्वक पूछा, 'तुम लोगों को भाषण अच्छा लगा?'

विपिन आदि कहते, 'अच्छा नहीं लगेगा? आप तो छिपा-छुपूकर बात करते-कहते नहीं, बड़े बाबू। आपके मन में तो कोई पाप है ही नहीं?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'छिपा-छुपूकर किसके डर से कहूँगा, मैं जो देश-सेवा कर रहा हूँ, वह क्या अपने मतलब से? या किसी से डरकर रहना होगा?'

विपिन वग़ैरह कहते, 'सुना है कि कानाई घोष मशाई ने फिर कल मीटिंग बुलायी है।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'ऐसी बात है? और देरी बरदाश्त न हुई। बिलकुल कल? सो अच्छा ही है, कानाई को अगर सभी मिलकर वोट दें तो बहुत अच्छा है, मैं बीच में बच जाऊँगा...।'

उसके बाद थोड़ा रुककर बोले, 'मैं तो इस बार खड़ा न होता। लेकिन अमूल्य बाबू ने ही घेरा। कहने लगे—तुम्हारे सिवा हमारी पार्टी में वहाँ लड़ने लायक़ तो और आदमी मिल नहीं रहा है। मैंने कहा था, अब मैं क्यों? वह महात्माजी भी अब नहीं रहे; देश और हमारी तरह के वह नहीं थे। अब तो राम-श्याम-यदु-मधु सभी लीडर हैं...।'

अचानक नन्द ने कमरे में जाकर पुकारा, 'मालिक, कलकत्ता से आदमी आया है।'

'कलकत्ता से? कलकत्ता से इतनी रात को कौन आया है?'

'अमूल्य बाबू ने भेजा है।'

साथ-ही-साथ कमरे के अन्दर का स्वरूप जैसे जादू से बिलकुल बदल गया।

कौन कलकत्ता से आया, क्यों आया—कोई न समझ सका। बाहर के जो लोग थे वे उठकर चले गये थे। क्षण-भर में कमरा सूना हो गया।

बलरामपुर का जीवन कलकत्ता की नब्ज से बँधा था। बलरामपुर की उन्नति होगी या न होगी, बलरामपुर के भाग्य में उन्नति होगी या अवनति, वह कलकत्ता पर निर्भर करता है, और कलकत्ता का भूत-भविष्यत-वर्तमान भी दिल्ली के भूत-भविष्यत-वर्तमान के साथ एक गहरे सूत्र में बँधा है। गांधीजी ने विकेन्द्रीकरण चाहा था, लेकिन वे सारी बातें अब भूल जाओ। महात्माजी के प्रयाण के बाद शोर उठा था कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाना होगा। उसे शक्तिशाली बनाने के लिए रुपया दो। केन्द्र पैसा पाएगा तो कलकत्ता जीवित रहेगा, और कलकत्ता पैसा पाएगा तो बलरामपुर जीवित रहेगा। बलरामपुर के खेतों को सिंचाई के लिए पानी नहीं है यह जानता हूँ, बलरामपुर में रास्ता नहीं है यह भी जानता हूँ। अस्पताल, स्कूल, कॉलेज रुपयों के अभाव में नहीं चलते, वह भी मेरे लिए अनजाना नहीं है। फिर भी रुपया दो। आन्ध्र, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल—सभी मिलकर हमें रुपया दो। रुपये दो, रक्त दो, मैं तुम्हें मुक्ति दूँगा। केन्द्र को शक्तिशाली बनाओ!

बहुत रात गये हरिसाधन बाबू सोने के कमरे में घुसे। स्वदेश उस समय जाग रहा था। मुक्ति भी उस समय अच्छी तरह नहीं सोयी थी। मुक्ति माँ के पास सोती थी।

मुक्ति बोली, 'माँ, कुछ बातें करो न...।'

माँ कहती, 'अब सोने का समय है, बातें नहीं करते। सो जाओ।'

मुक्ति कहती, 'पता है माँ, स्कूल में न, संध्या का नाम काट दिया गया है, हाँ माँ?'

माँ कहती, 'फिर बातें कर रही हो? कह रही हूँ न कि अब सोने का समय है, सो जाओ। कल सवेरे फिर उठकर स्कूल जाना होगा, याद नहीं है?'

दूसरी ओर की खाट से स्वदेश बोला, 'संध्या किसका नाम है री, मुक्ति? किस मुहल्ले की लड़की है?'

दूसरी ओर से माँ डाँटने लगतीं, 'खोका, फिर उधर से चिल्ला रहे हो? कह रही हूँ, सो जाओ...।'

कहते-कहते माँ की आँखों में नींद घिर आती।

इधर से तब स्वदेश बहन को चुपचाप पुकारता, 'अरे मुक्ति, सो गयी क्या?'

मुक्ति कहती, 'अब तू चुप रह।'

'क्यों, चुप क्यों रहूँ? मुझे तो नींद नहीं आ रही है।'

मुक्ति कहती, 'पुकारने से मैं माँ से कह दूँगी। कह दूँगी—दादा मुझे

सोने नहीं दे रहे हैं।'

स्वदेश कहता, 'अच्छा, ठीक है, कल मैं अकेले-अकेले सारे आमड़े ख़त्म कर दूँगा, तुझे एक भी न दूँगा।'

मुक्ति कहती, 'न देना ठेंगे से ! संध्या के घर में भी आमड़े का पेड़ है, संध्या के घर जाकर आमड़ा खाऊँगी।'

स्वदेश कहता, 'संध्या कौन है, री ?'

मुक्ति कहती, 'क्यों बताऊँ ? बताये मेरा ठेंगा ! मेरी ख़ुशी मैं उसके घर जाऊँगी, तुझे क्या ?

स्वदेश कहता, 'तू समझती है कि मैं उसके घर नहीं जा सकता ?'

मुक्ति कहती, 'तू एक बार जाकर देख न, बाबा बहुत गुस्सा होंगे, देख लेना।'

'क्यों, बाबा क्यों गुस्सा होंगे ?'

मुक्ति कहती, 'वाह रे, बाबा से संध्या के बाबा का बहुत झगड़ा है।'

मुक्ति की बात सुनकर स्वदेश ताज्जुब में पड़ जाता।

पूछता, 'झगड़ा ? तुमसे किसने कहा, झगड़ा ?'

'संध्या ने ही कहा था।'

'और क्या कहा था ?'

मुक्ति कहती, 'तुझे क्यों बताऊँ ? तू सब-कुछ नन्द-दा से कह देगा।'

स्वदेश कहता, 'मैं किसी से कुछ न कहूँगा, तू बता न, माँ तो सो रही हैं, कुछ सुन नहीं पा रही हैं, बता...।'

मुक्ति कहती, 'न, मैं नहीं बताऊँगी। संध्या ने मुझसे बताने को मना कर दिया था। कहा था कि बता देने से नन्द-दा उसे और रुपया नहीं देंगे।'

मुक्ति की बात सुनकर स्वदेश और भी आश्चर्य में पड़ जाता।

पूछता, 'नन्द-दा किसे रुपया देते हैं ?'

'उसी संध्या को।'

'क्यों देते हैं ?'

मुक्ति कहती, 'रुपया देंगे नहीं ? वाह रे, तू बड़ा बुद्धू है, रुपया न दें तो वे खायेंगे क्या ? उनके क्या हमारे बाबा की तरह ज़मीन-जायदाद है ? संध्या के बाबा तो ग़रीब हैं। तभी तो उसके बाबा स्कूल की फ़ीस नहीं दे पाते। सिर्फ़ हमेशा जेल काटते रहते हैं—रुपया कब कमायेंगे ?'

'क्यों, उसके बाबा इतनी जेल काटने क्यों जाते हैं ?'

'वाह रे, पुलिस अगर उसके बाबा को पकड़कर जेल में डाल दे तो उसके बाबा क्या करेंगे ? पुलिस की कितनी ताक़त है, उसके बाबा की भी

क्या उतनी ताक़त है ? तभी तो संध्या ने मुझसे कहा था कि हमारे नन्द-दा अगर रुपया न देते तो उन्हें खाने को ही न मिलता। नन्द-दा के हाथों ही बाबा उसकी माँ के हाथ पर रुपया दे आते हैं, मैंने सब-कुछ देखा है।'

बात बहुत देर नहीं चलती है। सहसा कमरे का दरवाज़ा खुलने की आवाज़ होती है। उस आवाज़ को सुनकर माँ की नींद टूट जाती है। हड़बड़ाती उठकर वह पूछती हैं : 'कौन ? कौन ? अरे तुम ?'

बाबा की आवाज़ सुनायी देती, 'हाँ मैं, ये लोग सो गये ?'

माँ कहती, 'हाँ, अभी तो बहुत बकझक कर उन्हें सुलाया। दोपहर-भर दोनों पानी में कूदते रहेंगे और शरारत करेंगे, फिर भी रात को ज़रा निश्चिन्त होकर आराम से सोऊँ, उनके मारे उसका भी ठिकाना नहीं। तुमने खा लिया ?'

बाबा कहते, 'न, खाने का समय कब मिला ? शाम को मैदान में लेक्चर देकर आया, उसके बाद तमाम लोग आकर बैठक में जमा हो गये। बताओ, उन्हें कैसे भगाता ?'

माँ कहती, 'इस तरह करने से तो बुढ़ापे में शरीर नहीं टिकेगा। पहले जो कुछ किया सो किया, अब तो उमर हो गयी है।'

बाबा कहते, 'अब यह चुनाव का झंझट ख़त्म होते ही थोड़ा आराम करूँगा, उसके पहले आराम-वाराम कुछ न होगा।'

'तुम्हारा आज का भाषण अच्छा हुआ ?'

बाबा कहते, 'वही बातें तो हो रही थीं अभी तक। क़रीब-क़रीब सत्रह बार तालियाँ बजीं, पता है ?'

माँ कहती, 'देखो, माँ काली अगर सिर ऊँचा रखना चाहती हैं ! मैं तो माँ से कई दिनों से यही मना रही हूँ...।'

बाबा हँसते। कहते, 'तुम तो इस तरह कह रही हो जैसे मैं नया-नया चुनाव में उतर रहा हूँ। तुम मेरे साथ कानाई घोष की तुलना कर रही हो ?'

उसके बाद कुछ शब्द होते ही माँ कहतीं, 'यह क्या, सन्दूक क्यों खोल रहे हो ? इतनी रात में रुपया क्या होगा ?'

बाबा कहते, 'वही कलकत्ता से फिर बड़े बाबू ने आदमी भेजा है।'

'बड़े बाबू, बड़े बाबू माने ?'

'अरे, बड़े बाबू माने अमूल्य बाबू। चुनाव के काम में ख़रच-वरच नहीं होता ? यह जो चुनाव हो रहा है, इसके पीछे तो बड़ा ख़रच है, वह ख़रच कौन देगा ? हम रुपये नहीं देंगे तो पार्टी के ख़रच का रुपया कहाँ से

आयेगा ?'

माँ पूछतीं, 'कितना रुपया माँगा है ?'

'सात हज़ार ।'

सात हज़ार रुपया सुनते ही माँ चौंक पड़ीं । इतने रुपये ! कहतीं, 'तो अपना रुपया तुम दोगे । मुझे क्या कहना है...?'

बाबा कहते, 'तुम औरत हो, सब बातों में क्यों बोलने लगती हो ? पता है, आज का यह सात हज़ार रुपया एक दिन सात लाख रुपये होकर लौटेगा । एक अच्छे रूट पर बस का परमिट मिलते ही सूद के साथ सब वसूल हो जायेगा । उसके सिवा मामला-मुक़दमा, दुश्मनी, सबको संभालने का भार लेकर बड़े बाबू उतरेंगे, यह जानती हो ? मैं सब ओर सोच-समझकर काम करता हूँ...।'

कहकर वहाँ और न रुके । रुपया ले, सन्दूक में ताला लगाकर बाबा फिर नीचे उतर गये ।

बाबा के कमरे से चले जाने के बाद फिर सब-कुछ स्तब्ध हो गया । चारों ओर गहरा अँधेरा था । उत्तर की ओर के बग़ीचे से एक उल्लू कर्कश चीत्कार करते हुए दक्खिन के धान के खेतों की ओर उड़ गया । बलराम-पुर स्टेशन के समीप कहीं पर एक मालगाड़ी बहुत देर से प्रतीक्षा करते-करते अधीर होकर गला फाड़कर आकाश-पाताल को कँपाती आर्तनाद करके अपने अस्तित्व की बात बताकर रुक जाती ।

सवेरे जब उसकी नींद टूटती तो देखता कि कमरे में कोई भी नहीं है, सिर्फ़ एक ओर एक चारपाई पर वह लेटा हुआ है । एक दूसरी चारपाई पर लेटी गहरी नींद में मुक्ति सोयी हुई है । माँ कब बिस्तर छोड़कर बाहर चली गयीं, इसका किसी को पता नहीं लगा । पिछली रात की घटनाएँ धुंधले-धुंधले सपनों की तरह उसे याद आतीं । उसके बाद माँ आकर पुकारतीं, 'उठो, अरे तुम लोग उठो । कितनी देर तक सोते रहे हो ? इतनी देर से उठने पर कब पढ़ाई-लिखाई करेगा, कब स्कूल जायेगा...?'

तबीयत न रहते हुए भी स्वदेश माँ की बातों से बिस्तर छोड़कर उठ जाता । तब तक बाबा के कमरे में बहुतेरे लोग आ जाते । उतनी ही देर में सब लोगों की सारी अर्ज़ियाँ बाबा के पास पेश कर दी जातीं । किसी के लड़के की स्कूल की फ़ीस माफ़ कराना होगी; किसी की पत्नी को कलकत्ता के अस्पताल में भरती कराना होगा; किसी के पास लड़के के स्कूल की किताबें ख़रीदने के लिए पैसे नहीं हैं । इस तरह तमाम लोगों की तरह-तरह की अर्ज़ियाँ होतीं ।

हरिसाधन बाबू किसी को वापस नहीं करते। हरिसाधन बाबू के मुँह से 'न' कभी नहीं निकलती। वह सभी से कहते—'अच्छा, ठीक है। मैं जब तक ज़िन्दा हूँ तब तक तुम लोग कोई फ़िकर नहीं करना।'

पच्छिम पाड़ा का बड़ा गन्दा तालाब पार कर बायीं ओर जाना पड़ेगा। शाम हो जाने पर वह जगह बहुत ख़तरनाक हो जाती। वह हो, उस पाड़ा के लोगों के लिए चलते-चलते उसी रास्ते की आदत पड़ गयी है। जो लोग उधर से होकर जाते, जिनका घर उधर रहता वे जानते थे कि कहाँ-कहाँ पैर रखना होगा, कहाँ कूदकर जाना होगा। दिन के समय ज़रूर कोई ख़तरा नहीं रहता। संध्या उधर से होकर स्कूल जाती, और उधर से रात को आती। सिर्फ़ संध्या ही नहीं, कानाई घोष भी उधर से ही आता-जाता।

अँधेरे में अगर कोई किसी के पैरों की आवाज़ सुनता तो अँधेरे में ही सवाल करता, 'कौन जा रहा है?'

जो रास्ते पर होकर जाता होता वह कहता, 'हम हैं भई, हम।'

पहचानी आवाज़ पाकर निश्चिन्त हो जाता तो कहता, 'ओ, कब आये?'

'यही तो अभी शाम की ट्रेन से।'

'कलकत्ता की सब ख़बर अच्छी है न?'

'हाँ, सब ठीक है।'

बलरामपुर के लोगों का कभी काम से, कभी यूँ ही कलकत्ता जाना अनिवार्य रहता। काम-बेकाम कलकत्ता न जाने से उनका चलता नहीं। चूना, रेत, सीमेंट हो या एक कील ही हो, सब चीज़ों के लिए कलकत्ता का ही आसरा रहता।

किसी-किसी दिन और रात को अँधेरे में ही एक और सवाल आता, 'कौन जा रहा है, भाई?'

'मैं भाई, मैं।'

कानाई घोष की आवाज़ मिलते ही घर के अन्दर से कोई निकलता, 'दादा, तुम्हारा क्या हाल है? सारा बन्दोबस्त हो गया?'

'हाँ, सब-कुछ ठीक है। तुम सब तैयार रहना। यहाँ की क्या ख़बर है? काम-काज सब ठीक ढंग से चल रहा है?'

बलरामपुर का कानाई घोष असल में किसान का बेटा है। लेकिन किसान का बेटा होने से क्या, खेती के लिए उसके पास एक हाथ ज़मीन नहीं है। कानाई घोष का बाप खेत-मजूर था। कानाई घोष के लिए बाप हरिहर बहुत अफ़सोस करता रहता।

कहता, 'बेटा भी अगर आदमी होता तो मुझे कोई फ़िकर थी, हुज़ूर?'

हरिसाधन वावू एक आराम-कुर्सी पर पसरकर हुक्क़ा पीते और हरिहर फ़र्श पर उकड़ू बैठा रहता। उकड़ू बैठे-बैठे सुख-दुख की बातें करता और लड़के के भविष्य के अनिश्चयकी वातकहकर अफ़सोस करता।

हरिसाधन वावू कहते, 'सो लड़का अगर स्कूल में लिखना-पढ़ना सीखना चाहता है तो पढ़ा न उसे। लिखना-पढ़ना सीखने से अच्छा ही है।'

'आप तो कह रहे हैं लिखना-पढ़ना सिखाने को, लेकिन स्कूल की फ़ीस कहाँ से दूँगा ?'

'क्यों ? तू मजूरी करके पैसा कमाता है और वेटे की स्कूल की फ़ीस नहीं दे सकेगा ?'

हरिहर कहता, 'मजूरी अब कहाँ कर पाता हूँ, हुज़ूर ! पिछले साल वीमारी-ही-वीमारी में वीता। आप दया के अवतार हैं। आप हैं, इसीलिए तो दो मुट्ठी खाने को मिल जाता है। शरीर में तो अब सामर्थ्य नहीं रही।'

सो हरिहर तव से ही हरिसाधन वावू के समीप ऋणी था। रोज ही एक-न-एक अर्जी लेकर बड़े वावू के पास आता। किसी दिन चावल, किसी दिन दाल, और किसी दिन आठ आना पैसे की ख़ातिर।

और किसी दिन काम के लिए आता। बुख़ार से ही-ही कर काँप रहा है। अब तक भात नहीं खाया है। आकर कहता, 'कोई काम-काज दें, हुज़ूर।'

बड़े वावू उसकी हालत देखकर डर जाते।

कहते, 'काम ? काम करने लायक़ शरीर है तेरा जो काम करने को कह रहा है ? काम करने पर तू मर जायेगा। तव तो मुझी को तेरी लाश फेंकना पड़ेगी।'

हरिहर कहता, 'तो फिर क्या करूँ ? रोज़-रोज़ तो आपसे भीख नहीं माँग सकता।'

बड़े वावू उस दिन भी कुछ पैसे दे देते।

कहते, 'तो कल आना। कोई हलका काम दे दूँगा। बैठे-बैठे हमारा उत्तर का बाड़ा बाँध देना। वग़ीचे का वाड़ा टूट गया है। जानवर और वकरियाँ घुसकर बाग़ की फ़सल खा जाते हैं।'

'और...?'

कहकर फिर हुक़्क़े का एक कश लगाते।

हरिहर उस समय किसी नयी बात के सुनने की उम्मीद में रुका रहता।

बड़े वावू मुँह से धुआँ छोड़कर कहते, 'तेरे बेटे का नाम क्या है ?'

हरिहर कहता, 'जी, कानाई।'

'नाम तो अच्छा रखा है। बड़ा रसीला नाम है। मैं पूछता हूँ कि सिर्फ़ नाम रखकर ही क्या बेटे की ज़िम्मेदारी ख़त्म हो जाती है? उसे आदमी बनाया है या नहीं?'

'जी बड़े बाबू, आदमी क्या बनाऊँगा? ग़रीब आदमी हूँ। जिन्होंने मुँह दिया है, वही चारा भी देंगे। मैं तो सिरफ़ उसको पैदा करने वाला हूँ, असल में तो आप उसके माँ-बाप सब-कुछ हैं। मेरे मरने पर वह आपके ही सिर पड़ेगा, तब आप ही उसकी देखभाल करेंगे।'

बड़े बाबू डाँटने लगते।

'धत्, तू बेटा पैदा करेगा और मैं उसका झमेला भुगतूंगा? तूने उसे स्कूल में भरती कराया है?'

'जी नहीं, आपसे तो सब-कुछ बता दिया था।'

बड़े बाबू कहते, 'अरे, मुझसे कहकर ही सब झंझट खत्म हो गया? बीच-बीच में मुझे याद दिलाना पड़ेगी न? तू बेटा-बेटी पैदा करेगा, और मुझे सबकी ज़िम्मेदारी पूरी करना पड़ेगी? तेरे पास अगर रुपया-पैसा नहीं है तो लड़का पैदा करने क्यों गया? उस वक़्त याद नहीं आया कि लड़के को आदमी किस तरह बनायेगा? उस वक़्त सोचा होगा कि बड़े बाबू हैं, बड़े बाबू ही सब कर देंगे।'

'जी, भगवान ने दिया है।'

बड़े बाबू बिगड़ उठते। कहते, 'अरे धत् तेरे की, और तेरे भगवान की। भगवान ने ही अगर तुझे बेटा दिया है तो तेरा दिमाग़ भी तो भगवान ने दिया है, रे! उस दिमाग़ से काम नहीं लेगा?'

इसके जवाब में हरिहर कुछ न कहता। चुपचाप बड़े बाबू के सामने खड़ा रहता।

बड़े बाबू सबकी ओर देखकर कहते, 'सुना विपिन, हरिहर की बात सुनी? कहता है, भगवान ने बेटा दिया है!'

विपिन आदि तब अपनी समस्या लेकर परेशान थे। उनका भी स्वार्थ रहता बड़े बाबू से। वे भी जरूरत-बेज़रूरत बड़े बाबू से मतलब की चीज़ चाहते।

वे एक साथ बोले, 'आप जायें न, हरिहर काका। क्यों बेकार बड़े बाबू का वक़्त बरबाद कर रहे हैं? जायें, काका। इस वक़्त बेकार की बातें करने का समय बड़े बाबू के पास नहीं है।'

हरिहर चारों ओर से टोके जाने पर फिर न रुका। चले आने के लिए बाहर की ओर क़दम बढ़ाये।

लेकिन बड़े बाबू नहीं छोड़ते। कहते, 'जा मत, सुन, तेरे लड़के की हर महीने फ़ीस अब से मैं दूँगा। यह ले। इस महीने की फ़ीस ले। जाकर लड़के को स्कूल में भरती कर देना। उसके बाद आने वाले महीने में फिर मेरे पास आकर फ़ीस ले जाना। अब जा।'

यह थे आज के कानाई घोष के पिता।

उसके बाद जिस बेटे को हरिहर ने स्कूल में भरती कराया, उसके बाद से उसी स्कूल से उसने इम्तहान पास किया। उसने लिखना-पढ़ना सीखा था। हरिहर ने सोचा था कि कानाई बड़ा होकर घर की दुख-दुर्दशा दूर करेगा। जिस तरह बड़े घर के लड़के लिख-पढ़कर आदमी बनते हैं, कलकत्ता जाकर नौकरी कर गृहस्थी बसाते हैं, कानाई भी शायद वैसा ही करेगा।

लेकिन हुआ क्या ?

एक दिन हरिहर आया। बोला, 'खोका का ब्याह कर रहा हूँ, हुज़ूर ! आपको चलकर ज़रा खड़ा होना पड़ेगा। आपके सिवा तो मेरा अपना कहने को और कोई नहीं है, हुज़ूर ! आप ही माँ-बाप, सब-कुछ हैं।'

बड़े बाबू अचम्भे में आ गये। बोले, 'तू कह क्या रहा है, हरिहर, लड़के की शादी करेगा ? तेरा लड़का बहू को खिला सकेगा ?'

बाप के मन की बड़ी साध थी। बाप को तो शौक होता है कि मरने के पहले बेटे की बहू का मुँह देखकर जाये ! इसीलिए हरिसाधन बाबू कुछ न बोले। सिर्फ़ यही कहा, 'ठीक है। तू जब कह रहा है तो ज़रूर आऊँगा।'

एक दिन लड़के का ब्याह हो गया। लड़के की माँ नहीं थी जो खुशियाँ मनाती। उसे हरिहर ने पूरा कर दिया। हरिसाधन बाबू भी शादी में गये थे। बड़े बाबू को देखकर हरिहर भक्ति और कृतज्ञता में एकदम विगलित हो गया। उसके-से ग़रीब के घर बड़े बाबू अपने पैरों की धूल देंगे, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था।

उसके बाद हरिहर के काम-काज में कभी भी आने पर बड़े बाबू उससे पूछते, 'क्यों रे हरिहर, तेरा बेटा कैसे हैं ?'

हरिहर कहता, 'जी, अच्छा है।'

'और बहू ?'

'जी, मेरी एक पोती हुई है।'

बड़े बाबू कहते, 'अच्छा ! ख़ूब-ख़ूब, बहुत अच्छी ख़बर है। तेरा बेटा तो बहुत काम का है, रे।'

हरिहर कहता, 'जी, आप आशीर्वाद दें, वह जिन्दा रहे।'

'तो अपनी पोती का नाम क्या रखा है ?'

'जी, संध्या।'

वडे वावू कहते, 'सो नाम तो देखता हूँ वहुत सुन्दर है।'

'जी, कानाई ने ख़ुद ही प्यार से अपनी लड़की का नाम रखा है। मैं क्या कहूँगा ?'

वडे वावू कहते, 'तो मैं क्या कह रहा हूँ कि ख़राव नाम है ? मैं कहता हूँ कि लड़की का नाम वहुत ही सुन्दर रखा गया है। सो वह खुद क्या करता है ? कुछ रुपये-पैसे का ढँग कर रहा है या हड़ो-हड़ो कर घूमता रहता है ?'

हरिहर कहता, 'जी, नहीं। वह कलकत्ता में नौकरी करता है।'

नौकरी ! वड़े वावू के सिर पर विजली गिरती तो भी वह ऐसे अचम्भे में न पड़ते। नौकरी ? वलरामपुर में अपनी ही रैयत का वेटा, छुटपन से जो उनके ही पैसे से आदमी वना, जिसका वाप उसका अन्न खाकर ज़िन्दा रहा, वह कलकत्ता जाकर नौकरी करता है !

'कितना रुपया पाता है ?'

'जी, पैंतीस रुपया महीना।'

वात सुनकर वड़े वावू का सिर चकराने लगा। ग़ुस्से में सिर से पाँव तक काँपने लगे। लेकिन वह काँपना वाहर से कोई देख न सका, समझ भी न सका।

कुछ देर वाद वड़े वावू को होश आया। वोले, 'तेरा वेटा गाँव नहीं आता ?'

'जी, आता तो है। सनीचर-सनीचर घर आता है। फिर सोमवार को सवेरे ही कलकत्ता चला जाता है।'

'तो तेरा वेटा तो बड़ा नमकहराम है, रे। मेरे रुपयों से ही आदमी वना और नौकरी पाकर एक वार मुझसे मिला भी नहीं !'

हरिहर वोला, 'आप ख़फ़ा न हों हुज़ूर, इस वार देश आते ही आपके पास ले आऊँगा। आप उसे डाँट-डूँटकर माफ़ भी कर देंगे, हुज़ूर !'

सो उस दिन वेटे को घर आते ही हरिहर ने पुकारा, 'ओरे कानाई, वड़े वावू तुझ पर वहुत ख़फ़ा हैं। पता है ?

'वड़े वावू ? कौन वड़े वावू ?'

हरिहर वोला, 'तू कह क्या रहा है ? जिसका खा-पहनकर आदमी वना, उनके वारे में किस तरह वात करना होती है, यह भी नहीं जानता ? देखता हूँ, तू असली नमकहराम है।'

कानाई वोला, 'तुम चुप तो करो। वड़े वावू तुम्हारे वड़े वावू हों

सकते हैं। वह मेरे कौन हैं ? मेरा बड़ा बाबू-अड़ा बाबू कोई नहीं है...।'

हरिहर बोला, 'छिः ! ऐसी बात नहीं कहते। गुरुजन हैं। उनके लिए कैसी बात कहना होती है, वह भी नहीं जानता ? लिखना-पढ़ना सीखकर तेरा क्या यही हाल हुआ है ?'

कानाई बोला, 'सो अगर वही होता है तो मुझे लिखना-पढ़ना क्यों सिखाया ?'

हरिहर बोला, 'लिखना-पढ़ना तो सभी सीखते हैं। लिखना-पढ़ना सीखने ही से क्या सरधा-भक्ति चली जाती है ? जानता है, बड़े बाबू के हमारे ऊपर कितने उपकार हैं ?'

कानाई भी ख़फ़ा हो गया। बोला, 'उपकार किया है या दया की है ! दया करके तुम्हारी मुसीबत के समय थोड़ी-बहुत जूठन-जाठन दे दी। बड़े आदमी यही करते हैं। अपने लिए सोलह आने की जगह अठारह आना वसूल करते हैं और हमारे हिस्से छिलके और फोक दे देते हैं। हम सोचते हैं कि बड़े बाबू की कितनी दया है ! किसका मारकर बड़े बाबू की इतनी ज़मीन-जायदाद हो गयी है, ज़रा बताना तो ? बड़े बाबू की ज़मीन पर मेहनत करके तुम मरे, उसका अठारह आना गया बड़े बाबू के पेट में। तुम्हारे वक़्त वही बीस आना रोज़। क्यों ? माँ का गहना गिरवी रखकर तुमने ज़िन्दगी-भर कितना रुपया सूद दिया, ज़रा हिसाब लगाकर देखो तो ? फिर भी वह गहना क्या छुड़ा पाये ?'

उसके बाद बात कहते-कहते कानाई रुक गया। बोला, 'और मुझसे बहुत बक-झक मत करना। बड़े बाबू ! ख़ाक बड़े बाबू ! मैंने बहुतेरे बड़े बाबू देखे हैं, पता है ? रूस में ऐसे बहुत-से बड़े लोग थे। चीन में भी इस तरह के बहुत-से बड़े लोग थे।'

'क्या कहा ?'

हरिहर लड़के की बात का सिर-पैर कुछ भी न समझ पाया। फिर पूछा, 'कहा क्या तूने ?'

'कहा कि रूस में भी इस तरह के बहुत-से बड़े आदमी थे।'

हरिहर बोला, 'रूस ? वह क्या है ? कौन रूस ? किस मुहल्ले का नाम है ?'

कानाई बोला, 'वह तुम नहीं समझोगे। तुम्हें समझने की ज़रूरत भी नहीं है। अभी तक नहीं समझा, इसीलिए यह हाल है। जिस दिन समझोगे उस दिन तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी।'

हरिहर बोला, 'कलकत्ता जाकर अब शायद यही सब सीख रहा है ? यही सब सीखने के लिए क्या मैंने तुझे लिखना-पढ़ना सिखाया ? कलकत्ता

तो यहाँ के बहुत-से लड़के जाते हैं। किसी की तो अक़ल ऐसी ख़राब नहीं हुई। सभी तो अपने बाम्हन-ठाकुर के लिए सरधा रखते हैं।'

कानाई ने अपने पिता की इस बात का जवाब ही नहीं दिया।

हरिहर बोला, 'तो कल सवेरे ही मेरे साथ तू चलेगा। मैं तुझे लेकर बड़े बाबू के पास जाऊँगा।'

सो कानाई ने अन्त में पिता की बात का पालन किया।

हरिसाधन बाबू को सवेरे से ही काम में लग जाना पड़ता। घर-बार तो है ही। जैसे सबके होता है। गृहस्थी न होने से आदमी को सामाजिक प्राणी क्यों कहा जायेगा? लेकिन जो उसके अतिरिक्त काम है—वह होता है समाज-सेवा। पिता की रज़ामन्दी के बिना उन्होंने एक दिन यह समाज-सेवा शुरू की थी। पिता की रज़ामन्दी के बिना उन्होंने शराब की दूकान पर पिकेटिंग कर जेल काटी थी। उसके बाद देश स्वाधीन होने के बाद से ही वह बलरामपुर में सबके बड़े बाबू हैं।

स्वदेश तब छोटा था। उस छुटपन से ही वह पास के पढ़ने के कमरे से सब सुन पाता।

हरिहर ने आते ही बड़े बाबू के पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया। बड़े बाबू विनय दिखाते हुए बोले, 'ठीक, ठीक। हो गया, हो गया।'

लेकिन वैसा कहने से क्या हरिहर छोड़ने वाला आदमी था! ज़बरदस्ती पैरों की धूल लेकर उसने भक्ति से सिर पर लगायी। उसके बाद वह पैरों की धूल सिर पर लगाते-लगाते बोला, 'आप कहते क्या हैं! अपने पैरों की धूल को क्या मामूली चीज़ समझ लिया है; बड़े भाग्य से यह चीज़ मिलती है।'

बड़े बाबू की नज़र कानाई की ओर गयी। बढ़िया पैंट पहने था, रंगीन शर्ट।

पूछा, 'यह कौन है?'

हरिहर बोला, 'जी, यह है हुज़ूर का बेटा।'

'क्या नाम है इसका?'

'जी, कानाई।'

हरिहर तब ओट से लड़के को इशारा करता है बड़े बाबू के पैरों की धूल लेकर सिर पर लगा प्रणाम करने को, लेकिन लड़के के मुँह की ओर ताककर देखा कि उसे कुछ भी मंज़ूर नहीं।

बात बड़े बाबू की नज़रों की ओट नहीं रही। कानाई को सिर से पैर तक घूरकर देखने लगे। इसी के स्कूल की फ़ीस इतने बरसों से देते आये, अब उसी लड़के ने नौकरी पाकर कमीज़-पैंट पहन लिया है। बालों में

कंघी करके पट्टियाँ निकाल ली हैं। लगता है कि सिगरेट भी पीता है। कहा नहीं जा सकता।

'लड़के का क्या नाम बताया ?'

हरिहर बोला, 'कानाई बताया था।'

'ओ...।'

कहकर कानाई की ओर देखकर पूछा, 'सुना है, तुम कलकत्ता में नौकरी करते हो ?'

कानाई के सिर हिलाते ही उसके सिर के बाल एक ओर ढुलक गये। बोला, 'हाँ।'

'कहाँ काम करते हो ? किस ऑफ़िस में ?'

कानाई बोला, 'एक फ़ैक्टरी में।'

'काहे की फ़ैक्टरी ? फ़ैक्टरी में क्या बनता है ?'

'हरीकेन, स्टोव, यही सब।'

'अच्छा है। तो कितना महीना मिलता है ?'

कानाई का शरीर तब गुस्से से काँपने लगा। बोला, 'पैंतीस रुपये।'

हरिहर ने बात बीच ही में काटकर बेटे की ओर से कहा, 'जी, सब आपकी दया से...।'

बात लड़के को ही कहना ठीक होती, लेकिन कानाई जब कुछ न बोला तो उसकी ओर से बाबा को ही कहना पड़ा। कहकर मानो हरिहर को सन्तोष हुआ। हरिहर मन-ही-मन सोच रहा था कि लड़के ने लिखना-पढ़ना सीखा ज़रूर है, लेकिन शिष्टता-नम्रता बिलकुल नहीं सीखी। बड़े बाबू के साथ किस तरह बात करना होती, वह भी लड़के ने नहीं सीखा।

हरिहर बोला, 'उसने अपनी कोशिश से ही नौकरी का जुगाड़ किया है, बड़े बाबू। खुद ही घूमता-फिरता था, अन्त में उसके दोस्तों ने उसे कारख़ाने में लगवा दिया।'

'फ़ैक्टरी से बोनस-ओनस मिलता है ?'

इस बार कानाई ने जवाब दिया। बोला, 'हाँ, तीन महीने का वेतन।'

हरिहर बेटे के गर्व से उस समय फटा पड़ रहा था। लेकिन बड़े बाबू के मुँह से कोई भी भला-बुरा न सुनकर कुछ दुखी भी हो रहा था। बड़े बाबू के मुँह की ओर बहुत देर देखकर उनके चेहरे पर उसे कोई भी शिकन न दिखायी पड़ी।

हरिहर बोला, 'तो अब चलूँ, बड़े बाबू ?'

बड़े बाबू के मुँह से कोई भी 'हाँ' या 'ना' न निकलते देखकर वह फिर बड़े बाबू के पैर छूकर प्रणाम कर बेटे को ले बाहर की ओर पैर बढ़ाने जा

रहा था कि तभी पीछे से बड़े बाबू की आवाज़ सुनायी दी।

'सुन, सुनता जा।'

हरिहर घूमकर रुक गया। लेकिन कानाई जिस तरह जा रहा था वैसा ही चला गया। हरिहर अकेले ही कमरे में घुसकर, डरते-डरते फिर बड़े बाबू की ओर थोड़ा बढ़ा।

बोला, 'मुझे पुकारा, हजूर ?'

'हाँ, पुकार ही तो रहा हूँ।'

कहकर ज़रा रुककर फिर बोले, 'मेरे पास तेरी पत्नी का कुछ गहना पड़ा है। वह मैं अब नहीं रखूँगा। तू कल ही सूद चुकाकर उसे ले जा। अब मैं वह सब अपने पास नहीं रखूँगा।'

डर से हरिहर का मुँह सूख गया। उसकी दोनों आँखें छलछला उठीं, मानो बड़े बाबू की करुणा पाने के लिए बेकार प्रयत्न करने लगा। फ़िर भी किसी तरह एक बात मुँह से निकली।

बोला, 'इतना रुपया कल मैं कहाँ पाऊँगा, बड़े बाबू ? आप तो हमारी हालत की सब बात जानते हैं, हुजूर।'

बड़े बाबू ने उस बात का जवाब न देकर कहा, 'जो कहा वही करेगा। मुझे और ज़्यादा बात करने की फ़ुरसत नहीं है, जा।'

कहकर पुकारा, 'नन्द !'

नन्द हमेशा आस-पास ही रहता। पास आकर बोला, 'हुजूर !'

बड़े बाबू बोले, 'चिलम बदल दे।'

तब तक हरिहर चला गया था। जो लोग उस समय भी कमरे में बैठे थे, उनकी ओर वह घूमे। बोले, 'देखा न विपिन, मैं जितना ही ग़रीबों को ऊपर उठाने की कोशिश करता हूँ वे पढ़कर उतना ही मेरे सिर पर बैठना चाहते हैं। इसीलिए तो कभी-कभी सोचता हूँ—अब उनके सोच में नहीं पड़ूँगा, अब उनका भला करने की कोशिश भी नहीं करूँगा। लेकिन सोचता हूँ कि मैं नहीं देखूँगा तो उन्हें और कौन देखेगा ? उनका और कौन है ? डॉक्टर राय से तो उस दिन यही बात कही थी...।'

विपिन आदि बड़े बाबू की बात समझ न सके। पूछा, 'डॉक्टर राय ? डॉक्टर राय कौन हैं, हुजूर ?'

'अरे, तुम लोगों की तरह के मूरखों से देखता हूँ कि बात करना भी पाप है। डॉक्टर राय को भी नहीं पहचानते ? डॉक्टर विधानचन्द्र राय, हमारे मुख्यमंत्री, रे। ऐसा आदमी विरला होता है, जानते हो ? उनसे उस दिन कहा था—ग़रीबों का भला करने की बात कहकर महात्मा गांधी मेरे सिर पर जो बोझ डाल गये हैं कि मैं सिर ही नहीं उठा पाता हूँ।'

उसके वाद जैसे कि उन्हें अपने ऊपर घिन हुई हो इस तरह से बोल उठे, 'न, मैं अव से किसी की वात नहीं सुनूँगा, वह चाहे अमूल्य-दा ही हों या प्रसन्न-दा, किसी की वात सोचना मेरे लिए ख़त्म हो गया। मुझे वहुत सीख मिल गयी। मैं अव इस वार चुनाव में ही नहीं खड़ा होऊँगा।'

वीसवीं शताब्दी के मध्य चरण में आकरसहसा हमारा यह पृथ्वी नाम का ग्रह घूमते-घूमते अपनी निर्दिष्ट कक्षा के मार्ग को छोड़कर थोड़ा-सा पथ-भ्रष्ट हो गया। जो स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों में पढ़ते आये थे कि साधुता ही मानव का आदर्श है, मनुष्यत्व ही मानव के लिए एक मात्र अभीष्ट है, उन्होंने एक दिन ऊपर की ओर देखा कि जो लोग उनके सिर पर वैठे हैं, जो लोग करोड़ों मनुष्यों के भाग्य-विधाता बनकर सुशोभित हो रहे हैं, जो राज्य के शासन-तंत्र को कौशल के साथ चला-घुमा रहे हैं उनके निकट साधुता, सत्य, मनुष्यत्व, त्याग, न्याय-विचार—ये सव-कुछ न जाने कव अनजाने बड़े भारी उपहास में परिणत हो गये। आगे देखा कि उनके वच्चों के पढ़ने की कितावों के पन्नों में एक तरह का लेख है, मीटिंग में खड़े होकर भाषण एक तरह का दें और परदे के पीछे उनका छिपा आचरण पूरी तौर पर दूसरी तरह का है।

हरिहर या विपिन यह नहीं समझ सकते। इसीलिए वे बड़े वावू के दरवार में आकर उस समय भी हमेशा से चले आ रहे ढंग से पैरों के नीचे सिर डाल देते। वे उन्हीं बड़े वावू के सामने आकर उन्हें ही रक्षक कहकर आत्मरक्षा करने के प्रयत्न की प्रतियोगिता में प्रथम आने के गौरव में गौरवान्वित होने के लिए जी-जान से कोशिश करते रहते।

लेकिन न जाने कहाँ से कानाई घोष के कानों में कोई एक दिन वता गया कि तुमने पाठ्यपुस्तक में मनुष्य के समाज का ज़ो इतिहास छपे अक्षरों में पढ़ा था, वह झूठा है। वह सच्चा इतिहास नहीं है। वह तुम्हें तुम्हारे उचित अधिकार से वंचित करने के लिए किराये के लेखकों से लिखाया गया है। असली इतिहास तो दूसरी जगह ही लिखा जा रहा है।

असली सच्चा इतिहास लिखा जा रहा है वलरामपुर की तरह पृथ्वी के अन्य करोड़ों गाँवों के करोड़ों मनुष्यों के रसोई-घरों के बर्तनों में, करोड़ों कचहरी-अदालतों के असंख्य दस्तावेज़ों के पन्ने-पन्ने पर, और बढ़े-पेट और उन करोड़ों मनुष्यों के स्वास्थ्य की रिपोर्टों में जिनकी छातियों की एक-एक हड्डी गिनी-देखी जा सकती है।

उस दिन वलरामपुर स्टेशन के किनारे खड़े होकर स्वदेश ने दीवार पर लगा कानाई घोष का चुनाव का पोस्टर देखा था, और ठीक उसके पास लगा था पिता के चुनाव का पोस्टर।

कानाई घोष ने गौर को देखा। बोला, 'अरे गौर, इस बार फिर चुनाव में उतर रहा हूँ, पता है? अपना वोट मुझे देना।'

तब तक स्वदेश ने कानाई घोष को अच्छी तरह पहचान लिया। तो यही है वह कानाई घोष! लँगोट की तरह का मैला कपड़ा पहने, बदन पर छींट की शर्ट, हाथ में बहुत-से हैंडबिल। बहुत दिन पहले अपने पिता हरिहर घोष के साथ यह कानाई घोष आया था बाबा को प्रणाम करने। तब इस कानाई घोष की उम्र बहुत कम थी।

'तुम मुझे वोट दे रहे हो न, गौर?'

गौर ने उस बात का जवाब न देकर कहा, 'मेरा अस्सी रुपया बाक़ी है उस बार का...।'

कानाई बोला, 'अरे...तुम क्या उस रुपये के पीछे मरे जा रहे हो? क्या सोचा है कि तुम्हारा रुपया मैं मार बैठूंगा? इन पोस्टरों के छपाने में तीन सौ रुपये लग गये हैं। मैं तो तुम्हारे बड़े बाबू की तरह नहीं हूँ भाई, जो सन्दूक से रुपये निकालूं और ख़र्च कर दूं। और सोने-चाँदी गिरवी रखने का भी मेरा कारबार नहीं है।'

गौर बोला, 'हम लोग तो अब तक बड़े बाबू को ही वोट देते आये हैं।'

कानाई घोष बोले, 'अभी तक वोट देते आये हो, इसलिए अब भी उन्हें ही वोट देना होगा?'

गौर बोला, 'सो गाँव में बड़े बाबू के सिवा वैसा आदमी कौन है? उस बार भी तो आप खड़े थे। आपको तो एक भी वोट नहीं मिला। आपकी ज़मानत ज़ब्त हो गयी थी।'

कानाई बोला, 'तब की और अब की हालत क्या एक है, गौर? तब चावल का क्या भाव था और अब क्या है? सोच लो! पहले तुम्हारे समोसे का जो भाव था, क्या अब उसी भाव पर तुम समोसा-कचौड़ी-रस-गुल्ला दे सकोगे? बताओ न, दे सकोगे? चुप क्यों हो गये?'

गौर बोला, 'आप हमें तभी के भाव पर माल ख़रीद दें तो हम ज़रूर उसी भाव पर दे सकेंगे।'

कानाई बोला, 'अब राह पर आये। उसी सामान का दाम कम करने के लिए तो तुमसे वोट माँग रहा हूँ। नहीं तो अपनी गाँठ का पैसा ख़र्च कर कोई किसी के खेत के जानवर हाँकता है? तुम जो इतने दिन तक बड़े बाबू को वोट देते आये उससे तुम्हारा क्या उपकार हुआ, बताओ तो? एक भी उपकार तो बताओ?'

गौर बोला, 'जी, बड़े बाबू ने देश का क्या कम उपकार किया है?'

'सौ उपकार अगर किये हैं तो एक उपकार का नाम तो बताओ। ज़्यादा बातें करने की ज़रूरत नहीं, एक उपकार ही बताओ?'

गौर बोला, 'जी, अगर वही कहें तो चुनाव के समय हमारी दूकान से जो चाय-समोसे ख़रीदे हैं, उसके उन्होंने भरपाई दाम दिये हैं। एक पैसा भी बाक़ी नहीं है, और आप तो अब भी पूरा रुपया...।'

'अरे, मैं देख रहा हूँ कि तुमने उलटी बातें करना शुरू कर दिया है, भाई। रुपया तो मैं तुम्हें दूँगा ही, वह बात नहीं है। बात है, बड़े, बाबू ने इतने दिन चुनाव में खड़े होकर तुम्हें कहाँ का राजा बना दिया है? तुम्हारे गाँव के राह-घाट अच्छे कर दिये? एक अच्छा-सा अस्पताल गाँव में बन गया?'

गौर बोला, 'आप वह सब बात जानते नहीं हैं, कानाई बाबू। आपके बाबा हाज़िर होते तो बता सकते कि बड़े बाबू ने क्या उपकार नहीं किया! हम पुराने लोग जानते हैं। इस गाँव के सब लोग जानते हैं। बड़े बाबू न होते तो क्या तुम लिखना-पढ़ना सीखकर आदमी बनते? आपके स्कूल की लिखाई-पढ़ाई की फ़ीस तो बराबर बड़े बाबू ही देते आये हैं।'

'सो वह क्या यों ही करते हैं? माँ के गहने बंधक रखकर बड़े बाबू ने कितना सूद लिया है, इसका पता है? चुनाव में खड़े होने के पहले बड़े बाबू की कितनी जायदाद थी और अब कितनी जायदाद हो गयी है, उसका हिसाब रखते हो? झूठ-मूठ की बातों से बड़े बाबु तुम्हें धोखे में रख सकते

हैं, लेकिन मुझे धोखा देना ऐसा आसान नहीं है, समझे ?'

गौर बोला, 'लेकिन आपकी लड़की ? आपकी लड़की के स्कूल की फ़ीस अब भी कौन देता है, वही बताइये ?'

कानाई बोला, 'संध्या ? संध्या की बात कह रहे हो ? मैं जब जेल गया था तब बाबा ने जाकर ज़बरदस्ती कर्ज़ ले लिया था। कितना रुपया हमसे बड़े बाबू ने लिया है, पहले तुम उसका हिसाब करो। फिर उसके सिवा अगर तुम सब मिलकर मुझे वोट दो तो मैं बलरामपुर के लिए क्या करूँगा, यह तब देख लेना।'

गौर बोला, 'आप ऐसा क्या करेंगे, कानाई बाबू ? हमारी जो मुसीबत है हम उसी मुसीबत में रहेंगे। बीच में से आप ही कोई एक मोटी नौकरी पा जायेंगे।'

तभी दल के लड़के आकर सामने उपस्थित हो गये। कानाई घोष ने चारों ओर देखा। पूछा, 'सब पोस्टर दीवारों पर चिपका आये ?'

'देखिये ताककर, सारी दीवारों पर चिपका दिये हैं। हरिसाधन बाबू के पोस्टर के पास ही अपना पोस्टर लगा दिया है।'

कानाई घोष बोला, 'तो अब स्कूल की तरफ़ चलो, उधर कुछ नहीं किया गया है।'

उसके बाद जाने के पहले गौर की ओर लक्ष्य कर कहा, 'तो चलूं भाई, मेरी बात याद रखना।'

चलते-चलते भी स्वदेश की ओर देखकर कानाई घोष रुक गया। पूछा, 'आपको तो ठीक से पहचान नहीं पाया, आप भी क्या बलरामपुर में रहते हैं ?'

स्वदेश बोला, 'हाँ।'

'आपका वोट है न ? वोट हो तो मुझे ही वोट दीजिएगा। अब तक हमारी सारी बातें आपने सुनीं—मैं भी आपकी तरह ग़रीब आदमी हूँ, गवर्नमेंट ने मुझे बार-बार जेल भेजा, फिर भी मैं नहीं दबा, आप सब लोगों की भलाई करने के लिए ही मैं हरिसाधन बाबू के ख़िलाफ़ चुनाव में खड़ा होता हूँ।'

स्वदेश के कुछ कहने के पहले ही गौर बोल उठा, 'अरे, इन्हें आप नहीं पहचान पाये ?'

कानाई घोष बोला, 'क्यों, यह कौन हैं ?'

'अरे, यह तो छोटे बाबू हैं। यह कलकत्ता के कॉलेज में पढ़ते हैं, इसी से शायद पहचान नहीं पाये।'

'कलकत्ता में ? कलकत्ता में क्या पढ़ते हैं ?'

स्वदेश बोला, 'इस बार लॉ पास किया है।'

'अच्छा ! तो यहाँ कहाँ रहते हैं ?'

गौर ही स्वदेश की ओर से बोला, 'अरे, यह तो हरिसाधन बाबू के बेटे हैं। अपने बड़े बाबू के बेटे। इन्हें बचपन में नहीं देखा ?'

अकस्मात मानो जोंक के मुँह पर नमक लग गया हो। जोंक के मुँह पर नमक लगने से भी वह शायद इस तरह अपने को न सिकोड़ लेता। फिर शायद एक मिनट के लिए भी वहाँ ठहरने की तबीयत कानाई घोष की न हुई। वहाँ से दल-बल लेकर एक पल में ग़ायब हो पाने से कानाई घोष मानो ज़िन्दा बच गया।

हरिसाधन बाबू कलकत्ता में कम ही रहते थे। वहाँ जाकर असेम्बली के काम-धाम में व्यस्त रहते; उसके बाद बलरामपुर चले आते। बलरामपुर में ही रात बिताते। अपना इलाक़ा, अपने इतने वोटर—उनके पास ही रहना अच्छा है। बहुतेरे एम० एल० ए० हैं जो चुनाव के ठीक पहले अपने इलाक़े में जाते हैं, उसके बाद जो लोग उन्हें वोट देते हैं उन्हें वे बाद में देखने को भी नहीं मिलते !

अचानक अगर कभी गाँव के लोग इतनी दूर का रास्ता तय कर कलकत्ता में मुलाक़ात करने आते तो मुलाक़ात होना तो दूर की बात, सुनने में आता कि वे दिल्ली चले गये हैं। दिल्ली से वे कब लौटेंगे, उसका ठिकाना भी उनके दरबान या नौकर-चाकर कोई न दे सकते। ज़रा बैठने तक को न कहते; प्यास बुझाने के लिए एक गिलास पानी भी माँगने पर न मिलता।

हरिसाधन बाबू कहते, 'आप लोग यही ग़लती करते हैं; यह याद भी नहीं रखते कि एक ही माघ में तो जाड़ा नहीं बीत जाता; बाद में तो फिर वोट के लिए उनके ही दरवाज़े पर जाकर खड़ा होना होगा...।'

कोई कहते, 'हरिसाधन बाबू, बताइये तो आप कौन-सा जादू जानते हैं ? बराबर आप निर्विरोध चुने जाते हैं। आपके ख़िलाफ़ तो कोई खड़ा नहीं होता ?'

हरिसाधन बाबू कहते, 'बहुत होशियारी करना पड़ती है हज़रत, बहुत होशियारी करके ही टिका हुआ हूँ। यों ही क्या देश-सेवक बन जाने से चलता है? इसी का नाम है पॉलिटिक्स...।'

'लेकिन क्या आपके गाँव में वज्रमूर्ख ही हैं? पढ़े-लिखे लोग नहीं हैं?'

हरिसाधन बाबू कहते, 'क्यों नहीं हैं? मैंने तो खुद ही स्कूल खुलवा दिया है, कॉलेज खुलवा दिया है।'

'वह तो गवर्नमेंट के रुपये से खुले हैं।'

'अरे, गाँव के लोग क्या वह समझते हैं? वे तो जानते हैं कि मैंने ही सब कर दिया है। लेकिन भाई, वह सब करने पर भी अब कुछ न होगा। पहले तो दो-एक बार जेल जाने पर ही लोग लीडर बन जाते थे। अब वह सब युग बदल गया। वह सारा ज़माना अब बीत गया। अब वे सब धोखेबाज़ हो गये हैं। अब तो सब पाजी, चरकेबाज़ लोग हैं। धोखा जब तक चले...।'

'वह क्या सब लोग कर सकते हैं? वह तो काफ़ी मुश्किल काम है।'

'बताइये तो, न हो तो हम भी उसी तरह के धोखे करें!'

हरिसाधन बाबू कहते, 'इतनी झूठी-मूठी बातें बनाना होंगी कि सब समझ लें कि सच है। अरे, मेरा अपना बेटा ही नहीं समझ सकता। मेरा बेटा कहता था कि वह 'पॉलिटिक्स' करेगा। सो मैंने उससे कहा—तुम कह रहे हो कि पॉलिटिक्स करोगे, तो तुम झूठी बात कह सकोगे? मेरा बेटा तो मेरी बात पर ताज्जुब में पड़ गया, समझे? तब मैंने उसे समझाकर कहा कि जिसे लोग झूठी बात कहते हैं हमारी लाइन में वह बात झूठी नहीं होती, उसे कहा जाता है 'पोलिटिकल मोरैलिटी'!'

जो लोग हरिसाधन बाबू की बातें सुनते वे यह सब सुनकर ठठाकर हँस पड़ते। कहते,'वाह, ख़ूब कहा, पोलिटिकल मोरैलिटी! हरिसाधन-दा, आपसे आज नयी बात सीखी!'

हरिसाधन बाबू कहते, 'हाँ, बात सीख लो, काम आयेगी। गाँव के लोगों से मैं कहता हूँ, सब बेकार लोगों को नौकरी दिला दूँगा। नौकरी दिलाने की क्या हममें क्षमता है कि नौकरी दिला देंगे? लेकिन वैसा कहना पड़ता है। उसी का नाम है पोलिटिकल मोरैलिटी!'

'आपने हमें बड़ी अच्छी बात सिखायी; यह बात बहुत काम आयेगी।'

हरिसाधन बाबू और भी समझाकर कहते, 'यही समझ लो जैसे कि कम्युनिस्ट पार्टी है। मैं इन्हें 'पोलिटिकल ब्राह्म' कहता हूँ। पिछले ज़माने में ब्राह्म होना प्रोग्रेसिव लोगों का लक्षण था। इस युग में भी वही हुआ है।

समझ लो कि बड़े बाज़ार के व्यवसायी ग्राहकों को ठगते भी हैं, लेकिन यह भी कहते हैं कि वह 'कमर्शियल ऑनेस्टी' है।'

कलकत्ता आकर हरिसाधन बाबू को खूब आराम रहता। लड़का रहता एक मेस में; बिलकुल लॉ कॉलेज के निकट मिर्जापुर स्ट्रीट के एक मेस में। वहीं से लिखना-पढ़ना किया, वहीं से परीक्षा पास की। कलकत्ता आकर बेटे को ख़बर देते। बेटे के आने पर उससे पूछते, 'कैसे हो ?'

बेटा कहता, 'अच्छा हूँ।'

'काम सीख रहे हो ?'

'हाँ।'

हरिसाधन बाबू कहते, 'बातें इतना कम क्यों करते हो ? इतने दिनों से वकील की जूनियरी कर रहे हो, अभी तक तुम्हारा संकोच दूर नहीं हुआ ? अब भी अगर वह दूर नहीं हो रहा है तो कब दूर होगा ? अगर इस तरह चलोगे तो जीवन में बहुत उठ नहीं पाओगे। ऐसा है तो तुम्हें नौकरी कर लेना ही अच्छा था। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। अगर तुम वही चाहते हो तो डॉक्टर राय से कहकर अभी तुम्हें नौकरी दिला सकता हूँ— करोगे ? तुम नौकरी करोगे ?'

स्वदेश कुछ जवाब न दे पाता।

हरिसाधन बाबू ख़फ़ा हो जाते। कहते, 'देखता हूँ कि तुम्हें लेकर मेरी बड़ी मुश्किल है। तुम पॉलिटिक्स करो या वकालत करो, बातें बेच-कर कमाई करना होगी। वही बातें अगर तुम्हारी ज़बान पर अटक जाती हैं तो तुम जीवन में क्या करोगे ? पता है, बोल न पाने की वजह से हज़ारों वकील हमारे देश में कचहरियों में जाकर बेकार घूमते रहते हैं ? हम उन्हें बरगद के पेड़ के तले का वकील कहते हैं। तुम भी अगर बोल नहीं सकते हो तो तुम्हें भी वही बरगद के तले का वकील बनकर ज़िन्दगी बिताना पड़ेगी !'

लेकिन हरिसाधन बाबू के पास ज़्यादा बातें करने का समय न रहता। उन्हें बलरामपुर लौटना होता। जाते वक़्त कह जाते, 'शनिवार को घर आ रहे हो न, तो वहीं तुमसे बातें होंगी।'

कहकर वह चले जाते। उसके दूसरे दिन फिर आते। फिर शायद पन्द्रह दिन न आते। हरिसाधन बाबू को तब बहुत काम रहते। बेटा वकालत पास कर जूनियरी कर रहा है। बेटी बड़ी हो रही है। पत्नी बीमार है। उनकी बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं। सारे बलरामपुर के लोग उनकी ओर नज़र लगाये उम्मीदों को छाती से लगाये बैठे हैं। वह ही उनका एक-

मात्र सहारा हैं। सबकी मुसीबतों में बड़े बाबू ही उनकी रक्षा करने वाले हैं। उसके सिवा जनप्रियता बनाये रखने में ही कितनी मुसीबत है, वह तो कोई समझता नहीं। कभी-कभी ख़याल आता, क्या किया उन्होंने! कितना रुपया बैंक में जमा कर लिया! पिछले दिनों चुनाव हो गया। उसके बाद से उन्हें नींद नहीं आती! पहले ऐसा नहीं था। उनके ख़िलाफ़ कोई चुनाव की लड़ाई में खड़ा होने का साहस न करता था। तब वह गाँव में जेल जाने वालों में अकेले ही थे। वह अकेले ही आजीवन खद्दर पहनते आये थे। स्कूल के प्रधान, ग्राम-पंचायत के अध्यक्ष। कॉलिज की गवर्निंग बॉडी के चीफ़। यही थीं उनकी क्वालिफ़िकेशन्स। इन्हीं गुणों को लेकर वह बलरामपुर के चुनाव में हमेशा खड़े होते आये। लेकिन उसके बाद? उसके बाद धीरे-धीरे कैसे सब बदलता जा रहा है। अब समाज में गुणों की क़दर नहीं है। अब जिसे देखो वहीं लौंडे-लपाड़ी लोगों का दिल जाने कहाँ से सिर उठाये लीडर बनकर उठना चाहता है। किसी की कोई बैक-ग्राउण्ड नहीं; किसी का कोई वंश-गौरव नहीं। मानो लीडर होने से ही हो गया; लीडर बनना ऐसा आसान है! लीडर बनने के लिए क्या मैंने कम पैसे ख़र्च किये हैं? बहुत-सा रुपया ख़र्च कर ही अपनी लीडरी क़ायम रखना पड़ती है। उनके पास न रुपया है न कौड़ी, और लीडर बनना चाहेंगे! कैसी हेकड़ी है!

'कौन? ऊपर कौन है? नन्द?'

'नहीं बाबा, मैं हूँ।'

मुक्ति। उनकी बेटी। हरिसाधन बाबू कहते, 'क्यों रे, तू? इतनी सवेरे? इतनी सवेरे नींद कैसे खुल गयी? तुझे क्या हो गया है?'

हरिसाधन बाबू की पत्नी की मृत्यु के बाद से ही मुक्ति कैसी अकेली हो गयी है! पहले स्वदेश घर पर रहता, तब फिर भी उससे बात करने के लिए कोई तो था। उस दिन मुक्ति बहुत रोयी थी। वह खुद तो गृहस्थी में कुछ देखभाल न करते। कभी किया ही नहीं। उन्होंने सिर्फ़ रुपयों का हिसाब रखा। स्वदेश ही भागा-भागा आया और बोला, 'बाबा, बाबा, माँ कैसी हो रही हैं!'

यह सब बहुत दिनों पहले की बात है। समाचार आग की तरह बलरामपुर-भर में फैल गया। उसी दिन एक विशाल जनसभा में उनके भाषण देने की बात थी। वह मन-ही-मन भाषण का रिहर्सल कर रहे थे कि तभी यह दुर्घटना हुई। उस दिन सारा गाँव उनके घर टूट पड़ा था। ख़बर पाकर विपिन आदि सभी आये थे। स्कूल के हेडमास्टर, कॉलिज के प्रिंसिपल, बी० डी० ओ०—कोई भी रह न गया। लेकिन उनकी किसी ओर नज़र नहीं जा रही थी। मन में सिर्फ़ एक व्यक्ति की ही बात आती। वह कहता

'इतना रुपया ? इतना रुपया तुमने बरबाद कर दिया ? यह सात हज़ार रुपया मिलने से मेरी बेटी के ब्याह के वक़्त कितना गहना गढ़ा जाता ?'

हरिसाधन बाबू कहते, 'तुम औरत हो, तुम क्या समझो ? यहाँ कांग्रेस की कान्फ्रेंस है, उस समय कई लाख रुपयों के बाँसों और ट्यूबवेल का ठेका मुझे ही मिलेगा। तब देख लेना, तब उस रुपये का सूद-मूल सब वसूल हो जायेगा।'

याद है कि उसी समय सबके आगे आकर जो खड़ा हो गया था वह था हरिहर का लड़का कानाई घोष।

उसने आते ही अभय देकर कहा था, 'मैं तो हूँ बड़े बाबू, आप चुप-चाप बैठे रहिये, मैं इधर देख रहा हूँ।'

उसके बाद उस कानाई घोष ने ही सब-कुछ किया था। अजीब लड़का है ! जो मीटिंग में उनके विरुद्ध ऐसा गरम-गरम लेक्चर देता फिरे, वही उनकी मुसीबत के दिन सबसे आगे आकर दोनों हाथ बढ़ा उन्हें ढाढ़स बँधाने आया। वही जानें कहाँ से लड़कों का एक दल लाकर पत्नी के शव को श्मशान ले गया। उसके बाद उसने किसी को और कुछ न करने दिया। श्मशान जाकर कहाँ से लकड़ी आयी, किसने आग दी, वह सब उन्हें कुछ याद नहीं। याद है सिर्फ़ यह कि जब कानाई घोष पास आकर बोला, 'चलिये बड़े बाबू, घर चलिये, मैं आपको घर ले चलूँगा।'

और याद है कि हरिहर भी घर तक आया था। कहा था, 'यही संसार का नियम है बड़े बाबू, इसमें आप क्या करेंगे और हम ही क्या करेंगे ? हो सकता तो हम सभी माँ को ज़बरदस्ती पकड़ रखते। हमारी सती लक्ष्मी माँ चली गयीं...।'

लड़की को देखकर हरिसाधन बाबू को फिर वे सब बातें याद आने लगीं। पुकारा, 'नन्द !'

नन्द आया। बोला, 'मुझे बुलाया, बड़े बाबू ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'अरे नन्द, देख तो दीदी क्या चाहती है ? उसे खाने-पीने को दे दे।'

मुक्ति बोली, 'मैं खाऊँगी नहीं।'

'खाओगी नहीं तो फिर क्या चाहिए ?'

मुक्ति ने पिता की छाती पर सिर रखकर दोनों हाथों से पिता को जकड़ लिया।

नन्द दुलार से पुकारने लगा। बोला, 'आओ दीदी, आओ, मैं तुम्हें खाना दूंगा।'

सिर हिला-हिलाकर वह कहने लगी, 'नहीं, मैं खाऊँगी नहीं। कुछ

नहीं करूँगी। मैं बावा के पास रहूँगी।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'छिः, मुझे बहुत काम हैं, बेटी। तुम्हारे साथ रहने से कैसे चलेगा? देख रही हो न, कितने लोग आये हैं, मुझे उनके साथ बातचीत, काम करना होगा।'

मुक्ति बोली, 'तो मेरी माँ को ला दो...।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'माँ को कैसे लाऊँ? माँ तो गुस्सा होकर चली गयी।'

'तो माँ गुस्सा होकर कहाँ गयी हैं? मैं वहीं जाऊँगी। जाकर माँ को बुला लाऊँगी।'

हरिसाधन बाबू लड़की को ढाढ़स बँधाकर बोले, 'माँ क्या यहाँ है? वह तो बहुत, बहुत दूर चली गयी है। यह पैसे लो। नन्द-दा इन पैसों से तुम्हें लेमनचूस मोल ले देंगे, लो!'

मुक्ति बोली, 'नहीं, मैं पैसे नहीं लूँगी।'

हरिसाधन बाबू जिस तरह पत्नी को घूस देकर स्वार्थसिद्धि करते थे, लड़की को भी वैसे ही घूस देकर उन्होंने अपनी शान्ति अक्षुण्ण रखना चाही। बोले, 'लो रानी बेटी, पैसे लो, शरारत न करो। देख तो रही हो, मेरा कितना काम...।'

मुक्ति बोली, 'तो इन्हीं पैसों से मुझे माँ को ख़रीद दो।'

अब हरिसाधन बाबू और बरदाश्त न कर सके। बोले, 'तुम कोई जाना मत, मैं आ रहा हूँ। इसे अन्दर करके आ रहा हूँ।'

कहकर लड़की को गोद में उठाकर घर के अन्दर चले गये। अन्दर जाकर घर के नौकर-नौकरानी, रसोईदारिन—सबको डाँटने लगे, 'तुम सब क्या मर गये हो? देखते हो, मैं बैठक में काम कर रहा हूँ और दीदी मुझे जाकर परेशान कर रही हैं। तुम्हें किसी को दिखायी नहीं पड़ता? फिर तुम्हें ढेर-के-ढेर रुपये देकर यहाँ क्यों रखा जा रहा है? सोने के लिए? मैं लड़की लेकर बैठूँ या अपना काम करूँ? तमाम निकम्मे लोग मेरे सिर पर इकट्ठा हुए हैं। कोई किसी काम का नहीं, सिर्फ़ पैसे के मगरमच्छ हैं...।'

कहकर लड़की को एक कमरे में छोड़कर बाहर से दरवाजे की साँकल लगा दी और साथ-ही-साथ घर के नौकर-नौकरानी, रसोईदारिन—सभी बड़े बाबू की डाँट खाकर वहाँ आ हाज़िर हुए। उनकी बौखलायी नज़र के सामने हरिसाधन बाबू जल्दी से बैठक के कमरे में चले गये। कमरे के अन्दर से लड़की की चीख़-पुकार उनके कानों में पड़ने लगी। उन्होंने दोनों कान उँगलियों से बन्द कर लिये। मन लगाकर देश का काम करें—इन सब झंझटों से वह भी नहीं हो पाता।

उसके वाद वैठक के कमरे में घुसे। अभ्यागत-अनुचर उस समय भी उम्मीद लगाये वहाँ वैठे थे। वह कमरे में घुसकर अपनी कुर्सी पर बैठते ही वोले, 'तो, मैं क्या कह रहा था, विपिन...?'

कलकत्ता के नामी वकील के वारे में वातें करते ही लोग सर्वंजय वनर्जी की ओर इशारा करते। अलीपुर कोर्ट के जज से लेकर मुहर्रिर, मुवक्किल, चाय वाले तक, जिससे पूछें वही सर्वंजय वनर्जी को दिखा देगा। सो यह कैसे पहचाना जाये कि सर्वंजय वनर्जी वड़े भारी क्रिमिनल वकील हैं? पहचानने के लिए देखना पड़ेगा कि उनका अपना घर है या नहीं? शाम के वक्त घर के वाहर दो-चार अफ़सरों की गाड़ियाँ खड़ी हैं या नहीं? यह पेशा इसी तरह का है। वाहरी तौर पर जिस तरह का ठाठ बनाये रखना पड़ेगा, उसी तरह जज-मजिस्ट्रेट के इजलास में ख़ातिर-तवज्जह पर नज़र रखने की भी ज़रूरत है। वह भी वड़प्पन की एक निशानी है।

सर्वंजय वनर्जी कहते, 'अव नहीं चलता, इससे तो राह पर भीख माँग-कर पेट भरना अच्छा है।'

मुवक्किल या जूनियर या उनके टाइपिस्ट सभी जानते कि वह वकील साहव का श्मशान-वैराग्य है—रुपयों के पहाड़ पर वैठकर रुपयों की निस्पृहता जताना।

हरिसाधन वावू ने सिर्फ़ टेलीफ़ोन कर दिया था।

'कौन?'

हरिसाधन वावू ने अपना नाम वताया था।

कृतार्थ हो गये थे सर्वंजय वनर्जी साहव। वोले थे, 'अरे, क्या बात है? अचानक तुम? तुम्हारी आवाज़ पहचान ही नहीं पाया। आवाज़ भारी क्यों लग रही है? जुकाम है क्या?'

हरिसाधन वावू ने कहा था, 'वड़ी मुसीवत में पड़ गया हूँ। तभी तुम्हें टेलीफ़ोन किया है। मेरा वेटा स्वदेश पास हो गया है।'

'अच्छा! इस वीच स्वदेश इतना वड़ा हो गया? वेरी गुड न्यूज़! अभी उस दिन तो ज़रा-सा था...।'

हरिसाधन बाबू ने कहा, 'दिन तो देखते-देखते बीत जाते हैं, भाई। हम-तुम भी तो कभी छोटे थे। अब क्या वैसे ही हैं? मुझे देखकर तुम पहचान ही नहीं पाओगे। बाल-बाल पक गये हैं...।'

'अरे, मेरा भी वही हाल है। किधर, कब बरस बीत गये, पता ही नहीं चला, भाई। मुक़दमे करते-करते एकदम ख़त्म हो गया। तुम्हारे बाल-बच्चे कितने हैं?'

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'तुम्हारे पास आकर सब बताऊँगा। आज शाम को घर रहोगे?'

उसी रोज़ शाम को सर्वजय बनर्जी के पास गये थे हरिसाधन चाटुर्ज्या मशाई। किसी ज़माने में दोनों एक साथ कॉलेज में पढ़ते थे। तब दोनों में बड़ी घनिष्ठता थी। चाय की दूकान पर बैठकर दोनों बातें किया करते थे। उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते। जे०एम० सेनगुप्त और सुभाष बोस की राजनीति पर बहस करते। इतने दिनों के बाद दोनों की मुलाक़ात हुई थी। एक पूरे तौर पर राजनीति में चले गये थे और दूसरे वकालत में।

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'तुम तो भाई आख़िर में बहुत सफल आदमी सिद्ध हुए!'

सर्वजय बनर्जी बोले थे, 'तुम ही भाई क्या कम सफल हो? तुम ही तो भाई अब हमारे कर्णधार हो! हमारा कर्ण धारण किये हुए हो...।'

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'वह नाम ही को है; ज़िन्दगी-भर लड़ाई ही करना पड़ती है। हर बार चुनाव होता है और ब्लड-प्रेशर बढ़ जाता है; रात को नींद नहीं आती। बीच-बीच में सोचता हूँ कि सब-कुछ छोड़-कर किसी जंगल में चला जाऊँ...।'

'मिनिस्टर कब बन रहे हो?'

'डॉक्टर राय तो कहते हैं इस बार लेबर पोर्टफ़ोलियो का भार लेने के लिए। लेकिन मैं कहता हूँ कि फ़ाइनेन्स न मिलेगा तो मैं उस झंझट में नहीं जाऊँगा...।'

'उसमें रुपया है?'

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'भाई, अगर यह कहो तो सच कहने में क्या, रुपये से भी मुझे नफ़रत हो गयी है।'

सर्वजय बाबू ने कहा था, 'वह बात मैं भी बीच-बीच में कहता हूँ—लेकिन क्या वकालत छोड़ सका हूँ? एक बार उस पॉलिटिक्स का नशा छा जाये तो आप कितना ही छोड़ना चाहे, वह आपको छोड़ना नहीं चाहता...।'

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'न, पत्नी के मरने के बाद सचमुच सोचा

था कि अब फिर नहीं, अब रिटायर कर जाऊँगा। पर हुआ क्या, मेरी ही एक प्रजा का लड़का मेरे मुक़ाबले में खड़ा हो रहा है। भाई, उसका नाम है कानाई घोष। किसी फ़ैक्टरी में पैंतीस रुपये महीने पाता है। लेकिन यूनियन करके दो पैसे हथिया लेता है। बहुत-सी यूनियनों का अध्यक्ष है...।'

सर्वजय बाबू बोले थे, 'वह क्या एक ही ऐसी यूनियन हुई? आजकल सब ट्रेड यूनियनों ने देश का कैसा सत्यानाश किया है...!'

'और भाई, मैंने ही जेब से पैसा देकर बरसों उसके स्कूल की लिखाई-पढ़ाई का ख़र्च जुटाया। वह जब जेल काटता, तो बराबर उसकी लड़की की स्कूल की फ़ीस दी। उसके बाद उसके बाप को सपरिवार जीवन-भर खिलाया-पहनाया, भरण-पोषण किया, वही उसका बेटा अब लायक़ बनकर यूनियन का लीडर हो गया, और मुझे गिराने की कोशिश कर रहा है...।'

सर्वजय बाबू बोले थे, 'सो तुम ही पॉलिटिक्स क्यों कर रहे हो? यह लाइन छोड़ दो न!'

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'भाई, मैं तो छोड़ देना चाहता हूँ। लेकिन जिन लोगों ने मेरे दल में इतने दिनों काम किया है, मेरे रिटायर होने पर वे कहाँ जायेंगे? वे तो रातों-रात दल नहीं बदल सकते। और उसके सिवा दूसरे दल तो अब उन्हें लेंगे भी नहीं। वे ही तो मुझे खड़ा कर रहे हैं...।'

सर्वजय बाबू बोले थे, 'न, न, वह सब सोचने से अब नहीं चलेगा। राजनीति बहुत गन्दी चीज़ है, यह जानकर भी तुम उस लाइन में गये क्यों? वह सब क्या मेरे-तुम्हारे तरह के भले लोगों के लायक़ है?'

हरिसाधन बाबू बोले थे, 'मेरे बाबा भी हमेशा यही बात कहते थे। लेकिन गांधीजी! गांधीजी की बातों से ही तो मेरा सत्यानाश हुआ। उन्हीं ने तो दिमाग़ में वह नशा भर दिया।'

'अरे, उस वक़्त की बात छोड़ो। अँग्रेजों के राज्य में सब-कुछ दूसरी तरह था। तब निखालिस देशभक्ति थी, देश-सेवा। अब तो वह नहीं है। अब वह है कैरियर, पेशा। जिस तरह से हम कोई वकालत, डॉक्टरी, इंजीनियरिंग करते हैं, वह भी वैसा ही एक धन्धा है। पैसे कमाना ही असल चीज़ हो गयी है। एक बार किसी तरह चुनाव में खड़े हो सको, जीत सको तो बरसों अनेक लोगों के सिर पर चढ़कर खाओ...।'

हरिसाधन बाबू बोले थे, 'हटाओ, वे सब बातें रहने दो। अब मैं अपने लड़के की बात कहता हूँ। लड़के को तुम्हारे पास भेज दूंगा।'

'सो उसे तुमने अपने धन्धे में क्यों नहीं लगाया?'

हरिसाधन वाबू वोले थे, 'भाई, वह मेरे धन्धे में नहीं चल सकेगा। वह वड़ा सीधा-सादा आदमी है। मेरे आगे सिर उठाकर वात ही नहीं कर सकता। वात कहने की कोशिश ही नहीं करता। उसके भविष्य के लिए ही मुझे वड़ी चिन्ता है। उसके लिए कुछ हो जाने पर ही मैं छुट्टी ले लूँगा। हम लोगों की उम्र हो गयी है। आदमी कव तक काम कर सकता है?'

हरिसाधन वाबू ने जो वातें उस दिन सर्वजय वनर्जी से कही थीं वे दुनिया के हर मध्यवित्त आदमी की कहानी हैं। पंडित मोतीलाल नेहरू ने जवाहरलाल नेहरू को आदमी वना जाना चाहा था। और इंदिरा गांधी भी चाहती हैं राजीव गांधी, संजय गांधी को आदमी वना जाना। दिल्ली के वादशाह वही कर गये। फ्रांस के नेपोलियन ने वही किया था। आज तक दुनिया का कोई राजा नहीं जिसने ऐसा न किया हो। ऐसा कोई पिता नहीं जो ऐसा नहीं करता। यह तो इंसानों के स्वभाव की वात है। कुत्ता या विल्ली भी वही करते हैं। वही पिता की इच्छा का पालक स्वदेश जिस दिन सर्वजय वनर्जी के पास आया था, तो वह भी उसे देखकर ताज्जुव में नहीं पड़े थे, पर ताज्जुव में पड़ गये थे उसकी शकल देखकर।

पूछा था, 'इतने धन्धे-व्यापार रहते तुम इस पेशे में क्यों आये? क़ानून क्या तुम्हें अच्छा लगता है?'

स्वदेश ने पहले कोई जवाव नहीं दिया था।

सर्वजय वावू ने पूछा था, 'क्रिमिनल लॉ में कितने नम्वर मिले थे?'

'मैं सेकेंड आया था।'

'ठीक। तो यह समझा जाये कि इस विषय में तुम्हारी दिलचस्पी है। असल में जिस सब्जेक्ट में तुम्हारी रुचि है, उसी में तुम चमक सकोगे। यह नौकरी नहीं है, समझे? यहाँ अपनी गुणवत्ता दिखा सकने पर ही तुम्हारी उन्नति है। और अगर एक वार यह गुणवत्ता दिखा सको तो कोई तुम्हारी उन्नति को रोक नहीं सकेगा। महात्मा गांधी भी इसी पेशे में पहले आये थे। लेकिन यह पेशा उन्हें अच्छा न लगा, इसीलिए वे पॉलिटिक्स में चले गये। तुम्हें कोई असुविधा हो तो मुझे वताना। कुछ पूछना हो तो उसमें भी कोई संकोच न करना।'

उसके बाद सब-कुछ अच्छी तरह चलने लगा। मिर्जापुर स्ट्रीट के मेस में रहना और हफ़्ते में एक दिन बलरामपुर जाना। इतवार का दिन देश में विताकर फिर सोमवार को सवेरे की ट्रेन से कलकत्ता लौट आना। घर जाकर भी वही दृश्य। वावा की बैठक में वही पहले की तरह भीड़। किसकी ज़मीन पर फ़सल हुई; किस बी० डी० ओ० के पास धरना देने के वाद भी खाद नहीं ख़रीदा जा सकता; किसको लड़की की शादी के

लिए मदद चाहिए। किसी के बेटे की नौकरी। किसके बाग़ के बाँस किसने चोरी से काट लिये, उसका पंचायत में फ़ैसला। तरह-तरह के काम में बाबा बहुत व्यस्त हैं। घर के अन्दर जाकर भी वही एक-सी हालत। मुक्ति मानो और ही तरह की हो गयी है। छुटपन की वह भाग-दौड़, आमड़े के पेड़ पर चढ़कर खाने का लालच अब नहीं है।

भाई को देखते ही वह निकट आ जाती।

पूछती, 'तुम्हें आने में इतनी देर हो गयी ?'

स्वदेश कहता, 'आज ट्रेन देर से आयी।'

उसके बाद कुछ रुककर पूछता, 'तेरा क्या हाल है ?'

मुक्ति हँसने की कोशिश करती। कहती, 'वाह, मेरा हाल क्या ? मैं खाती-पीती और सोती हूँ।'

'दिन-भर किस तरह बिताती है ?'

'किस तरह क्या ? खा-पीकर और सो कर...। तुम अभी तो आये हो। कल रसोईदारिन बुआ से कह रखा था—क्या-क्या बनाना होगा। ख़रीद-फ़रोख्त कर रखा है। तुम खाओगे, इसलिए नन्द-दा से कहकर तालाब से मछली मँगा रखी है। पाँच सेर वज़न की मछली फँसी है।'

स्वदेश बोला, 'वह सब क्यों किया ? इतना खाकर मेरी तबीयत ख़राब हो जायेगी न !'

मुक्ति बोली, 'तो क्या तुम अकेले खाओगे ? हम सब भी तो खायेंगे। और हफ़्ते-भर मेस में क्या खाना मिलता है, वह तो सबको मालूम है। यह एक दिन जो कुछ हो सके अच्छा खा लो। कल तुम्हारे मेस में क्या-क्या बना था ?'

'कल एक दूकान पर खा लिया था।'

'क्यों, दूकान पर क्यों खाया ? खाना नहीं बना था ?'

'हमारा ठाकुर देश चला गया था। इसीलिए सबने कहा कि दूकान पर चलकर कचौड़ियाँ और आलू की तरकारी खाकर ही पेट भर लिया जाये।'

उसके बाद स्वदेश ने कहा, 'खाने की बात छोड़। जानती है मुक्ति, मुझे कलकत्ता में रहना अब अच्छा नहीं लगता।'

मुक्ति बोली, 'लेकिन कलकत्ता में नहीं रहोगे तो करोगे क्या ? वकील बनने पर तो कलकत्ता में ही रहना पड़ेगा।'

'इसीलिए तो कहता हूँ। कलकत्ता में बातें करने के लिए एक भी आदमी नहीं मिलता। कलकत्ता में कोई दूसरे के बारे में नहीं सोचता...।'

'यहीं कौन किसकी बात सोचता है ?'

स्वदेश बोला, 'यहाँ बात न करने पर भी कुछ ख़ास आता-जाता नहीं। खेत पर जाकर थोड़ा घूम आने पर भी बातें करने का काम हो जाता है। तू अगर वहाँ एक दिन भी जाये तो पागल हो जाये !'

मुक्ति ताज्जुब में पड़कर कलकत्ता के चित्र की कल्पना करती। पूछती, 'तुम जिस घर में रहते हो उसमें लोग नहीं हैं ?'

भाई की बात सुनकर मुक्ति आश्चर्य में पड़ जाती। फिर पूछती, 'उससे तो अच्छा है दादा, कि तुम पूरा घर किराये पर ले लो। फिर मैं वहाँ आकर तुम्हें अच्छा-अच्छा खाना बना दिया करूँगी।'

आने के दिन फिर गौर से मुलाक़ात हुई। गौर बोला, 'कब आये, छोटे बाबू ?'

स्वदेश बोला, 'कल सवेरे आया था, आज अभी जा रहा हूँ—सब ठीक तो है ?'

गौर बोला, 'कैसे ठीक रहूँगा, छोटे बाबू ? चीनी का जो दाम हो गया है उसमें अब नहीं चलता। छेना, चीनी, मैदा—दिन-पर-दिन सब चीज़ों के दाम बढ़ते जा रहे हैं।'

स्वदेश ने पूछा, 'कानाई बाबू ने तुम्हारी मिठाइयों का दाम दे दिया ? वही जो तुम्हारे अस्सी रुपये बाक़ी थे ?'

गौर बोला, 'बताइये तो, किस तरह देंगे ? चुनाव में तो हार गये कानाई बाबू। बड़े बाबू से कानाई बाबू कभी जीत सकते हैं ?'

स्वदेश बोला, 'अच्छा गौर, तुम सब मेरे बाबा को वोट क्यों देते हो ? मेरे बाबा तो बड़े आदमी हैं। और कानाई बाबू हैं तुम लोगों की तरह मामूली आदमी...।'

गौर बोला, 'आप कह क्या रहे हैं ? मान लीजिये कि गाँव में कहीं मुसीबत आ जाये, रुपयों की ज़रूरत हो, तो कानाई बाबू हमारा क्या भला कर सकेंगे ? है इतना रुपया कानाई बाबू के पास ?'

बात सच है। उधर ट्रेन आ गयी थी, और ज्यादा बात करने का समय भी नहीं था। ट्रेन के आते ही स्वदेश उस पर चढ़ गया। सबको मिलकर बाबा को वोट देने के माने वह इतने दिनों बाद समझ सका। असल में सभी रुपये वालों के इर्द-गिर्द रहना चाहते हैं। वे इस तरह का आदमी चाहते हैं जिसके पास जाने पर हाथ फैलाते ही रुपया मिल जाये !

सर्वजय बाबू एक दिन बोले, 'तुम क्या अभी भी उसी मिर्जापुर मेस में हो ?'

स्वदेश बोला, 'हाँ...।'

'वहाँ तुम्हें कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?'

स्वदेश बोला, 'तकलीफ़ किस बात की ? और भी कितने ही लोग तो हैं वहाँ ।'

'सिंगल बेड का रूम ?'

'जी हाँ ।'

'खाना-पीना कैसा है ?'

'ख़राब नहीं है...।'

'महीने में कितना ख़र्च पड़ता है ?'

स्वदेश बोला, 'खाना-रहना मिलाकर एक सौ बीस रुपये ।'

'एक सौ बीस रुपये में कहीं अच्छा रहना-खाना हो सकता है ? होना मुमकिन है ? ज़रूर मछली-अछली रोज़ नहीं मिलती होगी ?'

'नहीं, रोज़ मछली नहीं बनती । मछली-मांस के प्रति मुझे कोई लोभ-लालसा भी नहीं है ।'

'लालसा न सही, लेकिन प्रोटीन की तो आदमी को ज़रूरत है । और कमरा कैसा है ?'

स्वदेश बोला, 'बस बरसात में छत थोड़ा-थोड़ा टपकती है, पुराना मकान है न ! किराया कम है, इसीलिए मकान-मालिक छत की मरम्मत नहीं कराता । हमें अपने पैसे से बीच-बीच में मरम्मत कराना पड़ती है ।'

लगा कि सर्वजय बाबू बात सुनकर थोड़ा असन्तुष्ट हुए । बोले, 'तुम्हारी तो अच्छी प्रैक्टिस होगी नहीं स्वदेश, तुम तो कभी ऊँचा उठ नहीं सकोगे । मैंने सोचकर देखा है कि तुम्हारी किसी दिन उन्नति न होगी ।,

स्वदेश की समझ में न आया कि सहसा सर्वजय बाबू ने ये बातें क्यों पूछीं, क्यों कहीं ? साधारणतः उनमें हमेशा काम की ही बातें हुआ करतीं । केस और क्लायंट, डिग्री और इंजंक्शन, जेल और ज़मानत—यही सब । उन्हें व्यक्तिगत बातें करने का वक़्त ही नहीं मिलता । उन्हें चारों ओर से सिर्फ़ मुवक्किल ही घेरे रहते । लेकिन क्यों कभी भी उसकी उन्नति नहीं होगी, इसे वह न समझ सका । इसके सिवा बहुत बार इजलास में खड़े होकर जज के सामने स्वदेश ने जो सवाल किये उन्हें सुनकर सर्वजय बाबू ने उसकी तारीफ़ की थी । कहा था, 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा बोले स्वदेश, तुम पिता का नाम चला निकलोगे...।'

बाबा ने भी जितनी बार सर्वजय बाबू से पूछा था कि स्वदेश कैसा काम कर रहा है, उतनी ही बार सर्वजय बाबू ने कहा था 'बहुत अच्छा, तुम्हारा लड़का खूब प्रॉमिसिंग बॉय है । तुम्हारा नाम खूब चमकेगा ।'

बाबा सुनकर खुश हुए थे । बेटे की तारीफ़ से कौन पिता खुश नहीं

होता ?

लेकिन बात कहने के बाद ही सर्वजय बाबू फिर बोले थे, 'उसकी उस तरह की प्रवृत्ति ही नहीं है...।'

'प्रवृत्ति नहीं है ? प्रवृत्ति नहीं है माने ?

सर्वजय बाबू बोले थे, 'प्रवृत्ति नहीं माने वैसी महत्वाकांक्षा नहीं है। काम करता है, पढ़ना-लिखना करता है, बस। जानने की इच्छा है, सीखने की भी इच्छा है, लेकिन दुनियावी बुद्धि ज़रा कम है।'

'किस तरह ?'

बात सुनकर बाबा का चेहरा सूख गया था। यह क्या बात सुनी उन्होंने ! ऐम्बिशन नहीं, उच्चाकांक्षा नहीं इंसान में, यह कैसी बात ! वेरी बैड। इसके सिवा लड़का क्रिमिनल लॉ में सेकेंड आया था। यही देखकर तो उन्होंने लड़के को इस पेशे में भेजा था। और लड़के में ऐम्बिशन नहीं ! तो वह चाहता क्या है ?

सर्वजय बोले, 'असल में रुपये के लिए उसे वैसा मोह नहीं है।'

बेटे का हाल सुनकर बाबा सचमुच चौंक गये थे।

'रुपये का मोह नहीं है ? तुम कह क्या रहे हो ? तब तो वह जीवन में कुछ भी नहीं कर सकेगा।'

सर्वजय बोले, 'पता नहीं, मेरी धारणा कितनी ठीक है ! उसकी चाल-ढाल, बातचीत, हाव-भाव देखकर मुझे यही लगा। तुम उसके कपड़े-लत्ते-जूते की ओर देखो, कितनी सामान्य, सादी पोशाक ! अभी भी छः रुपये गज़ की छींट की शर्ट पहनता है, पता है ? आठ रुपये जोड़े के जूते। मैंने टेरीलीन की शर्ट पहनने को कहा तो बोला कि टेरीलीन की शर्ट पहनने से उसे बहुत पसीना आता है। लेकिन मैंने कहा—पसीना आने दो, मुझे भी तो पसीना आता है, लेकिन नामी वकील बनने के लिए उतनी तकलीफ़ तो उठाना ही पड़ेगी। पहले रुपया, नाम, चमक-दमक, ठाठ-बाट, उसके बाद ही तो शरीर है। मुझे तो भाई गर्मी के दिनों में लुंगी पहनकर नंगे बदन रहना अच्छा लगता है, तो क्या वह पहनने से मेरे पास मुवक्किल आयेंगे ? मेरी वह सूरत देखकर ही भाग जायेंगे। कहेंगे कि मेरे पास पैसा नहीं है, ग़रीब हूँ। बस, तभी मेरे बारह बज जायेंगे...।'

बाबा बोले, 'लेकिन मैं तो भाई सीधे-सादे ढंग से ही रहता हूँ।'

सर्वजय बोले, 'तुम पॉलिटिक्स करते हो, तुम लोगों की बात अलग है। तुम्हें सीधे-सादे रहना ही अच्छा है। वही भेष तुम्हारी पूँजी है, जिस तरह साधु-संन्यासियों की होती है। वे अगर दाढ़ी, जटा-वटा न बढ़ाते तो क्या सोचते हो उनका रोज़गार चलता ? वे जितने नंगे बनकर रहेंगे उतनी

ही उनकी आमदनी वढ़ेगी। उतनी ही उनके चेले-चपाटियों की संख्या और वढ़ेगी, उतना ही अधिक उनके चेले और दक्षिणा देंगे...।

वात ने वावा को और भी सोच में डाल दिया। बोले, 'मैं तो स्वदेश को हर महीने वहुत रुपये देना चाहता हूँ। लेकिन वह तो ज्यादा रुपये लेता ही नहीं। कहता है—मुझे ज़रूरत नहीं...।'

सर्वजय वावू वोले, 'न, न, न, तुम उसकी बात मत सुनो, रुपयों की ज़रूरत नहीं है कहने पर भी तुम उसके हाथों में रुपये थमा देना। लड़के को अगर आदमी वनाना चाहते हो तो उसे और शौक़ीन वनने को कहो। अव पहले का ज़माना नहीं रह गया। अव पैसा डालने से ही पैसा आता है—यही आजकल का चालू नियम है...।'

ये सब वातें जिन्होंने सुनी थीं उन्होंने स्वदेश को वतायी थीं। इतने वक़्त वाद सर्वजय वावू के मुँह से ये सब सवाल सुनकर अपने वावा की सब वातें याद आयीं। याद आने से दुख होने लगा। दुख उसे अपने लिए नहीं हुआ। दुख हुआ सर्वजय वावू और वावा की बात सोचकर, और इस ज़माने के मनुष्य की दुर्वुद्धि की वात सोचकर!

सर्वजय वावू वोले, 'तुम अपना मेस वदलो, समझे? उस मेस की शकल देखकर कोई भी क्लायंट फिर तुम्हारे आस-पास नहीं फटकेगा। मेरी किस तरह उन्नति हुई, यह जानते हो? मेरी जब एक पैसे की आमदनी नहीं थी, जब किराये के मकान में दिन काटता था, तव मेरे ससुर ने मुझे नयी गाड़ी ख़रीद दी। बोले—यह गाड़ी देखते ही रुपया हर-हराकर तुम्हारे सन्दूकों में भरने लगेगा। और वही हुआ। मेरे ससुर विचक्षण व्यक्ति थे; उनकी ही वात सच हुई। उसी दिन से हर-हरकर ही नहीं, एकदम शेर की तरह फाँदता हुआ रुपया आने लगा...।'

उसके वाद ज़्यादा वात कहने का सुयोग नहीं हुआ। मुवक्किल आ गये। सिर्फ़ समाप्त करने के पहले बोले, 'ये सब बातें कह रहा हूँ, इनका कुछ ख़याल न करना। पहले भी मेरे पास वहुतेरे जूनियर आये, लेकिन किसी से इस तरह की वात नहीं कही, लेकिन तुम मेरे अपने लड़के की तरह हो, इसीलिए कहा।'

मनुष्य के जीवन-यापन में केवल एक ही समस्या है, और वह है जीवन-धारण ! हम ज़िन्दगी को इस तरह जकड़कर बैठे हैं जिसमें कभी भी हमारा क़दम न डगमगा जाये। ठीक से चल तो सकेंगे ? हमारी यात्रा का मार्ग तो सुगम होगा ? सृष्टि के प्रथम युग से प्रारम्भ कर मनुष्य चलते-चलते बहुत बार सिर पर आकाश और पैरों के नीचे धरती की ओर देखकर आश्चर्य में पड़ गया है। यहाँ के आकाश ने बहुत बार हमें लाल आँखों से देखा है; पैरों के नीचे की धरती भी बहुत बार काँटों से पट गयी हैं। बार-बार डर लगा है कि पथ-भ्रष्ट, लक्ष्य-भ्रष्ट हो गये। यही लगता कि मृत्यु हमें भयंकर भृकुटी चढ़ाकर निगल जायेगी। फिर भी एक वंश के बाद दूसरे वंश के अनुक्रम में पहुँचकर मनुष्य आज भी अक्षय होकर स्थित है।

बलरामपुर तो एक छोटा-सा नगण्य गाँव है। लेकिन छोटा कहने ही से क्या तुच्छ है ? लगता है कि बलरामपुर ही हमारे इस विशाल भू-भाग का एक प्रतीक है। हिंसा से इसका सूत्रपात होने पर भी स्वार्थ के लिए इसके मनुष्य एक गुट में बँधे हैं। मनुष्य जब समाज से अनुशासित प्राणी नहीं था, तब तो हिंसा और प्रतियोगिता ही उसकी आत्मरक्षा और आत्म-प्रतिष्ठा का एकमात्र अस्त्र थे। किन्तु ज्यों ही वह यूथबद्ध हुआ कि तभी वह सामाजिक प्राणी में परिणत हो गया। तब से मानव-समाज में सह-योगिता नहीं रह गयी, सहयोगिता की जगह आयी प्रतियोगिता। कौन किसे पीछे ढकेलकर एकदम सबके सिर पर चढ़कर बैठेगा, इसी की प्रति-योगिता है। हरिसाधन बाबू ने ज्यों ही देखा कि कानाई घोष उन्हें पीछे ढकेलकर बलरामपुर के लोगों की धरती पर सबके सिरों पर चढ़ बैठना चाहता है तभी शुरू हुआ विरोध। हरिसाधन बाबू जिस तरह अपनी बँधी जगह से नीचे नहीं उतरना चाहते थे, उसी तरह कानाई घोष भी उनको उनकी ऊँची जगह से उतारने के लिए कमर कसे था।

यह है भारतवर्ष का चालीस हज़ार वर्षों का इतिहास। आर्यों के अपने आपसी झगड़ों के बीच आये अनार्य। और उन अनार्यों के पराजित होने पर कुछ दिनों के लिए आयी शान्ति। तभी फिर अपने पारस्परिक संग्राम शुरू हो गये। शुरू हो गया एक-दूसरे के गले काटना। और उस गले काटने में जो टिक गया सो टिक ही गया, और जो नहीं टिका वह ध्वंस हो गया।

इतने दिनों तक बलरामपुर में प्रतिहिंसा, प्रतिरोध, प्रतियोगिता—कुछ भी न था। बलरामपुर के लोग बड़े बाबू को ही सिर पर बिठाकर निश्चिन्त थे। वे जानते थे कि विपत्ति-आपत्ति में बड़े बाबू ही उनके सहारा

हैं। लेकिन कानाई घोष पता नहीं कलकत्ता की किस फ़ैक्टरी में नौकरी कर, यूनियन कर-करके कौन-सी विद्या सीख आया और कहते हुए फिरने लगा, 'बलरामपुर के बड़े बाबू ही हैं असली क्रिमिनल। जो खेती करे वही मालिक। जोतदार और मालिक ही देश के असली दुश्मन हैं। वे ही मनुष्य के मुँह का कौर छीनकर खा रहे हैं। कठोर हाथों से उनका दमन न करने से ग़रीब ज़िन्दा नहीं रहेंगे। तुम अगर ज़िन्दा रहना चाहते हो तो पहले उनको समाप्त करो...।'

और भी कहने लगा, 'जो कुछ लिखाई-पढ़ाई आदमी स्कूल में सीखता है वह सच्ची शिक्षा नहीं है। जो लोग लीडर बनकर आज देश की नेतागीरी कर रहे हैं वे असली लीडर नहीं हैं। आप मेरे मनोबल हैं। आप मेरे बाहुबल हैं। आप अपना मनोबल मुझे उधार दें, मैं बलरामपुर को स्वर्ग बना दूँगा। यहाँ आज तीस बरसों में ढंग का एक रास्ता नहीं बना। गढ़ैया के पानी को निकालने का कोई ढंग का इन्तज़ाम नहीं हुआ। कोई कुटीर-उद्योग नहीं बना, हम जैसे ग़रीब थे वैसे ही ग़रीब बने रहे; और जो बड़े बाबू थे वे बड़े बाबू ही बने रहे।'

इस सब भाषण के साथ ही पटापट-पटापट तालियाँ बजीं। बलरामपुर में पहले भी मीटिंगें हुई थीं, उनमें पहले भी तालियाँ बजी थीं, लेकिन उस दिन लगा कि इस तरह की तालियाँ इसके पहले कभी किसी भाषण पर नहीं बजीं। और तो और जवाहरलाल नेहरू, अमूल्य घोष, प्रसन्न सेन, बड़े बाबू—किसी के लिए भी नहीं...।

सभा के बाद सभी घर चले गये। उसके बाद खाना-पीना करने के बाद सब अपने घरों में सो रहे। बलरामपुर शान्त हो गया। गौर भी अपनी दूकान पर रसगुल्ले-पन्तुआ की मिठास कम देखकर घर चला गया, कहीं कोई बाहर नहीं रहा।

सहसा आधी रात में जैसे कोई नींद से उठकर अचानक चीख उठा, 'क्या हुआ? क्या हुआ?'

उसकी चीख से पड़ोस के घर के लोग गहरी नींद से भी जाग उठे। उठकर बाहर आ गये।

'क्या हुआ? क्या हुआ?'

इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, रूस—सभी साथ-ही साथ जाग उठे थे। वे सभी एक साथ चीख उठे थे।

'क्या हुआ? क्या हुआ? किसने बम फेंका?'

लेकिन इस बार बम नहीं, आग थी। आग की चमक में सारा पश्चिमी आकाश लाल हो गया। बलरामपुर के आदमी दूसरे आदमी की मुसीबत

में भागने में कभी नहीं पिछड़े ! सभी पश्चिम-पाड़ा की ओर भागने लगे। किसके घर में आग लगी ? आग कैसे लगी ? गौर घर छोड़कर भागा। स्कूल के हेडमास्टर भी पश्चिम-पाड़ा की ओर भागने लगे। बी०डी०ओ० साहब भी घर में सोये न रह सके; भागे। अगर वक्त से मदद करने पर कुछ आदमियों को भी बचाया जा सके, आस-पड़ोस के घरों को आग से बचाया जा सके।

नन्द आकर पुकारने लगा, 'बड़े बाबू, बड़े बाबू !'

हरिसाधन बाबू हड़बड़ाकर उठ बैठे, 'क्या है ? क्या हुआ ?'

'हुज़ूर, पश्चिम-पाड़ा में आग लगी है।'

'आग लगी है ? पश्चिम-पाड़ा में ? किसके घर में ?'

नन्द बोला, 'वह तो पता नहीं। उधर मे शोरगुल सुनायी पड़ रहा है। यह देखिये न, आसमान किस तरह लाल हो गया है...।'

हरिसाधन बाबू उठे। उठकर खिड़की में से पश्चिम-पाड़ा की ओर देखा। सचमुच, आसमान लाल हो गया है। और दूर से आदमियों की हलकी चीख-पुकार सुनायी पड़ रही है। किसने आग लगायी और किसके घर में आग लगी है, यह अनुमान करने लगे।

उसके बाद बोले, 'अरे, मेरे कपड़े दे, मुझे ज़रा पश्चिम-पाड़ा जाना पड़ेगा, और तू भी मेरे साथ चल ज़रा...।'

कपड़े बदलकर हरिसाधन बाबू नन्द को साथ लेकर निकले, सहसा बरामदे में देखा कि मुक्ति चुपचाप बैठी है। 'क्यों रे तू ? तेरी भी नींद टूट गयी ?'

मुक्ति कुछ न बोली। चुप खड़ी रही।

हरिसाधन बाबू ने फिर पूछा, 'डर लग रहा है ? डर की कोई बात नहीं, भूति की माँ कहाँ है ?'

मुक्ति बोली, 'सो रही है।'

'सो क्यों रही है ? तू जाग रही है और वह सो रही है ! उसे पुकार, बुलाकर उठा दे !'

फिर भी मुक्ति के मुँह से कोई बात न निकली।

हरिसाधन बाबू बोले, 'जाकर कह कि जब तक मैं लौटकर न आऊँ तब तक जागती रहे। मैं गया और आया।'

कहकर हरिसाधन बाबू उतर ही रहे थे कि मुक्ति ने फिर पुकारा।

'बाबा !'

'क्या रे, मुझे पुकारा ? कुछ कह रही है ? मैं गया और आया, तब तक तू भूति की माँ को पुकारकर जगा दे।'

अत्यन्त क्षीण स्वर में मुक्ति बोली, 'पश्चिम-पाड़ा में संध्या रहती है, बाबा...!'

'संध्या ? कौन संध्या, रे ? कौन संध्या ?'

'मेरी सहेली। मेरे साथ पढ़ती है...।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तेरे साथ पढ़ती है ? किसकी लड़की है ?'

मुक्ति बोली, 'संध्या के बाबा का नाम कानाई घोष है...।'

सुनकर हरिसाधन बाबू का चेहरा गम्भीर हो गया। लेकिन अँधेरे में वह किसी की नजर में नहीं पड़ा। हरिसाधन बाबू फिर वहाँ न रुके। वह बलरामपुर के बड़े आदमी हैं। बलरामपुर के सारे लोगों की विपत्ति-आपत्ति में वह ही जाकर खड़े होते हैं। उनके आसरे ही बलरामपुर में सब जीवित हैं। इस तरह की मुसीबत में आकर वह नजदीक जाकर न खड़े हों तो और कौन खड़ा होगा ?

घर के सामने पहुँचते ही हरिसाधन बाबू ने देखा कि विपिन आदि अँधेरे में ही हरिकेन लिये उनके पास ही आ रहे हैं।

'कौन, विपिन ?'

'जी, आपके पास ही हम आ रहे थे। सत्यानाश हो गया ! कानाई घोष के घर में आग लग गयी।'

आगे बढ़ते-बढ़ते हरिसाधन बाबू बोले, 'बात क्या हुई ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है ! यह कैसे हो गया ? वे लैम्प जलाकर सो रहे थे क्या ?'

विपिन बोला, 'जी, लगता है किसी ने आग लगा दी है।'

'आग लगा दी ? उसका क्या कोई दुश्मन था ? अभी शाम को तो सुना था कि नल-बाड़ी के मैदान में गरम-गरम लेक्चर दिया था। लोगों ने बहुत तालियाँ बजायी थीं...।'

लक्ष्मण बोला, 'जी, मैं तो तब मैदान में ही था। देखा था कि उसका लेक्चर सुनने के लिए बहुत भीड़ जमा हो गयी थी।'

'सो लेक्चर तो मैं भी देता हूँ। मेरे लेक्चर में भी तो बहुत भीड़ होती है, मेरा लेक्चर सुनकर भी तो तमाम लोग तालियाँ बजाते हैं। उससे घर में आग लगाने का क्या सम्बन्ध है ? कानाई घोष कोई ख़राब आदमी तो नहीं था। किसने उसका इस तरह सत्यानाश किया ?'

यादव बोला, 'जी, बाहर से खिड़की-दरवाज़ों पर ताला लगाकर छप्पर में किरासिन तेल डाल दिया गया था...।'

'कानाई घोष क्या घर में ही था ? और हरिहर, उसका बाप ? बहू ? उसकी लड़की ?'

'लगता है, वे सव भीतर ही जलकर मर गये !'

हरिसाधन वावू डर से काँपकर वोले, 'कैसा सत्यानाश है, रे ! तू जा, थाने पर जाकर ख़वर दे आ। कह देना, वड़े वावू ने ज़रा वुलाया है। और उधर वी० डी० ओ० साहव को भी बुला लाना। कह देना, मैंने वुलाया है...।'

विपिन बोला, 'वे तो पहले ही आ गये थे।'

'तो आग वुझाने का क्या वन्दोवस्त हो रहा है ? पश्चिम-पाड़ा के पोखरे में पानी है ?'

'जी, तालाव कीचड़ से भरा है, जो कुछ पानी है वही वालटियों में भर-भरकर छोड़ा जा रहा है। दारोग़ा वावू चौकीदार से वही पानी छुड़वा रहे हैं। लेकिन उससे कितना काम चलेगा ?'

हरिसाधन वावू चलते-चलते कहने लगे, 'देखूँ, मैं क्या कर सकता हूँ! हमारे वलरामपुर में तो पहले कभी आग-वाग लगी नहीं। आँधी आयी, सूखा पड़ा, अकाल हुआ। आग लगने की वात तुम लोगों में किसी ने पहले सुनी ?'

'जी, हम भी तो वही बात कह रहे थे।'

हरिसाधन वावू कहने लगे, 'अच्छा ठीक है, अवकी चीफ़ मिनिस्टर से कहकर यहाँ एक दमकल का दफ़्तर वनवाये दे रहा हूँ। दमकल रहने से फिर आग का वैसा डर नहीं रहेगा।'

दूर पर दिखायी पड़ा कि आकाश में आग की लाली जैसे कुछ फीकी पड़ गयी हो। तो लगता है कि इतनी देर में आग कम हो गयी है।

हरिसाधन वावू जब पश्चिम-पाड़ा पहुँचे तो बड़े वावू को देखकर सब उनके पास आ गये। हरिसाधन बावू वोले, 'इंस्पेक्टर साहव कहाँ हैं ?'

थाने के इंस्पेक्टर आग बुझाने के काम में व्यस्त थे। लेकिन बड़े वावू आये हैं, यह सुनकर वह भी पास आ गये। विलकुल पसीने से तर थे। वी० डी० ओ० साहब ने भी आकर नमस्कार किया। स्कूल के हेडमास्टर, कॉलेज के प्रिंसिपल—सभी बड़े वावू को घेरकर खड़े हो गये।

बड़े वावू ने गम्भीर भाव से सभी से पूछा, 'यह कैसा हो गया ? कानाई घर में ही था क्या ?'

थाने के दारोग़ा बोले, 'मीटिंग से कानाई बाबू तो कहीं जाते नहीं। मैं तो मीटिंग के वक़्त वहीं था।'

'किस-किस का जला हुआ शव यहाँ मिला है ?'

दारोग़ा बाबू वोले, 'आग बुझे तो पता चले, सर, कि कौन-कौन जलकर मर गया है ? मुझे तो लगता है कि कोई भी वच नहीं सका है।

जिन्होंने आग लगायी है उन्होंने सब राहें रोककर ही लगायी है, जिससे कि कोई घर से भाग न सके...।'

'सब मिलाकर घर में कितने जने थे ?'

दारोग़ा बाबू बोले, 'मुझे जहाँ तक पता है, कानाई घोष के पिता थे, और कानाई बाबू की पत्नी और उसकी लड़की थी। लगता है, कोई भी भाग न सका। कोई अगर ज़िन्दा रहता तो अब तक पता चल जाता।'

'पश्चिम-पाड़ा के लोग क्या कहते हैं ?'

'मोहल्ले के लोग कहते हैं कि मीटिंग समाप्त कर कानाई बाबू बहुत रात गये घर लौटे थे।'

'साथ में कोई लोग नहीं थे ? कानाई बाबू का दल-बल ?'

पास ही कई छोकरे खड़े थे। वे बोले, 'हम मीटिंग के बाद कानाई बाबू को घर पहुँचाकर अपने-अपने घर चले गये थे, सर। बात तय थी कि आज सवेरे पाँच बजे ही फिर आयेंगे, और आकर चलेंगे। लेकिन अचानक ही क्या हो गया ! इसके पीछे कौन है, उसे खोज निकालना होगा।'

हरिसाधन बाबू बोल उठे, 'ज़रूर तलाश करना पड़ेगा। और कोई नहीं खोज सका तो मैं तो तलाश करूँगा ही। यह सिर्फ़ बलरामपुर की बदनामी नहीं है, यह सारे बंगाल की बदनामी है। मैं असेम्बली में इस पर सवाल करूँगा, होम मिनिस्टर को इसका जवाब देना पड़ेगा। कानाई घोष-से देश-सेवक का यह हाल हो तो हम किसके सहारे ज़िन्दा रहेंगे ? फिर हमारी पुलिस रखने से क्या फ़ायदा ? गवर्नमेंट किसलिए है ?'

थाने के दारोग़ा बाबू बोले, 'आप उत्तेजित न हों, सर। पहले हमें जाँच-पड़ताल करने दें। देखें, आग में से कितने जले हुए शव निकलते हैं ? बहुत अच्छी तक़दीर है कि दूसरे घरों में आग नहीं फैली।'

कहकर फिर जलते घर की ओर बढ़ रहा था, लेकिन उसके पहले ही चौकीदारों ने आकर कहा, 'सर, कानाई बाबू का शव मिला है।'

'मिला है ? किधर ? कहाँ ?'

सब मिलकर जलती हुई राख पर झुक पड़े। पानी और कीचड़ से सनी जगह जाने लायक़ नहीं रह गयी थी। चमड़ा जलने से हवा गंधा रही थी; और उस पर धुआँ ! धुएँ से सबकी आँखें जल रही थीं। हरिसाधन बाबू उस सबको ठेलकर वहाँ घुस गये। उन्हें सब-कुछ खुद देखना है। सारी रिपोर्ट उन्हें देनी होगी। पुलिस जो रिपोर्ट दे वह दे। उन्हें अपनी रिपोर्ट तैयार करनी ही होगी।

'यह रहा, हरिहर-दा का शव यहाँ है, सर।'

'और कानाई बाबू की बहू यह रही।'

समझा गया कि कमरे का दरवाज़ा खोलने की कोशिश सबने ही की। लेकिन आख़िर तक उनकी कोई कोशिश सफल नहीं हुई। जीवन के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर भी अन्त में मृत्यु की निर्ममता के निकट अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ा। उनकी सहायता करने कोई नहीं आया; या सहायता करने का किसी को अवसर नहीं मिला। सामान्य मेहनती लोगों का प्रतिनिधि होकर जिस व्यक्ति ने सब लोगों से इस संध्या के समय भी नलवाड़ी के मैदान में खड़े होकर वोट माँगे उनमें से किसी ने उसे वोट तो नहीं ही दिये, ऊपर से मृत्यु देकर मानो उसका मज़ाक उड़ाया !

'अच्छा, उसकी लड़की ? लड़की थी न एक कानाई घोष की ?'

भीड़ में से कोई बोल पड़ा। अँधेरे में पूरे बलरामपुर के लोग उस समय आकर टूट पड़े थे। किसने बात कही, यह समझ में न आया।

तब तक हरिसाधन बाबू को भी याद आया। साथ-ही-साथ याद आया मुक्ति का चेहरा। घर से निकलते वक़्त लड़की ने यही बात याद दिला दी थी। दोनों साथ-ही-साथ पढ़ती थीं। बोले, 'हाँ, संध्या या ऐसा ही कुछ नाम था लड़की का। उसके स्कूल की फ़ीस तो हमेशा मैं ही देता था। उसके बाप को बचपन में मैंने ही तो बराबर फ़ीस दी थी।'

विपिन कहने लगा, 'वह क्या हमें बताना होगा, बड़े बाबू ? हमको सब-कुछ मालूम है। आप न होते तो क्या हरिहर काका जिन्दा रहते ?'

लक्ष्मण बोल उठा, 'भगवान जिसे मारेगा, आदमी भला उसमें क्या दख़ल देगा ?'

धीरे-धीरे सवेरा होने लगा। एक दिन जो मकान आदमियों के शोर से भरा रहता था वह एक सिरे से उलट-फेर के कारण श्मशान में बदल गया। लेकिन सवेरे का प्रकाश फैलने के साथ-साथ सबके मन में धीरे-धीरे आने लगा कि जो चले जाते हैं वे लौटकर नहीं आते। उनकी कोई समस्या ही नहीं रह जाती हैं। जो ज़िन्दा रह जाते हैं समस्याएँ उन्हीं की शेष रहती हैं। उनकी ही बात अब सोचो। उनकी समस्याओं का ही अब समाधान करो। आओ, हम अपनी बात ही सोचें—हम जो लोग जिन्दा हैं। कानाई घोष की बात सोचने से हमारा काम नहीं चलेगा।

इसीलिए सब अपने-अपने घर चले गये। पुलिस की भी नौकरी है। वे सब भी अपने-अपने काम पर चले गये। लेकिन सबके मन में एक काँटा कच-कच कर चुभने लगा। एक सन्देह ही साँप की तरह मन की छिपी गुफ़ा में फन उठाने लगा। तो कानाई घोष की बेटी कहाँ गयी ? वही संध्या ?

बलरामपुर में जब यह घटना घट रही थी, उस समय कलकत्ता शहर के एक छोटे-से मेस के और भी छोटे एक कमरे में बैठा स्वदेश अपने जीवन की सार्थकता का पथ तलाश रहा था। वह सर्वजय बनर्जी के घर पर जाकर मनुष्य की प्रतिशोध-सत्ता का उदाहरण देखता था। देखता था कि किस प्रकार एक आदमी दूसरे आदमी का सर्वनाश करने का षड्यन्त्र करके उसे रास्ते से ढकेल देना चाहता है। अपना नुक़सान कर दूसरे का सर्वनाश करने के लिए उन सबमें कैसा रुपये-पैसे का ख़र्च, कैसा उत्साह, और कैसा उल्लास उमड़ आता है!

उस दिन उस मेस के आगे एक क़ीमती गाड़ी आकर रुकी। ड्राइवर उतरकर मेस में आया। अन्दर से गोविन्द बाहर की तरफ़ आ रहा था। गोविन्द के कुछ पूछने के पहले ही ड्राइवर ने गोविन्द से पूछा, 'यहाँ स्वदेश बाबू रहते हैं? स्वदेश चट्टोपाध्याय?'

गोविन्द बोला, 'हैं।'

'उन्हें ज़रा ख़बर दो कि बलरामपुर से बड़े बाबू आये हैं।'

गली में गोविन्द की नज़र रास्ते पर खड़ी नयी चमचमाती गाड़ी पर पड़ी। तभी हरिसाधन बाबू गाड़ी से उतरकर आये। मालिक को उतरते देखकर ड्राइवर उनकी ओर बढ़ आया।

बोला, 'छोटे बाबू यहीं हैं, हुज़ूर।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तू चल। मैं आ रहा हूँ। यहाँ कहाँ पर, किस कमरे में रहता है?'

लड़का इतने दिनों से यहाँ है और वह एक बार भी इस कमरे के अन्दर नहीं आये। कॉलेज में पढ़ने के वक़्त होस्टल में रहता था। कॉलेज छोड़ने के बाद से ही यह स्वदेश का ठिकाना है। तभी से वह इसी जगह पर है।

गोविन्द गोला, 'आइये, हुज़ूर। मैं दिखाये देता हूँ।'

आँगन के एक कोने से दो-मंज़िले पर जाने के लिए सीढ़ियाँ थीं। आँगन के एक कोने में रसोई की राख जमा थी। दीवार का चूना और रेत बहुत-से हिस्से से उखड़ रहा था। हरिसाधन बाबू तेज़ नज़रों से सब देखते-देखते चलने लगे। सारा कुछ कैसा गन्दा है! ताज्जुब है। बच्चा

यहाँ रहता है, यह भी उन्हें बराबर पता रहा। लेकिन अन्दर आने की उनकी तबीयत कभी न हुई। उनका बेटा यहाँ रहे, यह उनके लिए शर्म की, अपमान की बात है। और उन्होंने कितनी बार बच्चे से दूसरी जगह मकान किराये पर लेने को कहा था !

'इस ओर, सर। इधर से ऊपर जाने के लिए सीढ़ी है।'

सीढ़ी की दीवार पर पान की पीक और उँगलियों से चूना पोंछने के निशान थे। कैसी गन्दी जगह है ! यहाँ किस आराम के लिए बच्चा रहता है ? किसी लड़की का आकर्षण है यहाँ ! कुछ नहीं कहा जा सकता। आजकल का क्या ज़माना है ! बड़े बाप के अकेले बेटे पर ही सबकी नज़र है। लेकिन लड़का ही तो नहीं है, उसके पहले उन्हें लड़की की शादी करना पड़ेगी। मुक्ति की भी उम्र हो गयी है।

सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते किसी आदमी की आवाज़ सुनायी नहीं पड़ी। पूछा, 'यहाँ और कोई नहीं रहता है ? किसी की आवाज़ सुनायी नहीं दे रही है ?'

गोविन्द बोला, 'सभी तो ऑफ़िस चले गये हैं।'

'ओह,' कहकर हरिसाधन बाबू बढ़ने लगे। एक कमरे के आगे गोविन्द रुक गया। बाहर से पुकारा, 'स्वदेश बाबू, स्वदेश बाबू !'

अन्दर से स्वदेश की आवाज़ सुनायी पड़ी, 'क्या है ? अन्दर आ जाओ।'

'यह देखिये, कौन आये हैं।'

कहकर हरिसाधन बाबू को लिये कमरे में घुसा। बाबा को देखकर स्वदेश को लगा कि मानो उसके सिर पर भयावह शोर करता हुआ बड़ा भारी वज्र गिरा हो। तख़्त पर बिस्तर की टेक लगाये लेटे-लेटे वह एक किताब पढ़ रहा था। बाबा को देखते ही हड़बड़ाकर उठ बैठा।

'आप ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'हाँ, आया हूँ। पहले यहाँ कभी नहीं आया। लेकिन सर्वजय से पता लेकर मुझे आना ही पड़ा।'

कहकर एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठ गये। बैठकर कमरे को चारों ओर से देखने लगे। दीवारों पर कब से कलई नहीं हुई थी, उसका कोई ठिकाना नहीं। दीवार पर एक कोने में मकड़ियों के जाले ने पेड़-पत्तियों से मिलकर पक्का इन्तज़ाम कर लिया था, इस ओर किसी का ध्यान नहीं था। उसके बाद देखा कि अब तक लड़का मन लगाकर कौन-सी किताब पढ़ रहा था ? देखा कि किताब के ऊपर बड़े-बड़े हरफ़ों में लिखा है : 'फ्रेंच रिवोल्यूशन। लेखक—टॉमस कार्लाइल।'

पूछा, 'अभी तक यही किताब पढ़ रहे थे ? इसमें क्या है ? कोर्ट में क्या यही सब किताबें आजकल काम में आती हैं ?'

स्वदेश ने संक्षेप में उत्तर दिया, 'न ।'

'तो ? तो फिर यह किताब क्यों पढ़ रहे हो ? यह किताब कहाँ से मिली ? ख़रीदी है ?'

'हाँ ।'

'तो कोर्ट न जाकर यह किताब क्यों पढ़ रहे हो ? और रुपया बरबाद करके किताब ही ख़रीदने क्यों गये ? ये सब किताबें तुम्हारे किस काम आयेंगी ? यह जो दीवारों में, ताक पर किताबें हैं, ये सारी क्या पैसा देकर ख़रीदी हैं ?'

स्वदेश बोला, 'हाँ, वे सारी किताबें ख़रीदी हैं । कुछ किताबें लायब्रेरी से भी लाकर पढ़ता हूँ ।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'लेकिन तुम तो वकील बनना चाहते हो । तुम वकालत करोगे । तुम्हारे कमरे में लॉ की एक भी तो किताब नहीं देख रहा हूँ !'

उसके बाद कुछ रुककर बोले, 'तुम दो हफ़्ते से घर नहीं गये । हमें क्या फ़िक्र नहीं होती होगी ? तुम इस कमरे में पड़े रहो और हम उधर आराम से खायें-पियें, यह क्या हमें अच्छा लगता है ? फिर भी अगर देखता कि तुम काम में व्यस्त हो, घर आने का वक़्त नहीं मिलता, तो फिर भी कुछ समझ में आता । इसके सिवा तुमसे कहा था कि तुम अगर नौकरी करना चाहते हो तो उसकी व्यवस्था भी डॉक्टर राय से कहकर मैं करा सकता हूँ । अभी मैं डॉक्टर राय के पास से ही आ रहा हूँ । डॉकर राय ने पूछा था—हरिसाधन, तुम्हारा लड़का क्या करता है ? और अगर वह भी न चाहो तो, न हो तो विदेश हो आओ । उसका इन्तज़ाम भी जब तक मैं क्षमता में हूँ तुम्हें करा सकता हूँ । उसके बाद अमूल्य-दा, प्रसन्न-दा कब हैं, कब नहीं ! उनके रहते-रहते तुम्हारे लिए कुछ कर सकने पर मैं अपनी ओर से कम-से-कम बेफ़िक्र हो सकता । लेकिन अगर तुम खुद इसी तरह तख़्त पर चित लेटे-लेटे बेकार की किताबें पढ़ो तो मैं क्या करूँ ?'

इतनी देर के बाद स्वदेश बोला, 'यह बेकार की किताब नहीं है ।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'बेकार किताब नहीं तो क्या ? फ्रेंच रिवोल्यूशन के बारे में किताब पढ़कर तुम्हें क्या फ़ायदा होगा ? वह कितने दिनों पहले की बात है । दो सौ बरस पहले की बात पढ़कर तुम्हारी जेब में क्या पैसे आयेंगे ?'

स्वदेश बोला, 'नहीं, पैसे तो नहीं आयेंगे ।'

'फिर ? पैसा ही अगर नहीं मिले तो इस ख़ाक-धूल के पढ़ने से क्या फ़ायदा ! पैसे ही के लिए तो मेरी इतनी ख़ातिर-तवज्जह है, इतना मान है। तुम जिस बंगाली के सामने मेरा नाम लो, वह मुझे पहचान लेगा। क्यों पहचानता है ? क्योंकि मेरे पास पैसा है। यह प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा, नाम, जो कुछ है सब ही तो मेरे पैसे की वजह से है। यह जो किताब तुमने ख़रीदी है, उसे जिसने लिखा उसने रुपये के लिए ही तो लिखा।'

स्वदेश बोला, 'नहीं।'

'नहीं माने ? किताब लिखी और कहना चाहते हो कि उसका रुपया उसे नहीं मिला ?'

स्वदेश बोला, 'रुपया कुछ नहीं है, प्रसिद्धि, नाम, प्रतिष्ठा आदि कुछ नही है, यह समझने के लिए ही कार्लाइल ने यह किताब लिखी है।'

हरिसाधन बाबू लड़के की बात सुनकर ताज्जुब में आ गये। इस तरह की बात उनके एकमात्र बालिग़ बेटे के मुँह से किसी दिन सुनने को मिलेगी, इस बात की वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

बोले, 'हुँ, समझा। मेरे बेटे होकर तुम्हारी ऐसी समझ होगी, यह मैंने पहले नहीं समझा था। समझता तो दूसरी तरह का इन्तज़ाम करता। रुपया अगर कुछ नहीं है तो तुमने इतना पैसा ख़र्च करके लॉ क्यों पास किया ?'

स्वदेश बोला, 'रुपये के लिए तो लॉ नहीं पास किया। मैंने लॉ पास किया है बहुत-सी चीज़ों को जानने के लिए। मेरी सब चीज़ों की जानने की तबीयत होती है...।'

'सो इतना ही अगर जानने की इच्छा है तो यह नहीं मालूम कि किस तरह अपना काम चलाना होता है ? वही जानना तो जीवन में सबसे बड़ा जानना होता है।'

स्वदेश ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

हरिसाधन बाबू बोले, 'क्या हुआ, मेरी बात का जवाब नहीं दे रहे हो ?'

'इस बात का मैं क्या जवाब दूँ ?'

'क्यों, मैंने कोई सख्त बात तो नहीं कही। संसार में सभी तो अपना काम निकालने लिए कोशिश करते हैं। संन्यासी-अन्यासी की बात छोड़ो। हमारी तरह जो दुनियादार हैं, वे तो यही करते हैं। मैं जो एम०एल० ए० बना हूँ, इतने दिनों से खद्दर पहनता आया हूँ, यह किसलिए ? अपना काम निकालने के लिए ही तो ! आदमी जो कुछ खाता है—दाल, भात, रोटी, मछली, मांस खाता है—वह किसलिए ? अपना शरीर ठीक रखने

के लिए ही तो ! या दूसरे का शरीरअच्छा वनाने के लिए ? वोलो, जवाव दो । तुम जिस ढंग की कितावें पढ़ते हो मैंने भी वैसी ही वहुत-सी कितावें कभी पढ़ी थीं । मैंने तो वचपन से कितावें पढ़कर यह वात ही सीखी है...।'

स्वदेश वोला, 'लेकिन मैंने किताबों में दूसरी वात पढ़ी है ।'

'कौन-सी दूसरी वात ?'

स्वदेश वोला, 'उन सवों ने लिखा है कि जो दूसरों के लिए जीते हैं वे हीं असली मनुष्य हैं ।'

'ऐसी वात है ? तो अगर ख़ुद न जियो तो दूसरों को कैसे जीवित रखोगे ? पहले तो तुम्हारा अपना स्वार्थ है, उसके बाद ही तो कुछ और है ! हम लोगों में एक कहावत है—'आप रहे तो वाप रहे ।' इसके क्या मतलव हैं ?'

स्वदेश वोला, 'मैंने दूसरी तरह सीखा है ।'

हरिसाधन वावू वोले, 'तो तुम समाज से अलग तो नहीं हो । समाज में आदमी जिस तरह है तुम्हें भी तो उसी तरह रहना होगा ।'

स्वदेश वोला, 'तो फिर जो कुछ कितावों में लिखा है वह क्या झूठ है ? विलासिता, स्वार्थपरता, मिथ्याचार पाप है—यह वात तो सभी लिख गये हैं ।'

'सो तुमसे किसने विलासिता करने को कहा ? किसने तुमसे स्वार्थी वनने को कहा ? किसने मिथ्याचार करने को कहा ? तो फिर मैं अभी तक तुम्हें क्या सिखाता रहा ? तो क्या कहना चाहते हो कि मैं भी स्वार्थी हूँ, विलासी हूँ, मिथ्याचारी हूँ ?'

स्वदेश चुप वना रहा । कोई जवाव नहीं दिया ।

हरिसाधन बावू और धैर्य न रख सके । बोले, 'क्या सोच रहे हो कि चुप रहकर छुटकारा पा जाओगे ? मैं तमाम काम छोड़कर तुम्हारे मेस में सिर्फ़ तुम्हारा मुँह देखने आया हूँ ? तुम आज ही मेरे साथ चलो । अब मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा । मेरे साथ चलो...आज और अभी...।'

स्वदेश वोला, 'कहाँ ?'

'और कहाँ ! घर ।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन मैं तो अभी जा न सकूँगा ।'

'नहीं जा सकोगे के मतलव ? यहाँ तुम्हारा कौन-सा राज-काज है कि तुम चल नहीं सकोगे ? मैं वहुत दिन से सोच रहा हूँ कि तुमको कलकत्ता भेजने में ही उस वक़्त मेरी ग़लती हुई थी । मेरी समझ में आ गया कि मैंने उस वक़्त तुम्हें भाड़ झोंकने के लिए कलकत्ता भेजा था । तब सोचा

था कि तुम आदमी बनोगे। लेकिन अब मेरी आँखें खुल गयी हैं। मैं आज तुम्हें यहाँ से ले जाने के लिए ही आया हूँ।'

'लेकिन मैंने कहा न कि मैं अभी नहीं जा सकूँगा।'

हरिसाधन बाबू गरज उठे, 'क्या? तुम्हारी ऐसी हिम्मत? तुम मुझसे ज़बानदराज़ी करते हो!'

स्वदेश बोला, 'मैं ज़बानदराज़ी नहीं कर रहा हूँ, मैं सिर्फ़ अपने न जाने का सबब ही बता रहा हूँ।'

सहसा कोई कमरे में चीख उठा, 'ख़बरदार...!'

साथ-ही-साथ हरिसाधन बाबू चौंक पड़े। दरवाज़े की ओर पीठ किये वह बैठे थे। सहसा यह चिल्लाहट सुनकर मानो वह होश खो बैठे।

जो आदमी चिल्लाया था वह कमरे में घुस आया था। हरिसाधन बाबू की ओर देखकर वह फिर बोल उठा, 'ख़बरदार...!'

सिर पर उलझे बाल, सैकड़ों जगह से फटा कोट-पैंट पहने। पैरों में भी फटे जूते।

हरिसाधन बाबू खड़े हो गये। बोले, 'तुम कौन हो?'

उसके कुछ बोलने के पहले ही स्वदेश ने उठकर उस आदमी को ढकेलकर बाहर ले जाना चाहा। ढकेलते-ढकेलते कहने लगा, 'एककौड़ी-दा, इस वक़्त तुम चले जाओ...।'

एककौड़ी किसी तरह नहीं जा रहा था। वह भी रोकने लगा। बोला, 'यह तुम पर ज़बरदस्ती क्यों करेगा? मैं उसे सावधान किये दे रहा हूँ, यह कौन है?'

स्वदेश बोला, 'यह मेरे पिता हैं।'

'पिता! तो क्या हुआ? पिता हैं, इसलिए तुम्हारा स्वत्व ख़रीद लेंगे?'

स्वदेश एककौड़ी के मुँह को एक हाथ से बन्द करने चला। एककौड़ी अपने हाथ से मुँह छुड़ाने की कोशिश करने लगा। दोनों में हाथापाई होने लगी।

स्वदेश बोला, 'तुम यहाँ से जाओ, एककौड़ी-दा! तुम इस कमरे में क्यों आये?'

एककौड़ी अपना मुँह किसी तरह छुड़ाकर फिर बोलने लगा, 'कह रहा हूँ, ख़बरदार, ख़बरदार! स्वदेश मेरा छोटा भाई है। मैं कहे देता हूँ कि उसको जो नुक़सान पहुँचायेगा, मैं उसका खून कर डालूँगा।'

स्वदेश बोल उठा, 'फिर? मैं कह रहा हूँ कि यह मेरे पिता हैं, तुम फिर भी नहीं सुन रहे हो?'

'मैं नहीं जाऊँगा। मैं यहीं हूँ। देखता हूँ, कौन तेरे ऊपर हाथ छोड़ता

है !'

एककौड़ी के शरीर में जैसी ताक़त थी, उसके मुँह में भी वैसी ही ताक़त थी। वह भी कमरे से बाहर नहीं निकलेगा, स्वदेश भी उसे कमरे के वाहर भेज कर रहेगा।

हरिसाधन बाबू अभी तक चुपचाप सब देख रहे थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। इस मेस में यही सब लड़के रहते हैं! उन्हें अगर पहले से यह मालूम होता तो क्या यहाँ अकेले आते ? साथ में नन्द को ले आते। ज़िन्दगी में उन्होंने बहुतेरे शैतानों को देखा है। बहुत-से शैतानों को ठीक भी कर दिया है। कानाई घोष की तरह के इतने बड़े शैतान ने उनका नुक़सान करना चाहा था। लेकिन अन्त में क्या हुआ ?

वह कुर्सी से उठ खड़े हुए। आगे की ओर बढ़े। मन-ही-मन उन्होंने ख़याल किया कि वह एम० एल० ए० हैं। गुंडे-बदमाशों ही से उनका कार-बार चलता है। इस मामूली घटना से ही अगर वह डर जायेंगे तो लोग क्या कहेंगे ? इतना डरपोक बन जायें तो उन्हें पॉलिटिक्स ही छोड़ देनी पड़ेगी।

चिल्लाकर बोले, 'तुम्हें मालूम है, मैं कौन हूँ ? पता है, मैं तुम्हारा क्या कर सकता हूँ ?'

एककौड़ी दूर से चीख़ उठा, 'अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए तो कहता हूँ, ख़बरदार...!'

'फिर ख़बरदार कहता है ?'

स्वदेश पिता की ओर मुड़कर बोला, 'आप मत बोलिये, बाबा। आप रुक जाइये...।'

हरिसाधन बाबू बोल उठे, 'क्यों न बोलूँ ? मैं क्यों चुप रहूँ ? मैं क्या उससे डरता हूँ ? मैं तुमसे बात कर रहा हूँ। वह क्यों इस कमरे में घुस आया है ? किस हिम्मत से वह यहाँ आता है ? उसे पता नहीं है कि मैं कौन हूँ ? नहीं जानता कि पुलिस बुलाकर मैं उसे अभी गिरफ़्तार करा सकता हूँ ?'

लड़कों की तरह एककौड़ी ने जवाब दिया, 'ख़बरदार...!'

'फिर ख़बरदार कहता है ! तू ख़बरदार हो। हरामज़ादा कहीं का ! मुझे गुस्सा दिला रहा है। पता नहीं कि गुस्सा दिलाने पर मैं मुसीबत ढा सकता हूँ !'

तब तक स्वदेश अपने एककौड़ी-दा को कमरे के बाहर बरामदे में ले गया। स्वदेश उसे समझाने लगा, 'क्यों गुस्सा हो रहे हो, एककौड़ी-दा ! वह तो मेरे पिता हैं। पिता मेरे पास नहीं आयेंगे ? तुम इतना चिल्ला क्यों

रहे हो ?'

एककौड़ी बोला, 'चिल्लाऊँगा नहीं ? बुड्ढा तुम्हें गाली देगा और मैं मुँह बन्द किये चुप पड़ा रहूँगा । क्या कहना चाहता है कि मैं जानवर हूँ ?'

बात करते-करते स्वदेश अपने एककौड़ी-दा को उसके कमरे की ओर ले जाने लगा।

हरिसाधन बाबू उस समय अकेले कमरे में पिंजरे में बन्द शेर की तरह ज़ोर-ज़ोर से चहलक़दमी करने लगे। कंधे पर से चादर गिरी जा रही थी। उसे फिर अच्छी तरह कंधे पर डाल लिया। कभी कानाई घोष पर उन्हें जैसा ग़ुस्सा आया था, उस दिन उस लड़के पर भी उसी तरह ग़ुस्सा बढ़ने लगा। उस लड़के के कारण उनका यह अपमान ! बेटा ऐसी गन्दी जगह न रहता तो उन्हें यहाँ न आना पड़ता।

चलते-चलते कंधे की चादर फिर खिसकी जा रही थी, उसे उन्होंने फिर कंधे पर रख लिया। सहसा फिर किताबों पर नज़र गयी। अभी तक देखा नहीं था। अबकी अच्छी तरह देखने के लिए ताक पर से एक किताब उठा ली। अच्छी तरह किताब का नाम पढ़ा। हिस्ट्री की किताब थी। वकील हिस्ट्री की किताब पढ़ता है, यह उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

पुकारा, 'नन्द !'

लेकिन पुकारते ही समझ में आया कि यहाँ नन्द नहीं है। नन्द को बुलाने की उनकी आदत है। घर में या घर के बाहर जब कभी मन चंचल हो उठता तभी वह नन्द को पुकारते । ग़लती समझ में आयी, समझकर दूसरी बार ग़लती नहीं करेंगे। तो यह किताब पढ़कर बच्चों को क्या आनन्द मिलता है ! आगे के पन्ने पर दाम लिखा था। किसी के दाम पच्चीस रुपये, किसी के तीस।

अचानक कोई कमरे में घुसा, बोला, 'आपने मुझे बुलाया, हुज़ूर ?'

हरिसाधन बाबू अचम्भे में पड़ गये। बोले, 'मैंने तो तुम्हें नहीं बुलाया ?'

'जी, आपने अभी 'गोविन्द' कहकर बुलाया था।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'न, तुम्हें मैंने नहीं बुलाया।'

सुनकर गोविन्द जा रहा था। हरिसाधन बाबू ने उसे बुलाया, 'सुनो, ज़रा सुन जाओ।'

गोविन्द घूमकर रुक गया।

हरिसाधन बाबू ने पूछा, 'उस आदमी को तुम जानते हो ?'

'कौन आदमी, हुज़ूर ? उन एककौड़ी बाबू की बात कह रहे हैं ?'

'नाम-वाम मैं नहीं जानता। जो भी हो, वह यहाँ क्या करता है ?'

गोविन्द बोला, 'वे यहाँ रहते हैं, हुजूर। बहुत बड़े आदमी के बेटे हैं, कहने को एकदम राजा के लड़के हैं।'

'वह राजा का बेटा हो या मुर्दाफ़रोश का बेटा हो, उससे मुझे क्या लेना-देना है ? यहाँ क्या करता है, यह बताओ ?'

गोविन्द बोला, 'जी, करते क्या हैं ? वे कुछ नहीं करते। सिर्फ़ खाते और सोते हैं।'

हरिसाधन बाबू ने पूछा, 'तो फिर आदमी का ख़र्चा कैसे चलता है ?'

'जी, नहीं चलता है। यह छोटे बाबू ही एककौड़ी बाबू का ख़र्चा चलाते हैं। छोटे बाबू अगर ख़र्च-वर्च न देते तो फिर तो एककौड़ी बाबू भूखों मर जाते।'

हूं ! हरिसाधन बाबू की एड़ी से चोटी तक आग लग गयी। वह शरीर का ख़ून पानी कर रुपया कमायें और वह रुपया जाये किसी शैतान का पेट भरने में !

पूछा, 'तुम्हारे छोटे बाबू रात में कब लौटते हैं ?'

गोविन्द बोला, 'रात को तो छोटे बाबू निकलते ही नहीं।'

'क्यों, उस पागल के साथ नहीं जाते ? किसी दिन नहीं जाते ?'

'न।'

हरिसाधन बाबू और भी ताज्जुब में पड़ गये। बोले, 'छोटे बाबू न जाते हों, लेकिन वह शैतान ? वह तो शराब-वराब पीने जाता है ?'

'एककौड़ी बाबू की बात कह रहे हैं ? न, न। वे शराब-वराब नहीं पीते। देखने से लगता है कि वे शराब पीते हैं...।'

'शराब नहीं पीता ? तुम ठीक कह रहे हो ?'

गोविन्द बोला, 'हाँ हुजूर, ठीक ही कह रहा हूँ। शराब पीते होते तो हमें पता चल जाता। वे दिन-भर सिर्फ़ किताब पढ़ते रहते हैं और खा-पीकर सो जाते हैं। हमारे मेस में किसी के शराब पीने पर उसे यहाँ नहीं रहने दिया जाता।'

'तो जुआ ? जुआ तो ज़रूर ही खेलता होगा ?'

'जुआ ?'

'हाँ, माने रेस खेलना।...सनीचर-सनीचर घुड़दौड़ मैदान में जो जुआ खेला जाता है, वही खेल।'

गोविन्द बोला, 'जी नहीं, हुजूर। वे तो इतने दिन से यहाँ हैं, जुआ खेलने की बात तो कभी नहीं सुनी।'

हरिसाधन बाबू ने थोड़ा सोचा। उसके बाद पूछा, 'अच्छा, छोटे बाबू

के कमरे में कोई आता है ? तुम तो इतने दिनों से यहाँ हो, किसी लड़की को इस कमरे में कभी आते देखा है ?'

गोविन्द ने दाँतो तले जीभ दवायी। वोला, 'आप कह क्या रहे हैं, छोटे वावू तो लड़कियों से वात ही नहीं करते। सवेरे जागकर पूजा करने बैठ जाते हैं। ठाकुरजी पर छोटे वावू को बड़ी श्रद्धा है।'

उसके बाद वोला, 'मैं चलूँ, हुजूर। चूल्हे पर दाल रखकर आया था।'

कहकर गोविन्द जा ही रहा था, लेकिन हरिसाधन वावू ने फिर उसे पुकारा। पूछा, 'अच्छा, ये दोनों गये कहाँ ? अव तक वाहर क्या कर रहे हैं ?'

गोविन्द वोला, 'उस नीचे के एक-मंजिले के कमरे में गये हैं शायद। और कहाँ जायेंगे ? अभी वुलाये दे रहा हूँ।'

कहते हुए वह झटपट वाहर चला गया।

हरिसाधन वावू फिर छटपटाने लगे। वहुत-से काम छोड़कर वह आये थे। उनका एक वेटा है, दस नहीं, वारह नहीं, सिर्फ़ एक। वही वेटा अगर आदमी न वना तो इतनी जायदाद जुटाने से क्या फ़ायदा ? वलरामपुर की इतनी जायदाद, इतनी ज़मींदारी, इतने दिनों की प्रतिष्ठा तव सव-कुछ वेकार हो जायेगी।

और रह गयी बस लड़की। लड़की की ज़िम्मेदारी भी उनकी वड़ी ज़िम्मेदारी थी। लड़के का ब्याह कर उसके वाद लड़की का भी ब्याह करके उनकी ज़िम्मेदारी समाप्त हो जायेगी। तव वह छाती फुलाकर देश का काम करते जायेंगे, जिसे कहते हैं देश-सेवा।

वीसवीं सदी के बीचोंवीच मनुष्य जहाँ आकर पहुँचा था, वह एक विचित्र क़दम था। पानी से जिस तरह मनुष्य सूखी भूमि पर आ जाता है यह वह नहीं था। यह बहुत-से पानी से जैसे गहरे में डुवकी लगाने के समान हो। डुवकी लगाने के पहले धक्कम-धुक्की कर सवको ढकेलकर जीवित रहने की जी-जान से कोशिश करना हो। अंधकार से प्रकाश अथवा मृत्यु से अमृतत्व की ओर जाने में बहुत झंझट हो। उसमें त्याग, निष्ठा, संयम और सह-

योगिता की ज़रूरत होती है। वह सब हमारे वस का नहीं है। उसमें बहुत समय लगता है। हमारे पास इतना समय कहाँ है? हम सव-कुछ अभी चाहते हैं, इसी क्षण चाहते हैं। किसी तरह का भी विलम्ब हमें सहन नहीं होता। उसमें यदि प्रवंचना का आश्रय लेना पड़े तो वह भी ठीक है। उसमें यदि झूठ बोलना पड़े तो वह भी मंजूर है हमें। व्यक्ति या समाज के लाभ-हानि की वात बाद में होगी।

एककौडी इसी प्रकार एक परिवार से किसी दिन मिर्जापुर के इसी मेस में आया था। कहा जाये तो स्वदेश ही उसे एक दिन यहाँ ले आया था। एक साथ एक क्लास में वे पढ़ते थे। इसलिए ही उससे जानकारी-परिचय हो गया था। उस समय वह खुले हाथों रुपये ख़र्च करता था। चाय की दुकानपर क्लासके लड़कों को ले जाकर जो जितना खा सकता उसे उतना खिलाता। उसे देखकर सब समझते कि वह किसी बड़े घराने का लड़का है। उसके वाद यथासमय बी० ए० पास कर कौन कहाँ विखर गया, यह पता रखने की किसी को फ़ुरसत नहीं थी। उसके वाद अचानक एक दिन रास्ते में दोनों की भेंट हो गयी।

एककौड़ी बोला, 'अरे, तू!'

स्वदेश वोला, 'एककौड़ी-दा, तुम! तुम्हारी यह क्या हालत है?'

एककौड़ी वोला, 'सब बताऊँगा, तुझसे भेंट हुई अच्छा ही हुआ। चल. किसी चाय की दुकान पर चलकर वैठें; तेरी टेंट में पैसा है न?'

स्वदेश बोला, 'कुछ तो है।'

'फिर भी सुनूँ, कितने रुपये हैं? दो रुपये से ही चल जायेगा। दिन-भर से मेरे पेट में कुछ नहीं गया है।'

स्वदेश बोला, 'सात रुपये हैं।'

'ग्रैंड, ग्रैंड! अभी उससे ही चल जायेगा।'

कहकर पास की ही एक दुकान में स्वदेश को लेकर चला गया। जाते ही एकदम लम्बा-चौड़ा एक ऑर्डर दे दिया। स्वदेश बोला, 'अव बताओ, तुम्हारी ऐसी शकल-सूरत कैसे हो गयी?'

एककौड़ी बोला, 'बिना खाये।'

'विना खाये माने?'

एककौड़ी बोला, 'पास में एक रुपया भी नहीं था कि कुछ ख़रीदकर खा-पी लेता।'

स्वदेश वोला, 'क्यों? तुम्हारे पास इतना रुपया था, सब कहाँ गया? तुम्हारे रुपयों से क्लास के हम दोस्तों ने कभी कितना खाया था! अचानक

यह क्या हो गया ?'

एककौड़ी बोला, 'मैं घर छोड़कर चला आया।'

'क्यों ?'

'मेरी तबीयत।'

स्वदेश समझा नहीं। बोला, , 'उसका मतलब ?'

'उसका मतलब समझ नहीं सका ? बी० ए० पास करने के बाद बाबा ने शेयर मार्केट में मुझे दलाल बनाकर डाल दिया, लेकिन मुझे वहाँ की आबहवा बरदाश्त नहीं हुई। उस समय मुझे इतने रुपयों की आमदनी होती थी कि क्या बताऊँ ! सभी मेरे साथ अपनी बेटियों की शादी करने के लिए तैयार थे। घर पर भी बड़ा आदर था। मैं जोड़ासाँको के दे-चौधुरी घराने का बेटा ! उस वक़्त मेरा क्या रौब था ! मेरी गैरेज में दो गाड़ियाँ रहतीं। उस वक़्त चैन के साथ सब पर हुक्म चलाता रहता। तभी यह सब टूट गया। सब जैसे साबुन के फेन के बुलबुले की तरह फूट गया...।'

ताज्जुब है, एककौड़ी की बातें सुनते-सुनते उसे पहले-पहल लगा—सचमुच इस दुनिया में सब-कुछ साबुन के फेन के बुलबुले की तरह है। अभी है, अभी नहीं ! यह सब देख-सुनकर ही लगता है कि कितने समय पहले शंकराचार्य कह गये थे : 'का तव कान्ता, कस्त पुत्रः...।'

एककौड़ी चौधुरी की वह बड़ी करुण कहानी थी। एककौड़ी-दा के आगे बैठे-बैठे उसकी ओर देखकर स्वदेश को लग रहा था, कहाँ गया वह रेशम का कुर्ता, पंप-शू, फ़िनले की बायालीस रुपये जोड़े की धोती। और आज उसी का फटा पैंट, मैला कोट और पैरों में से अँगूठा दिखाने वाला जूता !

मकान के हिस्से पहले ही बँट गये थे। शेयर मार्केट के चढ़ाव-उतार से उस वक़्त एककौड़ी-दा की हालत ख़राब हो रही थी। और एक बार अगर आदमी के मन में समा जाये कि कोई ग़रीब हो गया है तो फिर कौन उसके साथ सम्बन्ध रखेगा ? दो हालतों में आदमी आदमी के निकट पराया हो जाता है। एक, हम लोगों में से किसी की हालत बड़ी अच्छी हो जाये तब हम उससे अलग हो जाते हैं। और दूसरी है, जब सुनते हैं कि किसी की हालत गिर गयी है। हालत दूसरे रिश्तेदारों से अच्छी होना जिस तरह अपराध है, दूसरों से हालत ज़्यादा ख़राब होना भी उसी तरह अपराध है !

मनुष्य के जीवन में यही एक बड़ी ट्रैजेडी है। हम सभी चाहते हैं कि कोई और हमसे ऊँचा सिर करके न चल सके। और यह भी नहीं चाहते हैं कि किसी की हालत हमसे ख़राब हो। ख़राब होने ही से हमें डर लगता है कि शायद वह कभी हमसे रुपया उधार माँगने आ जाये।

एककौड़ी बोला, 'भाई, मैं इसीलिए किसी के पास नहीं गया। जिस दिन शेयर मार्केट के गड्ढे में हमारी आख़िरी कौड़ी तक चली गयी, उस दिन भाई, किसी आत्मीय स्वजन के पास भी नहीं गया। कहने तक को कहीं नहीं गया। अपने आत्मीय स्वजनों के पास नहीं गया, घर भी नहीं गया।'

स्वदेश ने पूछा, 'क्यों, घर ने क्या क़ुसूर किया था? तुम घर क्यों नहीं गये?'

एककौड़ी-दा बोले, 'अरे, मुझे रुपये से नफ़रत हो गयी थी।'

'उसके बाद? उसके बाद अब तुम कहाँ हो?'

एककौड़ी-दा बोले, 'उसके बाद से मैं कहीं नहीं हूँ। मैं सिर्फ़ घूमता फिरता हूँ। कभी सड़कों पर, कभी ट्रेन में। कभी स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर। कहीं किराया नहीं देना पड़ता है। अभी-अभी मैं असम से आ रहा हूँ।'

'और खाना?'

एककौड़ी-दा ठठाकर हँस पड़े। बोले, 'तूने खाने की बात कही? यही तो, तू अभी जिस तरह खिला रहा है, उसी तरह दूसरी जगह भी दूसरे के सिर खाता हूँ।'

उसके बाद कुछ रुककर स्वदेश से पूछा, 'और तू आजकल क्या कर रहा है?'

स्वदेश बोला, 'सर्वजय बनर्जी वकील मेरे बाबा के क्लास-फ्रेंड हैं। दोनों कॉलेज में साथ-साथ पढ़े थे। मैं उनका जूनियर बनकर काम कर रहा हूँ।

'आख़िर और कोई पेशा नहीं मिला? सीधे वकील? तू तो लिखने-पढ़ने में अच्छा था रे, इस पेशे में क्या करने गया?'

स्वदेश बोला, 'बाबा की बड़ी इच्छा थी, इसलिए।'

'लेकिन तू अपने बाबा की पॉलिटिक्स में क्यों नहीं गया? उस धन्धे में तू अगर किसी को धर-पकड़कर एक टर्म के लिए भी मिनिस्टर बन जाता, तो तू पाँच पुश्तों के खाने लायक़ रुपया कमा लेता। अच्छा छोड़, तेरे बाबा मिनिस्टर हो सके हैं?'

स्वदेश बोला, 'नहीं।'

एककौड़ी ताज्जुब में पड़ गया। बोला, 'क्यों? बात क्या है? इतने वक़्त से एम० एल० ए० हैं, इतने दिनों जेल काटी, फिर भी मिनिस्टर क्यों न बन पाये? कितने लल्लू-पंजू तक मिनिस्टर बन गये, तमाम मैट्रिक-फ़ेल लोग मिनिस्टर बनकर ढेरों पैसे कमा बैठे हैं, और तेरे बाबा ने एक मामूली एम० एल० ए० की ज़िन्दगी बिता दी? कैसी शर्म की बात है!'

स्वदेश उठ खड़ा हुआ। बोला, 'मैं उठूँ एककौड़ी-दा, मुझे ज़रा काम है।'

एककौड़ी-दा उठे। बोले, 'तू रहता कहाँ है? उसी मिर्ज़ापुर मेस में?'

'हाँ।'

'तो चल, मैं भी तेरे साथ चलूँ। आज रात तेरे कमरे में ही काटूं। तेरे कमरे में जगह तो है न?'

सो इसी तरह हुआ एककौड़ी-दा का इस मेस में आना। उस वक़्त स्वदेश ने सोचा था कि एककौड़ी-दा एक रात के लिए उसके मेस के कमरे में ठहरेंगे—एक रात यहाँ विताकर फिर यथास्थान चले जायेंगे। लेकिन वह नहीं हुआ। उस दिन एककौड़ी-दा को मेस का खाना वहुत अच्छा लगा। वोले, 'तेरे मेस का खाना तो वहुत अच्छा है रे, मैं कल भी यही खाऊँगा, सो महीने में तेरा कितना चार्ज लगता है?'

उसके वाद खाते-खाते ही बोले, 'और चार्ज जो भी पड़े, उससे तेरा ही क्या, और मेरा ही क्या? तेरे गौरी सेन वावा तो हैं। चित पड़ने वाली कौड़ियाँ, ज़रा पट ही पड़ जायें! हमें धोखा देकर तो तेरे वावा वहुत कमाते हैं; एक ईमानदार आदमी मुसीवत में पड़ा है, न हुआ तो वह ज़रा पेट-भर खा लेगा।'

उसके बाद एककौड़ी-दा दूसरे दिन भी रह गये। फिर उसके बाद के दिन। वह फिर न गये। एककौड़ी दादा बोले, 'मैं यहीं रह जाऊँगा, समझा? ईमानदार आदमी, मुसीवत में पड़ गया हूँ। अव लाचार घूमूँगा। कभी तुझे वहुत खिलाया था, न सही अव तू ही मुझे खिला।'

अन्त में मेस की पहली मंज़िल पर एक छोटा-सा कमरा था। वहाँ कोयला और उपले रखे जाते थे। उसी को साफ़-सूफ़ कर एककौड़ी दादा के रहने का इन्तजाम स्वदेश ने कर दिया। तब विलकुल ठीक हो गया। रुपये की फ़िक्र भी नहीं करनी पड़ती! काम-काज की चिन्ता भी नहीं थी। सिर्फ़ वीच-बीच में स्वदेश को उपदेश देता रहता। कहता, 'तेरे यहाँ मांस नहीं चलता? तेरे वावा का इतना रुपया है, तू करेगा क्या? ज़रा मांस खा, उसमें कंजूसी क्यों करता है?'

लेकिन वही एककौड़ी फिर दूसरे मौक़े पर दूसरी तरह हो जाता। स्वदेश की तवीयत ठीक न रहने पर उसे नींद न आती। स्वदेश के कपड़े-लत्ते मैले होने पर वही धोने-साफ़ करने के लिए दे आता। जूते फट जाने पर दूकान पर ले जाकर जूते ख़रीद देता। स्वदेश कहता, 'इतना क़ीमती जूता

मैं न पहन सकूँगा ।'

एककौड़ी कहता, 'अरे, वाप की वदमाशी का पैसा कुछ उड़ा रे, उड़ा। पाप के पैसों से थोड़ा सुख उठा ही ले।'

एक दिन वलरामपुर से लौट आते ही एककौड़ी ने पकड़ लिया। वोला, 'क्यों रे, ऐसा उदास क्यों लग रहा है ?'

स्वदेश वोला, 'वावा शादी के लिए ज़ोर दे रहे हैं।'

'शादी ?'

स्वदेश वोला, 'हाँ, मेरी एक वहन है, वह भी पीछे पड़ गयी है। अपनी एक सहेली के साथ शादी करने के लिए वहुत खुशामद की है।'

'ख़वरदार, ख़वरदार, शादी की कि मरा ! ख़वरदार, शादी करके मर जायेगा ।'

स्वदेश वोला, 'मैं भी वही कहता हूँ। मैंने कहा है कि पहले अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊँ, उसके वाद शादी की सोचूँगा। लेकिन वे तो कोई सुन ही नहीं रहे हैं। ज़वरदस्ती मेरा व्याह कर देना चाहते हैं।'

'और लड़की कैसी है ? तूने देखी है ?'

स्वदेश वोला, 'हाँ।'

'इस बीच देखना भी हो गया ? देखने में कैसी है ?'

स्वदेश बोला, 'अच्छी ही है। बुरी नहीं है।'

एककौड़ी वोला, 'तो आधी वरवादी तो हो गयी। अगर लड़की वहुत अच्छी न हो तो तू किस दुख से शादी करने को जायेगा ? तेरे वावा के रुपयों के लालच में कलकत्ता का कोई भी आदमी तेरे साथ अपनी लड़की की शादी करना चाहेगा, लेकिन तू क्यों हर एक को व्याहने जायेगा ? तुझे शादी की कौन-सी लाचारी है ?'

दोनों में इसी तरह की वातें रोज़ होतीं। इसी तरह मिर्ज़ापुर के मेस के अन्दर दोनों दोस्तों के सम्बन्धों में घनिष्ठता वढ़ती जाती। इसी तरह एक आदमी के रुपयों से दोनों के खाने-पहनने की समस्या दूर रहती। एक ही किताव बाज़ार से ख़रीदकर इसी तरह वारी बाँधकर दोनों पढ़ लेते। पृथ्वी के मानव का बिलकुल शुरू से, आज तक जो विचित्र इतिहास वना है उसकी आलोचना करते। उसे लेकर वहस करते, और मानव-समाज की मुक्ति के स्वप्न देखते। दोनों के वेकार वाद-विवाद से मिर्ज़ापुर के निम्न-मध्यवित्त मेस का कमरा वार-वार गूँज उठता। और उसके वाद गोविन्द जब आकर कहता कि खाना लगा दिया है, तभी तर्क का तूफ़ान रुकता। दोनों जाकर खाने वैठते। वह वाद-विवाद भी कैसा विचित्र था कि उसे सुनकर दूसरे लोग ताज्जुव में पड़ जाते। ज्ञानयोग बड़ा है या भक्ति-

योग बड़ा है—इस पर क्या ही वहस होती ! आर्य लोग भारतवर्ष में कव आये थे ? स्वदेश कहता 'आर्य लोग पहले वंगाल में आये थे।' एककौड़ी कहता, 'न, वे सव पहले उत्तरी भारत में, माने पंजाव में आये थे। उसके वाद वहाँ से पैदल चलकर वंगाल आये।' कभी-कभी वहस समाप्त हो जाने पर फिर नये सिरे से नया विषय लेकर वहस चलती। देश में राष्ट्रीयता का स्वर पहले किसने फूँका ? स्वदेश कहता, 'स्वामी विवेकानन्द ने।' एककौड़ी कहता, 'वंकिमचन्द्र ने।' उधर सर्वजय वनर्जी, सुविख्यात क्रिमनल एडवोकेट जव मुवक्किलों की ओर से मुक़दमे के कागज़ात लेकर ज़मीन-आसमान एक करते होते, और हरिसाधन वावू अपनी ताक़त और असेम्वली में अपनी सीट वनाये रखने के लिए मन-ही-मन तरह-तरह की तरकीवें सोचते, उस वक़्त दोनों वेकार शिक्षित लड़के गन्दे निम्न-मध्यवित्त मेस के उससे भी गन्दे कमरे में वैठकर सारे देश के आदमियों की उन्नति के वाचिक उपाय में पसीना-पसीना हो जाते। ऐसे ही वक़्त एक दिन एककौड़ी जव अपने अँधेरे कमरे में लेटा हुआ था, तभी जैसे वाहर किसी के पैरों की आवाज़ हुई। इस वेवक़्त दोपहर को कौन आया ?

उसी कमरे के अन्दर से वह चिल्ला उठा, 'कौन।'

किसी ने जवाव न दिया। फिर चिल्लाया, 'कौन ? वाहर कौन आया है, रे गोविन्द ?'

फिर भी किसी का जवाव नहीं, जैसे कि एककौड़ी को कोई कुछ समझता ही न हो। एककौड़ी मानो आदमी ही न हो। जव पुकारते-पुकारते किसी का जवाव न मिला तो एककौड़ी दे-चौधुरी विस्तर छोड़कर उठे। जूतों का जोड़ा पैरों में डाला। उसके वाद दरवाज़ा ठेलकर वाहर आँगन की ओर क़दम वढ़ाये। वहाँ कोई न था।

फिर पुकारा, 'गोविन्द ! ओ गोविन्द !'

अभी तक पता नहीं कि गोविन्द कहाँ था ! आ खड़ा हुआ, 'क्या वावू ?'

'इतनी देर से पुकार रहा हूँ, जवाव नहीं देता ? मैं शायद आदमी नहीं हूँ ? मुझे तुम लोग आदमी नहीं समझते ? मैं क्या घोड़ा, वैल या गधा हूँ ? सोचता है कि पुकारता है तो पुकारता रहे। जवाव न देने से चुप हो जायेगा।'

गोविन्द वोला, 'क्या कहना है कहिये न, चाय पियेंगे ?'

एककौड़ी वोला, 'धत्तेरे की, चाय वनाने के डर से शायद जवाव नहीं देता था ? मैं क्या हमेशा तुझे चाय ही वनाने को वुलाता हूँ ? तो जा, मैं ज़िन्दगी-भर तुझे कभी न वुलाऊँगा। जा, जो कर रहा था वही जाकर

कर ! अगर चोर-डाकू भी कभी घर में घुस आयें तो मुझे दोष न दे सकेगा, जा।'

कहकर एककौड़ी फिर दरवाज़ा वन्द करने जा रहा था कि गोविन्द वोला, 'मेरे नाम दोष क्यों मढ़ रहे हैं वावू, मैं तो ऊपर था।'

'ऊपर ? ऊपर क्यों ? ऊपर क्या करने गया था ?'

गोविन्द वोला, 'स्वदेश वावू के पिता को ऊपर ले गया था।'

'स्वदेश वावू के पिता ! क्या स्वदेश वावू के पिता आये हैं ?'

'जी हाँ, वे पहले यहाँ कभी आये नहीं थे, इसीलिए स्वदेश वावू का कमरा उन्हें दिखा दिया।'

अव जैसे एककौड़ी को होश आया। स्वदेश का वही वाप ! वुड्ढा यहाँ आया है ! ज़रूर लड़के को ले जाने के लिए आया है। ज़वरदस्ती उसकी शादी करना चाहता है। ठहरो, तमाशा दिखाता हूँ।

मन-ही-मन ऐसा कहकर उसी हालत में एककौड़ी ज़ीने से ऊपर चढ़-कर चिल्लाने लगा, 'ख़वरदार, ख़वरदार !'

उस वक़्त अगर स्वदेश न रोकता तो क्या हाल हो जाता, कहा नहीं जा सकता। शायद वुड्ढे से जवाव-सवाल करते वक़्त मार-पीट ही कर वैठता। स्वदेश उसे ढकेलते-ढकेलते विलकुल सीधे उसके अपने कमरे में ठेल गया।

वोला, 'वताओ तो, तुमने क्या किया, एककौड़ी दादा ! वे मेरे वावा हैं न ? उनसे ऐसे वात की जाती है ?'

एककौड़ी वोला, 'तू मुझे न रोकता तो मैं तेरे वावा को एक थप्पड़ मार देता, यह वताये देता हूँ।'

'क्यों, उन्हें थप्पड़ क्यों मारते ? वावा ने क्या किया ?'

'मैं जानता हूँ, तेरे वावा तुझे यहाँ से ले जाने के लिए आये हैं। ज़वरदस्ती कर तेरे गले में एक पत्नी लटका देना चाहते हैं। मैं क्या कुछ समझता नहीं हूँ ? किसी से सुन लिया कि मैं तेरे सिर पर वैठा खा रहा हूँ, इसीलिए यहाँ आया है। लेकिन मैं भी यह कहे देता हूँ, तू यहाँ रहे या न रहे मैं यहाँ से एक क़दम नहीं हटने का।'

स्वदेश वोला, 'एककौड़ी-दा, असल में सर्वजय वावू, मेरे सीनियर से वावा ने सुना कि मैं उनके पास नहीं जाता। इसीलिए यहाँ मुझसे मिलने आये हैं। वावा तो जीवन में कभी भी मेरे यहाँ आये नहीं। सो तुमने जिस तरह का काम किया, उससे इसके वाद मुझे यहाँ से लिये विना वावा जायेंगे नहीं, यह वताये देता हूँ।'

एककौड़ी वोला, 'तेरे वावा शायद इस वार ज़रूर वलरामपुर ले

जाकर तेरा ब्याह कर देंगे।'

स्वदेश बोला, 'क्या पता, देखें बाबा क्या कहते हैं!'

'तू लेकिन ब्याह मत करना, ख़बरदार! मैंने देखा है कि मेरी जान-पहचान के जितने लोगों ने ब्याह किया सभी ब्याह के बाद बुद्धू बन गये। तू भी देखना, बिलकुल बुद्धू हो जायेगा।'

स्वदेश बोला, 'एककौड़ी दादा, तुम यहाँ बैठो, मैं जाकर सुन आऊँ, बाबा क्या कहते हैं। तुम फिर कहीं ऊपर मत आ धमकना।'

कहकर स्वदेश एककौड़ी दादा को चेता कर फिर ऊपर चला गया। लेकिन अपने कमरे में जाकर देखा कि कमरा ख़ाली है। कोई नहीं है। स्वदेश अवाक रह गया। बाबा कहाँ गये? कमरे से निकलकर बरामदे में इधर-उधर नज़र डालकर देखा। वहाँ भी नहीं थे। बाबा कहाँ चले गये?

स्वदेश ने आवाज़ लगायी, 'गोविन्द, गोविन्द!'

गोविन्द के आते ही स्वदेश ने पूछा, 'बाबा कमरे में नहीं हैं। पता है, कहाँ गये?'

गोविन्द ने नहीं देखा था। मालिक कब चले गये, यह देख नहीं पाया था। कैसा ताज्जुब है! वह अचानक ग़ायब क्यों हो गये?

गोविन्द बोला, 'पता है बाबू, बड़े बाबू शायद बहुत ख़फ़ा हो गये। एककौड़ी बाबू के बारे में वे मुझसे बहुत-सी बातें पूछ रहे थे।'

'क्या पूछ रहे थे?'

'पूछ रहे थे कि यह लड़का कौन है? मैंने बताया कि वे बाबू के दोस्त हैं। और पूछ रहे थे कि लड़का कैसा है—शराब पीता है या नहीं? कितनी रात गये मेस में लौटता है? शाम को दोनों कहाँ जाते हैं? दिन-भर क्या करते हैं—यही सब।'

'तो तूने क्या कहा?'

गोविन्द बोला, 'मैंने कहा कि बाबू लोग शाम को कहीं नहीं जाते। दोनों ही अपने-अपने कमरों में बैठकर किताब-विताब पढ़ते रहते हैं। उसके बाद बड़े बाबू ने और भी पूछा कि बाबू लोग घुड़-दौड़ के मैदान में जुआ-उआ खेलते हैं या नहीं? मैंने कहा—न, कभी बाबू लोगों को जुआ खेलते नहीं देखा।'

स्वदेश बोला, 'यह सुनकर बाबा ने क्या कहा?'

गोविन्द बोला, 'सुनकर कुछ नहीं कहा, बस चुप रहे। उसके बाद मेरे चूल्हे पर दाल जल रही थी, इसलिए मैं यहाँ रुका नहीं। बड़े बाबू को छोड़कर झटपट नीचे रसोई-घर में चला गया। उसके बाद कब वे चले गये,

मुझे कुछ पता नहीं चला।'

स्वदेश बोला, 'अच्छा, अब तू जा।'

मिर्जापुर के मेस से निकलकर हरिसाधन बाबू कहाँ जायें, यह ठीक नहीं कर पाये। कार्तिक गाड़ी चला रहा था।

गाड़ी पर बैठते ही बोले, 'कार्तिक, ज़रा सर्वजय बाबू के घर की ओर तो चल।'

गाड़ी सीधी ट्राम की सड़क पकड़कर उत्तर की ओर चलने लगी। विश्वस्त गाड़ी थी और सधा हुआ ड्राइवर। फिर भी उन्हें लगा कि सारा कलकत्ता शहर जैसे उनके चेहरे के सामने उँगली उठाकर उन्हें सावधान कर रहा है! चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, 'ख़बरदार, ख़बरदार ...!'

वह मिर्जापुर के मेस के अन्दर का दृश्य फिर याद करने का प्रयत्न करने लगे। अब और देर करना ठीक नहीं है। देर करने से उनकी हानि होगी। एक दिन भी जो देरी की वही बुरा किया। अवस्था-प्राप्त बाप को बेटों का ज़्यादा दिन शादी न करना ठीक नहीं है। ग़रीब लोगों के लड़के जो चाहें करें। वे जब तक अच्छा न कमा सकें, उतने दिनों उनका शादी न करना ही ठीक है।

असल में ग़लती उनकी ही है। वह अग़र राज़ी हो गये होते तो इतने दिनों में तो उनके घर में पुत्र-वधू आ जाती। पिछले ज़माने में इसीलिए तो लोग जल्दी-जल्दी ही लड़के-लड़कियों की शादी कर देते थे। उसके बाद फिर उन सारी अँगरेज़ी किताबों का भूत दिमाग़ में न घुसता। ताज्जुब है, पैसे लगाकर इतनी किताबें ख़रीदकर कमरे में सजा रखी हैं। पन्ने खोलते ही पता चल जाता है कि कितने पैसे उन किताबों में बरबाद हुए हैं।

एक जगह पहुँचते ही कार्तिक ने गाड़ी रोकी। कार्तिक को पता है। कलकत्ता शहर में बाबू कहाँ-कहाँ जाते हैं, यह उसे खूब याद रहता है। गाड़ी रोककर कार्तिक गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर खड़ा हो गया। हरिसाधन बाबू उतरे। उतरकर एक मकान के दरवाज़े की घंटी दबायी।

मकान के आगे पीतल की पट्टी लगी हुई है। उसमें बस इतना लिखा

है—'एस० वनर्जी, एम० ए०, वी० एल० ।' इतना ही काफ़ी है। प्रसिद्ध लोगों के लिए ज़्यादा वातों की ज़रूरत नहीं होती। ज़रूरत उनको ही होती है जो अज्ञात कुलशील होते हैं।

घंटी की आवाज़ सुनकर जो आया उसने उन्हें देखते ही स्वागत में अभ्यर्थना की। दरवाज़े को खोल के खड़ा हो गया। हरिसाधन वावू को इस घर में आने के लिए किसी से भी अनुमति माँगने में बेकार वातें न करना पड़तीं। वह इस मकान में बेरोक-टोक अतिथि हैं। उसी कारण से एकदम धड़धड़ाते ऊपर चले गये। नीचे से ही पुकारते-पुकारते ऊपर चढ़ने लगे, 'सर्वजय, सर्वजय हो क्या ?'

हरिसाधन वावू की पुकार से मानो सारा घर गूँज उठा। दो-मंज़िले पर वैठक पार कर सीधे अन्दर चले जा रहे थे। लेकिन पास के एक कमरे से लड़की निकल आयी। वह आते ही वोल उठी, 'काका वावू, आप...?'

कहकर झुक हरिसाधन वावू के पैर छूकर हाथ सिर पर लगाया।

हरिसाधन वावू रुक गये थे। वोले, 'वेटी, कैसी हो ? वावा कहाँ हैं ?'

'वावा अभी नहीं आये, मैं तो उनके लिए ही वैठी हूँ।'

'सर्वजय अभी नहीं आया ? क्यों, इतनी देर क्यों हो रही है ? इसी वक़्त तो वह रोज़ खाने आता है।'

चारों ओर की सफ़ाई और व्यवस्था देखकर हरिसाधन वावू की आँखें तृप्त हो गयीं। इसकी तुलना में मिर्ज़ापुर स्ट्रीट का वह स्वदेश का मेस उन्हें एक कूड़ेदान-सा लगा। किसी सुप्त आकांक्षा का प्रलोभन मानो चुम्वक की तरह उन्हें सिर से पैर तक आकर्पित करने लगा। सचमुच स्वदेश मूर्ख है। विलकुल अज्ञानी। उसे पता नहीं है कि किसी दिन सर्वजय के इस सव वैभव का मालिक वही होगा। स्वदेश को यहाँ वह एक वार ले भी आये थे। स्वदेश को सव पता है। सव जानकर भी वह ऐसी वातें करता है मानो कुछ न जानता हो, कुछ भी न समझता हो। और सिर्फ़ घर देखा है वही नहीं, लड़की को भी देखा है। वह जानता है कि उसे एक दिन यह राज्य ही नहीं मिलेगा, इसके साथ राजकुमारी भी मिलेगी। फिर भी उसे कोई आग्रह नहीं था। मानो जो भी गर्ज़ है वह सव हरिसाधन वावू की हो ! फिर मैं कौन हूँ ? मेरे कितने दिन हैं ? मेरी उम्र हो गयी है। मुझे तो अव चले जाना ही पड़ेगा। मैं तो तव तुम्हारा घर, तुम्हारा रुपया— किसी का भी भोग करने नहीं आऊँगा। वाप होने के नाते तुम्हारी भलाई चाहना मेरा कर्तव्य है, इसीलिए इतनी वातें कहता हूँ। नहीं तो मेरा अव क्या है ? तुम अगर यूरोप-अमेरिका के लड़कों की तरह आवारा हिप्पी वन जाते तव भी समझता। तुम अगर कम्युनिस्ट हो जाते तव भी समझ

में आता। क्योंकि वैसा कुछ बन जाना इस ज़माने का फ़ैशन है। तब समझता कि तुम नॉर्मल आदमी हो। और तो और, अगर तुम मिडिल क्लास बंगालियों के लड़कों की तरह गद्य-कविता भी लिखते तो मैं वह भी समझता, क्योंकि रवि ठाकुर के देश में सबकी वहीं तक दौड़ है। लेकिन यह भी नहीं है, वह भी नहीं, बस किताब मुँह के आगे लेकर अँगरेज़ी इतिहास की किताब घोटना, इसका तो कोई मतलब मेरी समझ में नहीं आता। तो फिर इसे कैसे समझाऊँ ? फ्रॉयड से ? कार्ल मार्क्स से ? या शंकराचार्य के देश में रामकृष्ण परमहंस के सहारे ? एक बात की बात कि तुम्हारा दिमाग़ किसने हर लिया, बता सकते हो ? कैसा भूत तुम्हारे सिर पर सवार है ?

'थोड़ा शरबत बना दूँ, काका बाबू ?'

हरिसाधन बाबू ने उस बात का जवाब न देकर कहा, 'तुम मेरे घर कब आओगी, बेटी ? मैं तुम्हारे लिए घर सजाये बैठा हूँ।'

बात कहने के बाद ही उनकी समझ में आया कि क़सूर तो उनका ही है। सर्वजय ने तो मान ही लिया है। उसका तो कोई क़सूर नहीं है। उसने भी उनकी बात मान ली है।

'पता है बेटी, मैं स्वदेश के मेस से बिलकुल सीधा तुम्हारे यहाँ आया हूँ। उसे देखकर मुझे बहुत तकलीफ़ हुई है। वह क्यों इतनी तकलीफ़ उठा रहा है ? और मैं ही उसे इतनी तकलीफ़ क्यों उठाने दे रहा हूँ ? उसे किस चीज़ की ज़रूरत है ? वह मेरा अकेला लड़का है। सब-कुछ उसे और तुम्हें मिलेगा। बलरामपुर में मेरे सब-कुछ के तुम लोग ही सोलह आने मालिक बनोगे। मैंने देख लिया, बेटी, कि और देर करना ठीक नहीं है। देर करके मैंने ग़लती ही की है। इसीलिए मैं जितनी जल्दी हो तुम दोनों के हाथ मिला देना चाहता हूँ। तुम्हारी क्या राय है, बेटी ? क्यों बेटी, तुम कुछ बोल नहीं रही हो ?'

लड़की का नाम था जयन्ती।

जयन्ती बोली, 'मुक्ति कैसे है, काका बाबू ?'

'अच्छी है बेटी, बहुत अच्छी है। उसे तो तुम्हारी बातों से ही फ़ुरसत नहीं मिलती। बस, तुम्हारी ही बातें करती रहती है। वह भी तो अकेली ही पड़ गयी है। माँ के मरने के बाद से उसे बिलकुल अकेली ही रहना पड़ता है। तुम्हारे आने से उसे बात करने को फिर भी कोई साथी मिल जायेगा।'

सहसा बाहर कॉल-बेल की घंटी बज उठी। जयन्ती उठी, बोली, 'वह बाबा आ गये।'

उसके बाद बोली, 'आप भी यहीं खा जाइयेगा काका बाबू, मैंने सब ठीक कर लिया है, आप बैठिये।'

कहकर बाहर की ओर चली गयी। हरिसाधन बाबू ने फिर चारों ओर देखा। कैसा ढंग से सजा घर है! सब में कैसी रुचि और सहजता है! सब में बिटिया के हाथ का स्पर्श है। एक बार स्वदेश से हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'गन्दे कमरे में रहते तुम्हें अच्छा लगता है?'

स्वदेश ने कहा था, 'विलासिता में डूबकर रहने से मुझे शर्म आती है।'

'तो, क्या मैं तुमसे विलासिता में डूबने को कह रहा हूँ? मैं तो साफ़-सुथरा रहने को कहता हूँ।'

स्वदेश ने कहा था, 'हमारे देश में साफ़-सुथरा रहने का नाम भी विलासिता है। जिस देश में इतने ग़रीब हों वहाँ विलासिता करने को मैं पाप मानता हूँ। सफ़ेद क़ीमती कपड़े-जूते पहनने में भी मुझे शर्म आती है।'

हरिसाधन बाबू ख़फ़ा हो गये थे। बोले थे, 'तो क्या तुम कहना चाहते हो कि देश ग़रीब है इसलिए हम अच्छा पहनेंगे नहीं, अच्छा खायेंगे नहीं? तुम क्या ऐसे देश-भक्त हो गये हो कि इस दुख में बिलकुल संन्यासी बन जाओगे? जिनकी बात तुम कह रहे हो वे संन्यासी भी क्या अच्छा खाते नहीं, अच्छा पहनते नहीं? तुम कभी साधुओं के आश्रम में गये हो? जाकर देखा है कि वे क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं? और मेरी ही बात सोच लो न! मैं क्या तुमसे कम देश-भक्त हूँ? डॉक्टर विधान राय क्या कम देश-भक्त हैं? प्रसन्न सेन क्या कम देश-भक्त हैं? अमूल्य घोष, जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गांधी—क्या देश को तुमसे कम प्यार करते हैं? हम लोगों ने क्या देश की फ़िक्र में खाना-पहनना छोड़ दिया है? जिनकी बात कही वे सब मैले-कुचैले रहते हैं? वे लोग क्या भूखे रहते हैं?'

स्वदेश ने कहा था, 'उन्हें शर्म नहीं आती होगी, पर मुझे तो शर्म आती है।'

'तुम क्या इस दुनिया के बाहर से आये हो? तुम क्या सबसे अलग हो?'

स्वदेश इस बात का शायद कुछ जवाब देने जा रहा था, लेकिन कुछ सोचकर वह चुप रहा। वह क्यों चुप रहा, वह क्यों चुप हो गया—इसका पता नहीं चला।

हरिसाधन बाबू बोले थे, 'बोलो, क्या कहने जा रहे थे, बताओ? चुप क्यों रह गये?'

स्वदेश ने कहा था, 'मैं इतिहास पढ़ता हूँ। इतिहास में देखा है कि

तमाम राजाओं के बेटे दुनिया छोड़कर जंगल में चले गये थे—उन्हें विलासिता में कोई भी सुख नहीं मिला। सब-कुछ छोड़कर ही उन्हें सब मिला था।'

हरिसाधन बाबू बोले थे, 'तुम न तो राजा के बेटे हो, और महापुरुष भी नहीं हो। तुम हम सब लोगों की तरह अच्छा खाने-पीने वाले इंसान हो, तुम किसलिए सब त्याग करोगे ? दुनिया में रहकर साधारण मनुष्य होकर क्या असाधारण नहीं बना जा सकता ? सी० आर० दास, सुभाष बोस—क्या घर छोड़कर चले गये थे ? गांधीजी ने क्या संसार छोड़ दिया था ? क़ायदे से लड़के-बच्चे-पत्नी लेकर पूरी तौर पर वे गृहस्थी कर गये।'

स्वदेश बोला था, 'मैंने क्या कहा कि मैं महात्मा गांधी हूँ ?'

हरिसाधन ने बिगड़कर कहा था, 'तुम अगर महात्मा गांधी होते तो मैं कुछ आपत्ति न करता, और तो और अगर गौतम बुद्ध भी होते, तब भी मैं कुछ न कहता। लेकिन...।'

सहसा उनके विचारों में रुकावट पड़ी। सर्वजय कमरे में आये। आते ही बोल पड़े, 'क्या हाल है, भाई ? असेम्बली से छुट्टी हो गयी ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'नहीं भाई, यों ही आया हूँ। सोचा कि बहुत दिनों से मुलाक़ात नहीं हुई, इसीलिए...।'

सर्वजय बोले, 'अच्छा किया, खूब किया ! आज एक साथ खायेंगे, आओ...।'

कहकर उन्हें खाने के कमरे में ले गये। खाते-खाते बोले, 'देखो हरिसाधन, तुम्हारा ड्रग लाइसेंस का केस आज डिसमिस करा आया।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'वह डिसमिस हो जायेगा, यह मालूम था। भाई, मैं अपनी दवाइयों की कम्पनी का मालिक ज़रूर हूँ। लेकिन मैं क्या खुद दवाइयाँ बनाता हूँ ? वेतनभोगी केमिस्ट हैं मेरे। वे ही सब करते हैं। फिर उसके सिवा गवर्नमेंट के ड्रग-इंस्पेक्टर आकर हर महीने जाँच कर जाते हैं, सर्टिफ़िकेट दे जाते हैं। उसके बाद भी अगर दवाइयों में मिलावट निकले तो मैं उसके लिए कैसे ज़िम्मेवार हूँ ?'

उसके बाद कुछ रुककर बोले, 'उसके सिवा भाई, बंगाली के घर पैदा हुआ हूँ, मेरे दुश्मन नहीं होंगे तो किसके दुश्मन होंगे ? भाई, यह सब मेरी विरोधी पार्टी के एम० एल० ए० लोगों का काम है। ऐसा तो हमें ज़िन्दगी-भर सहना पड़ेगा।'

मेज़ के उस पार से जयन्ती जाते-जाते सहसा बोल पड़ी, 'काका बाबू, आप कुछ खा नहीं रहे हैं ?'

अब सर्वजय की नज़र पड़ी। बोले, 'यही तो, तुम कुछ खा नहीं रहे

हो, हरिसाधन !'

हरिसाधन वोले, 'भाई, मैं घर से खाकर ही चला था ।'

सर्वंजय वोले, 'वह तो कव का सवेरे था। अव तो दोपहर भी वीत गयी।'

हरिसाधन वावू वोले, 'मैं वहुत सोच में पड़ गया हूँ भाई, अभी मैं स्वदेश के मेस से आ रहा हूँ। दो सप्ताह से स्वदेश घर नहीं गया। मुझे वहुत बुरा लगा और वह ऐसे ही एक मेस में रहता है जहाँ टेलीफ़ोन भी नहीं है कि टेलीफ़ोन करके पता लेता रहूँ।'

'तो मेरे पास टेलीफ़ोन कर सकते थे ? मेरे चेम्वर में तो स्वदेश आता है ।'

हरिसाधन वावू असली वात दवा गये। वोले, 'वहतो आता है। लेकिन मुझे भी काम का ऐसा दवाव रहता है कि एक वार असेम्वली हाउस में घुसने पर फिर घर की वात, वेटी की वात, वेटे की वात—कोई वात भी याद नहीं रहती। उस पर अव वजट-सेशन चल रहा है...।'

सहसा सर्वंजय ने वाधा डाली। वोले, 'हाँ, अच्छी वात है, तुम्हारे स्वदेश और अपनी विटिया—दोनों की कुण्डली एक ज्योतिषी को देखने को दी थीं, याद है ?'

हरिसाधन वावू उत्सुक हो गये। वोले, 'अच्छा ! तो ज्योतिषी ने क्या वताया ?'

सर्वंजय वोले, 'तुम तो जानते हो, ज्योतिष-शास्त्र पर मेरा विश्वास है। इसीलिए मैं जव कभी अपने जीवन में मुश्किल में पड़ जाता हूँ तभी ज्योतिषी की सलाह लेने जाता हूँ, भाई। तो सोचा, ज़रा लड़की की कुण्डली दिखा लूँ, और तुम्हें याद है तुम्हारे वेटे के जन्म की वर्ष-तारीख़ मैंने लिख ली थी ?'

'वह सव देख-मिलाकर उसने क्या वताया ?'

सर्वंजय वोले, 'भाई, दोनों की कुण्डली देखकर ही वोला, अनन्य मेल है। स्वदेश की कुण्डली में लग्न से सप्तम बृहस्पति है, और विटिया की कुण्डली में लग्न से सप्तम स्वक्षेत्री चन्द्रमा है; उसके साथ उच्च बृहस्पति है...।'

हरिसाधन वावू वोले, 'देखता हूँ कि तुम ज्योतिष-शास्त्र भी जानते हो। तो उससे क्या होता है ?'

'उससे पति-पत्नी में उत्तम मेल होता है।'

हरिसाधन वावू वोले, 'मेल उत्तम होगा, यह तो मुझे पहले ही मालूम था। वेटी को तो मैं जन्म से देखता आ रहा हूँ, और तुम भी तो स्वदेश

को जन्म से देखते आ रहे हो। मैं तो वेटी से अभी वही कह रहा था—तुम कव मेरे घर आ रही हो ? मेरे बेटे को भी तो आपत्ति नहीं है। लेकिन अभी मैं स्वदेश के पास से ही आ रहा हूँ। उससे इतनी देर तक यही वातें हो रही थीं। वह कहना चाहता है कि वह अभी तक अपने पैरों पर खड़ा नहीं हुआ है। पैरों पर खड़े हुए विना वह व्याह कैसे करे ?'

'उसके मतलव ?'

सर्वजय अवाक हो गये। फिर वोले, 'उसके मतलव ? क्या स्वदेश सोचता है कि पैसे कमाये विना वहू लाकर उसे उपवास करना पड़ेगा ? उसे क्या पता नहीं है कि मेरी या तुम्हारी स्थिति क्या है ?'

'अरे, मैंने भी तो वही वात पूछी थी। उसको समझाया भी कि तुमको स्वावलम्वी वनने की ज़रूरत नहीं है। तुमने लिखना-पढ़ना पूरा कर लिया है। आदमी वन गये, यही काफ़ी है।'

सर्वजय वोले, 'निश्चय ही ! मैंने जव शादी की थी उस वक़्त भला कितनी आमदनी थी ?'

'अरे, मेरा भी तो वही है, जी...।'

सहसा पास के कमरे से टेलीफ़ोन की घंटी वजने की आवाज़ आयी। किसी के उठने के पहले ही जयन्ती ने मेज़ से उठकर रिसीवर उठा लिया। उसके वाद उसे मेज़ पर रखकर फिर खाने के कमरे में लौट आयी।

वोली, 'काका वावू, आपको टेलीफ़ोन पर कोई बुला रहे हैं।'

'मुझे ? यहाँ मुझे कौन वुलाने चला ?'

कहकर मेज़ से उठकर पास के कमरे में टेलीफ़ोन पर वात करने गये।

सहसा सर्वजय ने वेटी की ओर देखा। वेटी उस समय भी भोजन की मेज़ पर वैठी थी।

'अच्छा वेटी, तुमने तो सव-कुछ सुना। और सदा ही तो तुम सव-कुछ सुनती आयी हो। अभी एक वात आज तुमसे पूछता हूँ। स्वदेश के साथ शादी में तुम्हारी अस्वीकृति तो नहीं है ?'

जयन्ती का झुका सिर इस वात से सहसा और भी झुक गया।

सर्वजय वोले, 'तुम्हें तो मालूम है, हरिसाधन से मैंने वायदा किया था कि अपनी वेटी की मैं उनके बेटे से शादी करूँगा।'

फिर भी जयन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप सिर झुकाये रही।

सर्वजय फिर वातें करने लगे।

कहने लगे, 'तुम बताने में शरमाओ मत, वेटी। मैं जानता हूँ कि मुझे छोड़कर जाने में तुम्हें बहुत तकलीफ़ होगी। लेकिन तुम लड़की बनकर जो

पैदा हुई हो। तुम्हारे लिए भी मेरा एक ही कर्तव्य है। फिर उसके सिवा मैं भी तो हमेशा बैठा नहीं रहूँगा। एक अच्छे पात्र के हाथ में तुम्हारा दायित्व दे सकने पर मैं इधर से निश्चिन्त हो सकता हूँ, बेटी।'

उसके बाद थोड़ा रुककर फिर बोलने लगे, 'और स्वदेश को तो तुम छुटपन से ही जानती हो। वह भी तुमको छुटपन से जानता है। तुम दोनों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह जाना-पहचाना हुआ है। तुम दोनों छुटपन से बलरामपुर में एक साथ खेले-कूदे हो। मुझे लगता है कि सुखी होओगी, बेटी। इसीलिए तो तुम्हारे काका बाबू से मैंने वायदा कर लिया था। फिर भी इस शादी में तुम्हारी खुशी है या नहीं, यह जान लेने की मुझे ज़रूरत है, बेटी। तुम कुछ बताओ तो।'

जयन्ती फिर भी चुप रही। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

सर्वजय लड़की का संकोच देखकर फिर कहने लगे, 'आज तुम्हारी माँ नहीं है। वह आज ज़िन्दा होती तो मुझे कुछ फ़िक्र ही न रहती। लड़की का मन माँ जितना समझ सकती है, मैं बाप होकर उतना नहीं समझ सकूँगा। वह अगर कर सकता तो मैं तुम्हारा मत सुनने के लिए तुम्हें संकोच में न डालता। अब बताओ, मैं तुम्हारे लिए ठीक सोच रहा हूँ क्या ?'

जयन्ती ने फिर भी कुछ न कहा।

सर्वजय फिर बोले, 'अरे, तुम कुछ कहो बेटी, आख़िर कुछ तो बोलो। मेरे अपने मन को कुछ शान्ति मिले।'

सर्वजय को लड़की के चेहरे की ओर अच्छी तरह देखने पर सहसा पता चला कि लड़की की आँखें भरी हुई हैं। दोनों आँखों से आँसू बहकर गालों पर आ रहे हैं।

'तुम रो रही हो, बेटी ? रो रही हो तुम ? तो मैं कुछ न कहूँगा। मैं कुछ समझ न सका।

'लेकिन बेटी, तुम मेरी हालत समझो। मैं इस हालत में क्या करूँ, वह बताओ ? तुम्हारे काका बाबू उस कमरे में टेलीफ़ोन करने गये हैं। वे लौट आयेंगे। वे तो बात पक्की करने के लिए आज यहाँ आये हैं; उन्हें तो अभी कुछ पक्की बात मुझे बताना होगी। और मैंने भी तो तुम दोनों की कुण्डली अच्छे ज्योतिषी को दिखायी है। उन्होंने बताया है कि यह शादी तुम्हारी सुख-समृद्धि के लिए होगी। इससे ज्यादा मैं क्या कर सकता हूँ ? अब बताओ बेटी, इस ब्याह में तुम्हारी रज़ामन्दी है न ?'

पास के कमरे से हरिसाधन बाबू के जूतों की आवाज़ सुनायी पड़ी। शायद टेलीफ़ोन पर उनकी बातचीत समाप्त हो गयी थी। वह तब इस कमरे की ओर ही आ रहे थे।

'वताओ वेटी, वताओ ।'

जयन्ती इस वीच वैसे ही सिर नीचा किये हुए कह उठी, 'तुम जो कहोगे, वही होगा, वावा।' कहकर सिर और नीचा कर लिया। उस समय उसका चेहरा लज्जा से, रोमांच से, अनुराग से विलकुल लाल हो गया था।

हाय रे मनुष्य, और हाय रे मनुष्य के मन की आशा, आकांक्षा, वासना और कामना ! आशा करने में जिस प्रकार एक वहुत आनन्द है, उसी तरह आशा-भंग का एक मर्मान्तक विषाद भी है। वहुत दिन पहले वलरामपुर जाकर जयन्ती मुक्ति के घर खेल खेला करती थी। वह वहुत दिनों पहले की वात है। उस समय खेल की साथिन मुक्ति ही थी। उस समय मुक्ति की माँ जीवित थी। खेलते-खेलते अगर थोड़ी देर हो जाती तो उसे वुलाने के लिए माँ घर से आदमी भेजती। माँ की एकमात्र वेटी थी न ! उसे माँ आँखों से दूर न रख सकती। पिता को उतना समय न मिलता। वलरामपुर आने पर वावू के घर जाकर काका गप्प करने वैठ जाते। और जयन्ती घर के अन्दर चली जाती। दोनों एक ही उम्र की थीं। एक लड़की और भी आती-जाती थी।

पहली वार जयन्ती ने जव उसे देखा था तो पूछा था, 'यह कौन है, भाई ?'

मुक्ति ने वताया, 'यह मेरी सहेली है, मेरे साथ एक क्लास में पढ़ती है।'

अभी भी याद है—संध्या—वड़ी हँसमुख लड़की थी।

पूछती, 'तुम शायद कलकत्ता में रहती हो ?'

जयन्ती कहती, 'हाँ।'

कलकत्ता के वारे में संध्या को वड़ा कुतूहल था। कलकत्ता में वसें हैं, ट्रामगाड़ियाँ हैं, और वहुत वड़े-वड़े पन्द्रह-मंजिले मकान हैं। सव संध्या के पिता से सुनी हुई वातें थीं। संध्या ने जीवन में कुछ भी देखा नहीं था, केवल सुना ही था।

'तुमको कलकत्ता की इतनी वातें किसने वतायीं ?'

संध्या कहती, 'मेरे पिता ने।'

'तुम्हारे पिता ने ?'

'हाँ, मेरे पिता नौकरी करने के लिए हर रोज़ कलकत्ता जाते हैं। सवेरे के वक़्त मेरे बिस्तर से उठने के पहले ही बाबा कलकत्ता चले जाते हैं और बहुत रात गये लौटते हैं। तब तक मैं सो जाती हूँ। बाबा से मिल ही नहीं पाती। बस इतवार के दिन बाबा घर में रहते हैं। बाबा ने कहा है कि किसी दिन मुझे कलकत्ता ले जायेंगे।'

जयन्ती बलरामपुर पहुँचते ही कहती, 'हाँ रे, तेरी वह सहेली आज नहीं आयी ?'

मुक्ति पूछती, 'कौन सहेली ? संध्या ? संध्या की बात कह रही है ?'

जयन्ती कहती, 'हाँ।'

तब मुक्ति संध्या को बुला भेजती। संध्या के आने पर तीनों का हुल्लड़ घर में खूब मचता। घर-भर में दो-मंज़िले, एक-मंज़िले पर जितने कमरे-दालान-बरामदे रहते, सब जगह उनकी भाग-दौड़ और शोर-गुल चलता।

माँ जब ज़िन्दा थीं तब बीच-बीच में चिल्लाकर उन्हें सावधान करती रहतीं। कहतीं, 'अरे, तुमलोग मुँह के बल गिर जाओगी। हाथ-पैर टूटकर खून-ख़राबा हो जायेगा।

लेकिन तब कौन किसकी बात सुनता था ! तीनों हम-उम्र लड़कियाँ एक जगह जमा हुई थीं। गर्मी की छुट्टियाँ क्या होती थीं—मानो उनका उत्सव शुरू हो जाता था।

जयन्ती पूछती, 'तुम्हारा घर कहाँ है ? अपने घर तो हम लोगों को कभी नहीं ले गयी ?'

मुक्ति बताती, 'इसके घर मैं गयी थी। लेकिन अब नहीं जाती।'

जयन्ती कहती, 'आज चलो न भाई, इसके घर चलें।'

मुक्ति कहती, 'न भाई, बाबा डाटेंगे।'

'क्यों, तेरे बाबा डाटेंगे क्यों ? हम वहाँ कोई शरारत तो करेंगे नहीं। बस खेलेंगे।'

मुक्ति कहती, 'न, बाबा इन लोगों के घर हमारा जाना पसन्द नहीं करते। इसका बाबा कलकत्ता के कारख़ाने में काम करता है न। कच्चा घर है। बाबा कहते हैं, इनके घर के सामने के तालाब में बहुत बड़े-बड़े साँप भी हैं।'

जयन्ती ने कहा था, 'तुमको साँप नहीं काटते ?'

बातें सुनकर संध्या का चेहरा उतर-सा जाता। कहती, 'न भाई,

झूठी बात है। साँप नहीं हैं।'

मुक्ति कहती , 'न, कभी नहीं। बाबा कहते हैं कि साँप हैं। क्या कहना चाहती हो कि बाबा झूठ कहते हैं? हमारे बाबा कभी झूठ बात नहीं कहते।'

संध्या कहती, 'साँप तो सभी जगह हैं—है न ?'

जयन्ती कहती, 'हमारे कलकत्ता में तो एक भी साँप नहीं है ?'

संध्या कहती, 'ज़रूर हैं। बाबा कहते हैं—साँप सब जगह होते हैं। तुम्हें पता नहीं इसी से कहती हो, कलकत्ता में भी साँप हैं, तुम्हें पता नहीं है ?'

जयन्ती कहती, 'तुम हमसे ज्यादा जानती हो ? मैं कलकत्ता में रहती हूँ, और मुझे नहीं मालूम ?'

इसके बाद संध्या ज्यादा बात न बढ़ा पाती। चुप हो जाती।

जयन्ती, जो दो-एक दिन के लिए पिता के साथ बलरामपुर आती, कुछ दिन मुक्ति के ही यहाँ काटती। वहाँ जाकर किस तरह वक़्त बीत जाता, उसे उसका पता भी नहीं चलता। किसी-किसी दिन स्वदेश चिल्ला पड़ता। कहता, 'मुक्ति, इतना मत चिल्ला। तुम लोग इतना शोर मत मचाओ।'

काकी माँ रोक देतीं। कहतीं, 'बेटी, उधर तुम लोग मत जाना। दादा की परीक्षा आ रही हैं, वह पढ़ रहा है। तुम लोग आँगन की ओर जाकर खेलो।'

जयन्ती बाहर से झाँककर देखती। मुक्ति के बड़े भाई मन लगाकर पढ़ रहे हैं। किसी ओर उनकी नज़र नहीं है। मन लगाकर किताब पढ़ रहे हैं और बीच-बीच में कापी में कुछ लिख लेते हैं। घर के अन्दर बाबा की बैठक में जब शोर मचता, राजनीति को लेकर बहस होती, रसोई-घर में जब खाने को लेकर नौकर-नौकरानी, रसोइये की चीख़-पुकार से सारे घर का वातावरण गरम हो जाता तो भी स्वदेश अपना लिखना-पढ़ना लेकर भूला रहता।

मुक्ति कहती, 'पता है जयन्ती, तेरे बड़े होने पर दादा के साथ तेरा ब्याह होगा।'

तब जयन्ती अवाक हो जाती। पूछती, 'तुझसे किसने कहा ?

मुक्ति कहती, 'हाँ, मैं सब जानती हूँ, मैंने सब सुना है।'

'कहाँ से सुना है ?'

मुक्ति कहती, 'रात को बाबा माँ से कह रहे थे, मैंने सुना था।'

जयन्ती ने इसके बाद कुछ न कहा। लेकिन उसके बाद से जब भी बाबा

के साथ वलरामपुर ग,यी तभी मुक्ति के वड़े भाई की ओर छिप-छिपकर चुपचाप देखती। कोई दोस्त नहीं; कोई साथी नहीं; दत्त-चित्त होकर सिर्फ़ किताबें पढ़ते रहते थे वह।

मुक्ति कहती, 'पता है, पहले दादा और तरह के थे। हम दोनों खूब खेलते थे। दादा उस आमड़े के पेड़ पर चढ़कर हमें वहुत-से आमड़े तोड़-कर दिया करते थे। नन्द-दा हम लोगों को डाँटा करता था।'

वीच-वीच में अकेले रहते वक़्त अकसर जयन्ती को मुक्ति के दादा की वातें याद आतीं। आँखों के आगे मुक्ति के दादा का चेहरा कितनी ही वार झलक पड़ता था। जितनी वार याद आया उतनी ही वार पता नहीं क्यों वह पसीने से तर-वतर हो जाती थी!

एक वार की घटना याद है। उस वार भी इतवार देखकर वावा और माँ के साथ वह वलरामपुर गयी थी। मुक्ति के घर ही उन लोगों के खाने-पीने का प्रवन्ध हुआ था। इसी से सवेरे से ही मुक्ति के घर वह खेलने गयी थी। पश्चिम-पाड़ा से वह संध्या नाम की लड़की भी खेलने आयी थी। सभी चोर और पुलिस का खेल खेल रहे थे। मुक्ति पुलिस वनी थी और जयन्ती और संध्या दोनों चोर वनी थीं। जयन्ती और संध्या दोनों जो जहाँ छिप सकीं छिप गयीं। और मुक्ति उन दोनों को खोज निकालने की कोशिश करने लगी। अगर दोनों में से एक को भी खोज निकाल सकती तो जिसे खोज लेती वही तव चोर वन जायेगा, अगर किसी को न खोजकर निकाल सकी तो मुक्ति चोर वन जायेगी।

उस दिन संध्या कहाँ छिपी थी, इसका जयन्ती को पता न लगा। जयन्ती खोज-खोजकर एक ख़ाली कमरे में जा घुसी। वहाँ कोई न था। कहीं मुक्ति उसे ढूँढ़ न ले, इसलिए उसने एक काम किया। विस्तर पर एक रज़ाई पड़ी थी। उसी को ओढ़कर वह उसके नीचे छिप गयी। तव वह साँस रोककर पुलिस की राह देख रही थी। संध्या अगर पकड़ जाये तो वे लोग उसे पुकारेंगे। तव रज़ाई के नीचे से जयन्ती निकल आयेगी।

वहुत देर राह देखकर भी कोई आवाज़ न सुनायी पड़ी। सिर्फ़ एक-मंज़िले पर रसोई-घर की ओर से कुछ गड़वड़ सुनायी पड़ी।

अचानक घटना हो गयी।

उसकी रज़ाई पर लगा कि मुक्ति आकर, उसे दवाकर वैठ गयी है। जयन्ती ने समझा कि वह पकड़ी गयी। और साथ-ही-साथ उसने रज़ाई के अन्दर से मुँह निकाला।

लेकिन मुँह निकालकर जो देखा तो उसके सिर पर जैसे बिजली गिर पड़ी।

'कौन ?'

स्वदेश की समझ में न आया। बाहर से अपने कमरे में विस्तर पर वैठते ही लगा कि रज़ाई के नीचे कोई हिला हो।

'कौन ? रज़ाई के नीचे कौन है ?'

जयन्ती धीरे-धीरे रज़ाई हटाकर उठ खड़ी हुई। उसके वाद बड़ी मुश्किल से अपने को संभालकर विस्तर से उतरने की कोशिश करने लगी।

स्वदेश उस दिन उसे पहचान न सका। पूछा, 'तुम कौन हो ? रज़ाई में क्या कर रही थीं ? तुम कौन हो ?

जयन्ती का मुँह पीला पड़ गया ; वह एक ओर हो खड़ी हो गयी।

'तुम वोल क्यों नहीं रही हो ? तुम किस घर की लड़की हो ?'

जयन्ती का सारा बदन उस समय पहले की तरह जाड़े की दोपहरी में भी पसीने से नहा गया। पकड़े जाने पर वह उस समय वहाँ खड़े-खड़े ही थर-थर काँपने लगी।

स्वदेश ने पूछा, 'तुम क्या मुक्ति की सहेली हो ?'

जयन्ती ने कुछ जवाव देने की कोशिश की, लेकिन जैसे किसी ने उसकी ज़बान पकड़कर उसे विलकुल गूँगा वना दिया हो।

और ठीक उसी वक़्त मुक्ति उसी कमरे में जयन्ती को ढूँढ़ती हुई आ पहुँची।

वोली, 'अरे वाप, तुम यहाँ हो ? मैंने ठीक समझा।'

कहकर उसे जाकर पकड़ लिया। लेकिन पकड़कर उसे ताज्जुव में आ गयी। वोली, 'अरे राम, तू इतना काँप क्यों रही है, रे ? तुझे क्या हुआ ? तुझे वुख़ार है क्या रे, तेरा बदन इतना गरम क्यों है ?'

जयन्ती ने उस वात का कोई जवाव न दिया। मुक्ति ने बड़े भाई की ओर देखकर कहा, 'तुमने शायद जयन्ती से कुछ कहा है क्या ?'

स्वदेश वोला, 'मैं क्यों कुछ कहूँगा ? मुझे तो कुछ भी नहीं पता, मैं आकर विस्तर पर लेटने जा रहा था कि देखा रज़ाई के नीचे कुछ हिल रहा है।'

मुक्ति ने जयन्ती की ओर देखकर कहा, 'तू दादा की रज़ाई के अन्दर छिपी थी ? तूने सोचा होगा कि हम शायद तुझे पकड़ न पायेंगे ?'

कहते-कहते जयन्ती को लेकर कमरे के वाहर चली गयी। स्वदेश ने मुक्ति से पूछा, 'वह कौन है, मुक्ति ? किसके घर की लड़की है ?'

मुक्ति वोली, 'अरे राम, उसे नहीं पहचानते ? वही तो जयन्ती है। तुमसे ही तो उसकी शादी होगी।'

इस तरह सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ। इसी तरह आने-जाने में जयन्ती

की छुटपन से धारणा वन गयी थी कि उनके सम्वन्ध की परिणति शादी में ही होगी।

दूसरी वार जव जयन्ती वलरामपुर गयी तो जैसे सव उदास-सा हो। घर में वह चहल-पहल और वह माधुर्य न था। तव उस घर की व्यवस्था में वह आडम्वर और प्राचुर्य का वह वाहुल्य नहीं था। घर के अन्दर मानो वैधव्य का गाम्भीर्य सारी व्यवस्था और आवश्यकताओं पर छाया हुआ था। मुक्ति की माँ तव अचानक मर चुकी थीं।

वावा ने काका वावू को सान्त्वना दी। वोले, 'मनुष्य के जीवन में शोक और पीड़ा तो रहेंगे ही। वही शोक और पीड़ा, सुख-दुख, आनन्द-विषाद—सव लेकर ही तो हमारा जीवन है।'

काका वावू पहले तो थोड़ा उदास थे। लेकिन उसके वाद ही फिर अपने को संभाल लिया। फिर वह अपने काम-धाम में व्यस्त हो गये थे। अख़वार के पन्नों में मुक्ति की माँ के निधन का सचित्र समाचार छपा था। इतने वड़े आदमी की पत्नी के मरने पर ख़वर तो छपेगी ही। मुक्ति भी शुरू-शुरू में थोड़ा रोती थी। उसके वाद फिर सव सह्य हो गया था। मुक्ति के वड़े भाई उस समय कलकत्ता में पढ़ाई-लिखाई करते थे, और मुक्ति यहाँ अकेली रहती।

जयन्ती ने एक दिन पूछा था, 'अकेले-अकेले इतने वड़े घर में तुम्हें वुरा नहीं लगता ?'

मुक्ति ने कहा था, 'वुरा तो लगेगा ही, लेकिन करूँ क्या ?'

'तेरी वह सहेली कहाँ गयी, रे ? वह अव नहीं आती ?'

'संध्या की वात कह रही है ?'

'हाँ, उसकी शायद शादी हो गयी है ?'

'नहीं रे, संध्या मर गयी !'

जयन्ती वात सुनकर चौंक पड़ी थी। पूछा था, 'मर गयी ? कैसे मर गयी ?'

'आग में जलकर।'

'आग में जलकर माने ? आग में जलकर आत्महत्या कर ली क्या ?'

मुक्ति ने वताया, 'नहीं भाई, आत्महत्या नहीं की। उनका कच्चा घर था, और टीन की छत थी, घर में आग लग जाने से संध्या के माँ-वाप-दादा—सभी एक साथ जल मरे।'

'आग कैसे लगी ?'

मुक्ति ने वताया था, 'क्या पता ? वावा थे, इसलिए अन्त में पुलिस ने आकर जाँच की, वावा ने संध्या आदि के लिए वहुत कष्ट उठाया। रात

के दो वजे वावा खुद पश्चिम-पाड़ा गये थे। डॉक्टर-ऑक्टर सव वुलाकर ले गये थे। लेकिन तव तक तो कुछ भी करने को शेष नहीं था।'

उस घटना के इतने दिनों वाद वह वात जयन्ती को अब याद आयी। खाने-पीने के वाद वावा कोर्ट चले गये थे। जव तक माँ जीवित थीं उतने दिनों उसे ऐसा अकेला न लगता था। लेकिन उसके वाद से ही वह विलकुल अकेली पड़ गयी। लेटकर, वैठकर, कितावें पढ़कर, सोकर, रेडियो सुनकर दिन मानो वीतना न चाहता हो, कव परीक्षा का परिणाम निकलेगा, कव फिर घर से निकल सकेगी? कव फिर पिता के साथ वलरामपुर जा सकेगी, कव फिर वहाँ जाकर मुक्ति के साथ गप्पें हाँक सकेगी—इसी आशा में दिन गिनती।

सहसा पिता की वातें फिर उसके कान में गूँजने लगीं, 'उसके सातवें वृहस्पति हैं, इसके भी सातवें चन्द्रमा हैं, यह विलकुल राजयोटक है—इनका व्याह असफल नहीं हो सकता है; व्याह होने पर इन्हें वहुत सुख मिलेगा।'

सर्वजय वनर्जी के कलकत्ता के मकान के पास ही कलकत्ता के मिर्जापुर स्ट्रीट के मेस का जो सम्वन्ध धीरे-धीरे पैदा हो गया था उसमें शायद कोई धोखा न था। जिस सम्वन्ध में धोखा रहता है उसमें कुछ कमी रहती ही है। वह न तो स्वदेश को पता था, न जयन्ती को। वह धोखा उस समय भी इस कलकत्ता शहर के एक और भवन में सशरीर विराज रहा था, उसकी क्या कोई कल्पना कर सकेगा?

सर्वजय वनर्जी केवल धनी ही नहीं, चतुर भी थे। जो वकील जितना चतुर होगा वकील के रूप में उतना सफल भी। उन्होंने शुरू से हरिसाधन वावू से कह रखा था, 'भाई, तुम्हारा वेटा इस लाइन का कुछ टैक्ट नहीं जानता। इस लाइन में शान-शौकत न दिखाने से चमक न सकेगा।'

हरिसाधन ने कहा था, 'नहीं तो लड़के को तुम्हारे पास क्यों छोड़ा? तुम उसे सिखा-पढ़ा लो।'

'लेकिन वह क़ायदे से रोज़ आता जो नहीं।'

'तुम उसकी गरदन पकड़कर काम करा लोगे। उसके कन्धों पर काम का वोझ लाद दो। ज़िन्दगी में अपने हाथों कभी कोई काम नहीं किया, वहुत दिनों तक काम न करने से थोड़ा आराम-पसन्द हो गया है, और क्या?'

सर्वजय वनर्जी ने कहा था, 'देखें, अव से मैं यही करूँगा।'

उस दिन सहसा स्वदेश को देखकर सर्वजय वनर्जी अवाक हो गये। बोले, 'यह क्या, इतने दिन आये क्यों नहीं? कहाँ गये थे?'

'वलरामपुर।'

सर्वजय वनर्जी वोले, 'तुम्हारे वावा ने तुम पर काम का वोझ डाल देने को कहा है, यह मालूम है न ? अव से तुमको वहुत काम करना होगा। मैं कुछ रू-रियायत नहीं करूँगा, यह मैं कहे देता हूँ।'

स्वदेश ने केवल यही कहा, 'वताइये, क्या करना होगा ?'

'आज मेरे साथ तुमको कोर्ट चलना होगा। वहाँ से मैं तुम्हें जहाँ-जहाँ जाने को कहूँगा वहाँ जाओगे। समझे ?'

स्वदेश ने सिर हिलाकर हामी भरी।

'सुना है कि तुम मेस में लेटे-लेटे दिन-भर कितावें पढ़ते रहते हो। इतना सारा क्या पढ़ते हो ? क़ानून की कितावें ?'

स्वदेश जवाव देने में पहले संकोच कर रहा था। उसके वाद वोला, 'नहीं।'

'तो कौन-सी कितावें ?'

'हिस्ट्री, सोशल साइंस—यही सव।'

सर्वजय वनर्जी वोले, 'तो हिस्ट्री और सोशल साइंस जानने के लिए कितावें पढ़ने की क्या ज़रूरत है ? हमारे कोर्ट में घूमने से ही तो उन कितावों के पढ़ने का काम हो जाता है। उसके लिए फिर पैसा ख़र्च कर कितावें पढ़ने की क्या ज़रूरत है ? तुमको पता है, हमारे कलकत्ता शहर में सवकी आँखों की ओट जो तमाम हिस्ट्री तैयार होती रहती है वह सव मेरी पकड़ में है। यहाँ आदमी रुपयों के लिए कितने नीच, गये-गुज़रे काम कर सकता है, वह जानने को हमें कुछ वाक़ी नहीं है। तुम भी अगर जानना चाहते हो तो सव जान सकोगे। वेटे ने रुपयों के लिए अपनी ही माँ का ख़ून किया, यह घटना भी हमें मालूम है। तुम्हें पता है, यहाँ लड़कियों का पूँजी की तरह निवेश करना एक पेशा है !'

'लड़कियों का पूँजी-सा लगाना ! इसके मतलव ?'

'इसके मतलव लड़कियों को किराये पर चलाकर कमाना। वह तो हरदम चलता है।'

स्वदेश वोला, 'हाँ, गिवन की लिखी रोम की हिस्ट्री में पढ़ा है। इसी से रोम-साम्राज्य का पतन हुआ। वह क्या कलकत्ता में अभी भी होता है ?'

सर्वजय वनर्जी वोले, 'न होता तो हमारा रोज़गार कैसे चलता ?'

स्वदेश वोला, 'तव फिर तो रोम लोगों की तरह हमारा भी सर्वनाश होगा। हमारा कलकत्ता भी तो तव नष्ट हो जायेगा।'

सर्वजय वनर्जी वोले, 'वह हो। देश नष्ट हो। उससे तुम्हें क्या, और

मुझे क्या ! उससे हमारा ही तो फ़ायदा है; उससे हमें ही तो रुपये मिलेंगे। उन्हीं रुपयों से हम गाड़ी लेंगे, मकान बनायेंगे, आराम से खाएँ-पिएँगे, मौज करेंगे। मेरे मरने के बाद हमारा देश चूल्हे में जाये या जहन्नुम में, उसे देखने तो फिर हम आयेंगे नहीं। तब जो होगा सो होगा।'

स्वदेश को ये सब बातें सुनने में बहुत बुरी लगतीं। जिसके पास काम सीखा वही अगर इस तरह की बातें करे तो दूसरे लोग तो क्या कुछ न कहेंगे ? पहले-पहल जब वह कलकत्ता आया था तो ऐसा नहीं था। मानो दिन-पर-दिन अवनति और सर्वनाश की ओर क़दम बढ़ते जा रहे हैं। सर्वजय बनर्जी के दफ़्तर में जो लोग आते हैं उनको देखकर, उनकी बातें सुनकर स्वदेश पहले-पहल ताज्जुब में पड़ जाता था। बड़ी-बड़ी गाड़ियों में वे लोग आते, वकीलों के पीछे बड़ी-बड़ी रक़में ख़र्च करते। लेकिन उनका चाल-चलन आदि सब कुछ पशुओं-सा होता।

'अरे, उन सज्जन को तुमने देखा ? जो अभी-अभी चले गये ?'

स्वदेश कहता, 'हाँ, देखा।'

'हाँ, इन्हें पहचान रखो। तुम्हारे काम आयेंगे। इनकी तरह के आदमी कलकत्ता शहर में हैं, इसीलिए हम वकील लोग अभी भी कुछ खाते-पीते हैं, ज़िन्दा हैं। बड़े आराम से ज़िन्दा हैं।'

'यह क्या करते हैं ?'

'बाद में सब जान लोगे। जो केस अब हमारा है वही इनका केस है। यह उसी केस के बेनामी मुद्दई हैं।'

स्वदेश ने पूछा, 'इनका नाम क्या है ?'

'यह आदमी अतहर बाई का आदमी है, जिसके केस की पैरवी आज-कल हम कर रहे हैं।'

अन्त तक सब इन्तज़ाम पक्का हो गया। इस शादी में लेन-देन का सवाल न उठेगा। घनिष्ठ रूप से परिचित दोनों परिवारों में वैवाहिक सम्बन्ध हो रहा है। कहने को अपने ही हैं। लड़का या लड़की की माँ जीवित रहतीं तो कोई बात ही न थी। वे यह शादी देख जातीं ! लेकिन उससे क्या जन्म-

मृत्यु-विवाह जैसे ज़रूरी काम रुके रहते हैं ? इस दुनिया के इतिहास की तरह ही वह इतिहास बहुत निष्ठुर, निर्मम और निरपेक्ष है। जो पृथ्वी किसी दिन किसी को राजसिंहासन पर बैठाकर जयमाला पहना देती है, वही इतिहास किसी दिन उसे फिर राह की धूल में फेंककर चूर-चूर, पीसकर मार डालता है। उसके मुँह पर थूककर उसे आनन्द आता है। जिस मुसोलिनी को किसी दिन सिर पर उठाकर इतिहास खुशी से नाच उठा था, उसी मुसोलिनी के मुँह पर थूकते हुए फिर एक दिन इतिहास को ज़रा भी झिझक न हुई। वही जूलियस सीज़र, वही चंगेज़ ख़ाँ, वही हिटलर, वही मुसोलिनी, वही नेपोलियन—आज कोई नहीं है। लेकिन किसी के लिए दुनिया क्या रुक गयी है ? और कितने ही जूलियस सीज़र, कितने ही चंगेज़ खाँ, कितने हिटलर, कितने मुसोलिनी, कितने नेपोलियन —नये-नये नाम लेकर फिर दुनिया में जन्म लेते हैं—उनका हिसाब किसके पास है ? ये बार-बार पैदा होंगे, फिर भी दुनिया के जन्म, मृत्यु, विवाह कोई भी उनके लिए रुके नहीं रहेंगे। जो जैसा चल रहा है वैसा ही बेरोक-टोक चलता रहेगा।

अगहन के महीने में एक शुभ दिन को विवाह है। दिखाई हो गयी है। सभी ने मुँह मीठा कर विदा ली। क़रीब-क़रीब पूरे बलरामपुर के गण्यमान लोगों को निमन्त्रण दिया गया था। वे लोग वर-पक्ष को धन्य-धन्य कहते हुए विदा हुए। बोले, 'भाग्यवान का बोझ भगवान उठाता है।'

स्वदेश पिता के कमरे में आकर चुपचाप खड़ा हो गया।

हरिसाधन बाबू को पता चला। पता लगते ही सिर उठाया। बोले, 'तुमको मुझसे कुछ कहना है ?'

स्वदेश बोला, 'मैं एक बार कलकत्ता जाऊँगा।'

'कलकत्ता ? क्यों ? इधर तुम्हारी शादी का सब ठीक-ठाक हो रहा है और इसी वक़्त तुम कलकत्ता जाओगे ?'

स्वदेश बोला, 'अभी भी तो तीनेक महीने की देरी है। उसके पहले ही मैं बलरामपुर लौट आऊँगा।'

'लेकिन कलकत्ता में तुम क्या करने जा रहे हो ?'

स्वदेश बोला, 'सर्वजय बाबू का कुछ ज़रूरी काम पड़ा है। उस काम को निबटा आऊँगा।'

'सर्वजय का क्या काम है ? काम करके तो तुम एकदम आकाश फाड़े डाल रहे हो ! सोचते हो कि मैंने सर्वजय से कुछ सुना नहीं ?'

स्वदेश बोला,'आने के पहले वायदा किया था कि लौट आऊँगा, इसी-

लिए जा रहा हूँ।'

'क्यों, तुम्हारे सिवा क्या सर्वजय के पास आदमी नहीं हैं? मैं, न हो तो, यहाँ से एक टेलीफ़ोन किये दे रहा हूँ। तब तो हो जायेगा? अब दिखाई हो गयी है; इस वक़्त कुछ दिनों के लिए कलकत्ता गये बिना क्या तुम्हारा ज़्यादा नुक़सान हो जायेगा?'

उसके बाद ज़रा रुककर बोले, 'और वह पागल? पागल अभी भी क्या तुम्हारे मेस में है?'

स्वदेश समझ न पाया। पूछा, 'पागल? कौन पागल?'

'अरे, पागल को नहीं जानते? वही जो सिर्फ़ 'ख़बरदार, ख़बरदार' कहकर चिल्लाता रहता है। यहाँ वह एक बार मिलता तो उसे ख़बरदार करने का मज़ा खूब चखा देता! हटाओ, जो हो गया सो हो गया। अब ब्याह कर रहे हो, अब फिर तुम उस मेस में न रह पाओगे। वहाँ का सब दे-दिलाकर, सूटकेस, बिस्तर वग़ैरह उठाकर तुम यहाँ चले आओगे। जाओ।'

स्वदेश फिर वहाँ न रुका। सीधे कलकत्ता चला आया। ट्रेन में आते-आते भी उसे पिता की बातें याद आ रही थीं। कलकत्ता का सब देना-दिलाना ख़त्म कर उसे इसी बलरामपुर में फिर लौट आना होगा। शायद अन्त तक पिता की ज़मीन-जायदाद, मामले-मुक़दमे अब से उसी को देखने पड़ेंगे। मामले-मुक़दमे की देख-भाल करते ही उसकी ज़िन्दगी बीतेगी। कहाँ रह गयी उसकी ध्यान-ज्ञान की दुनिया और कहाँ रहा वह! उसके लिए रह गयी बस कोर्ट और कचहरी, और जज, पेशकार और मुहर्रिर!

शायद उसके भाग्य-विधाता का यही निर्देश था। यही उसकी विधि-लिपि थी। उसके सीनियर सर्वजय बनर्जी ने उसे बहुत समझाया था। कहा था, 'ब्याह किये बिना आदमी पूरा नहीं होता। बताओ तो, दुनिया में किसने शादी नहीं की? तुम्हारे पिता ने शादी नहीं की। मैंने शादी नहीं की? तुम्हारे पिता ने जो कहा है, मैं भी वही एक ही बात कहता हूँ। ब्याह न करने के माने तो जीवन को अस्वीकार करना है, जीवन से भागना है। इस पृथ्वी पर अगर जन्म लिया है तो भागकर कहाँ जियोगे? मैंने अपने ऐसे-ऐसे मुवक्किलों को देखा है जिन्होंने ब्याह नहीं किया, लेकिन उन्होंने बाहर घर बसाया। क्या वह अच्छा है?'

सर्वजय बनर्जी के पास बातें करने का वक़्त ज़्यादा नहीं रहता था। सवेरे सात बजे से रात के दस बजे तक उनके चेम्बर में मुवक्किलों की भीड़ रहती। उसके बाद बीच में दोपहर को कोर्ट के अन्दर मानो तूफ़ान चलता रहता। उस समय वक़्त कैसे बीत जाता, किसी को पता भी न

चलता। आसामी, फ़रियादी, वकील, एडवोकेट, मुहर्रिर जैसे रुपयों के लिए दीवाने-से भागते रहते।

उस दिन वलरामपुर से कलकत्ता उतरते ही सर्वजय वनर्जी के चेम्वर में वह जा पहुँचा। उसे देखते ही सर्वजय वावू वोले, 'आ गये? अच्छा ही हुआ। तुम्हारी शादी की रोक देखी। मैं उसी रोज़ वलरामपुर से चला आया था। तुम्हारे वावा से मैं तुमको भेजने को कह आया था।'

'हाँ, अभी भी तो तीन महीने का समय है।'

'देखो, तुमने जो अपने वावा की वात मान ली उससे मैं खुश हूँ। अव तुम एक काम कर सकते हो?'

'कहिये?'

सर्वजय वनर्जी ने एक चिट्ठी आगे कर कहा, 'मेरा मुंशी आज नहीं आया है, यह चिट्ठी सदर स्ट्रीट की अतहर वाई के घर तुम ज़रा पहुँचा दो। यह देखो, ऊपर पता लिखा है। कह देना, वुधवार को उसके मुक़दमे की तारीख़ पड़ी है। तो अतहर वाई को तो तुम जानते हो? जानते हो न?'

स्वदेश वोला, 'न, मैंने उसे कभी नहीं देखा है, आपसे सिर्फ़ नाम ही सुना है।'

सर्वजय वावू वोले, 'वड़ी अच्छी औरत है वह। लेकिन कुछ लोगों ने उस पर मुक़दमा कर दिया है कि वह लड़कियों को पालती है; पालकर उन्हें किराये पर चलाकर पैसा कमाती है।'

स्वदेश वोला, 'हाँ, हाँ, याद आया।'

'तो जाओ। अभी जाओ, वह शायद घर से निकल जा सकती है।'

स्वदेश वहाँ से ही सीधा आ रहा था। वस से उतरकर पता मिलाकर देखा। वारह वटा एक नम्वर सदर स्ट्रीट के सामने खड़े हो सिर उठाने पर दिखायी पड़ता था। मकान ज्यादा वड़ा नहीं था। सामने के दरवाज़े पर दरवान-अरवान कोई न था। आसपास के घरों की भी वही हालत थी। किसी को न देखकर स्वदेश अन्दर घुसा। सामने ही ऊपर जाने के लिए ज़ीना था। उसी ज़ीने से ऊपर जाने के लिए कोई और भी आगे आया। वोला, 'कौन? आप कौन हैं? किसकी तलाश है?'

स्वदेश ने मुँह उठाकर देखते ही समझा—अतहर वाई की शायद लड़की-उड़की कोई होगी।

स्वदेश ने उससे पूछा, 'अतहर वाई हैं?'

लड़की ने कोई जवाव न दिया।

स्वदेश ने फिर कहा, 'जाकर कहो, मैं सर्वजय वनर्जी वकील के घर

से आ रहा हूँ।'

कहकर चिट्ठी उसकी ओर बढ़ा दी।

लड़की चिट्ठी हाथ में लेकर सहसा स्वदेश को अच्छी तरह देखकर एक भयानक चीख मारकर दरवाज़े के पल्ले धड़ाम से बन्द कर ग़ायब हो गयी।

इस घटना में एक मिनट भी नहीं लगा। स्वदेश कुछ समझ न सका कि लड़की उसे देखकर डर क्यों गयी! उसी बन्द दरवाज़े के बाहर खड़े-खड़े वह सोचने लगा। लड़की को ऐसी भयानक चीख मारने का कारण क्या हुआ? उसने क्या क़ुसूर किया है?

लेकिन दूसरे ही क्षण लगा कि जैसे वह लड़की को पहचानता हो। एक क्षीण सूत्र पकड़ कर जैसे कई बरस पहले का एक दिन लौट आया। ठीक इसी तरह का चेहरा, इसी तरह की शकल थी। बीच में सात-आठ बरसों के समय का परदा उठाकर इतने दिनों बाद फिर उसकी आँखों के आगे सब-कुछ साफ़ हो गया। लगा कि यह तो वही लड़की है! वही संध्या! जिसकी लाश पश्चिम-पाड़ा के कानाई घोष के जले मकान में नहीं मिली थी। सचमुच ही इस लड़की के गले के पास आग में जलने का एक निशान था। तो क्या उसी संध्या ने जलते घर से भागकर यहाँ इस अतहर बाई के पास आश्रय लिया है? तो इसी के लिए क्या मुक़दमा चल रहा है? तो क्या यही वह संध्या है? नहीं तो उसको देखकर इस तरह डर से ऐसी चीख मारकर उसने दरवाज़ा क्यों बन्द कर दिया?

स्वदेश के मन में आया कि वह दरवाज़े की कुंडी फिर खटखटाये। फिर एक बार लड़की को अच्छी तरह देखे। लेकिन अगर वह फिर दरवाज़ा न खोले? अब वह जाकर सर्वजय बाबू से क्या कहेगा? पर काम की चिट्ठी तो दे ही दी गयी है। तब फिर उसकी किस बात की ज़िम्मेदारी है? चिट्ठी देने ही तो इस सदर स्ट्रीट तक आया था।

स्वदेश फिर धीरे-धीरे कुंडी खटखटाने लगा।

लेकिन इस बार भी किसी ने जवाब न दिया। स्वदेश ने फिर एक बार कुंडी खटखटायी, लेकिन फिर भी किसी ने जवाब देने की उत्सुकता नहीं दिखायी।

स्वदेश को तब और भी शक होने लगा। तो लगता है कि संध्या ने उसे पहचान लिया है। पहचानकर ही दरवाज़ा नहीं खोल रही है। हज़ार बार कुंडी खटखटाने पर भी शायद कोई दरवाज़ा नहीं खोलेगा।

तब वह धीरे-धीरे उस ज़ीने से फिर सड़क पर उतर आया। सड़क पर आकर भी शक न मिटा। यह लड़की अगर संध्या न हो तो? यह भी तो हो सकता है कि यह लड़की संध्या न हो। सात-आठ बरस पहले की घटना

है। इतने दिनों के वाद देखना हुआ; शायद उसने खुद ही ग़लती की हो। वही होगा। तव फिर वह इतना क्यों सोच रहा है?

स्वदेश फिर वहाँ न रुका। सीधे अपने मिर्ज़ापुर स्ट्रीट की ओर मुँह कर चलने लगा।

लेकिन वाहर का कोई भी दृश्य उसका ध्यान न वँटा सका। वारह वटा एक सदर स्ट्रीट की उस लड़की की वात ही उसके सारे मन को खींचकर उसे वेवस करने लगी।

अतहर वाई का असली नाम अतहर वाई न था, लेकिन कलकत्ता के इस मुहल्ले में रसिक लोगों में सव अतहर वाई नाम से ही उसे जानते थे। अतहर वाई के नाम की वात जानते थे; अतहर वाई के गाने की शोहरत से परिचित थे। वे जानते थे कि अतहर वाई के घर के आगे वड़ी-वड़ी गाड़ियाँ आकर खड़ी होती हैं। मकान के अन्दर गाने की महफ़िल जमती है। गाने के साथ डुग्गी, तवला और सारंगी, हारमोनियम के सुर रास्ते पर फैल जाते। सो वह भी कभी-कभी।

दुनिया में तमाम लोग तमाम तरह से सोचकर, तरह-तरह की जीविका कमाते हैं। अतहर वाई भी वैसी ही एक है। और उसके सिवा कलकत्ता में कौन किसकी जीविका के पीछे अपना दिमाग़ परेशन करता है? किसके पास इतना वक़्त है? किसी को वक़्त नहीं है। जो काम के आदमी हैं उन्हें तो वक़्त नहीं ही है। लेकिन जिन्हें हम वेकार कहते हैं, उनको ही क्या वक़्त है?

अतहर वाई को भी वक़्त नहीं था। अतहर वाई मौक़ा पाकर गाने जाती। इधर-उधर से वुलावा आता। आज वनारस, कल शायद फिर लखनऊ। फिर कितने ही गाने के दीवाने रसिक पैसे वाले लोग दिल्ली से, मद्रास से या वम्वई से कलकत्ता भी आते।

वहाँ से लौटने का भी, दिन-पल के समय का कोई ठिकाना नहीं था। किसी-किसी दिन तो रात के डेढ़ वजे कोई रईस आदमी विना पहले ख़वर किये आ पहुँचता।

आकर कहता, 'बाईजी साहेबा, आपका गाना सुनने आया हूँ।'

इतनी रात को तबलची, सारंगिया, हारमोनियम वाले को बुला भेजना पड़ता। रुपया मिले तो गाने-बजाने वाले को आपत्ति क्यों होगी?

लेकिन तभी एक गड़बड़ हो गयी। एक दिन कोई सज्जन आये। जी था गाना सुनने का। सज्जन अधेड़ उम्र के थे। बोले, 'गाना सुनने आया हूँ।'

अतहर बाई की उम्र ज्यादा हो गयी थी। और उम्र होने के साथ-ही-साथ, शरीर की गठन ढीली हो जाने पर भी उसके सुर में गठन बरक़रार थी।

अहतर बाई ने गाना सुनाया। सज्जन ने तारीफ़ की। उन्होंने उचित रुपये देकर अहतर बाई की प्राप्य मर्यादा भी दी।

इस प्रकार एक के बाद एक दिन। देखकर लगा कि सज्जन को गाने की समझ है। लेकिन असली मतलब कुछ दिनों बाद ही समझ में आया।

पूछा, 'यह लड़की कौन है, बाईजी?'

पहले दिन से ही सज्जन ने लक्ष्य किया था। सभी ओर से ग़ौर किया था। लड़की बहुत सुन्दर थी। जब गाना गाती तो माँ के पास चुपचाप बैठी रहती। दत्त-चित्त होकर माँ का गाना सुनती; किसी भी दिन कोई बात तक न करती।

एक दिन वह सज्जन कुतूहल न दबा सके।

पूछा, 'आपकी बेटी के गले पर आग से जलन का दाग़ कैसा है, बाईजी?'

अतहर बाई बोली, 'यह मेरी बेटी नहीं है, बाबूजी; यह मेरी अपनी कोई नहीं है।'

वह सज्जन बोले, 'अपनी कोई नहीं? फिर आपके पास क्यों रहती है?'

बाईजी बोली, 'मैंने उसे रास्ते पर पाया था। मैं मुर्शिदाबाद से गाकर लौट रही थी। उस वक़्त आधी रात थी। अचानक मेरी गाड़ी के आगे लड़की गिर पड़ी। लड़की को देखकर ड्राइवर ने मेरी गाड़ी रोक दी। उसके बाद लड़की से पूछा कि उसका नाम क्या है, कहाँ रहती है—तमाम बातें पूछीं। लेकिन किसी का भी जवाब न मिला। समझी कि लड़की गूँगी है।

'उसके बाद?'

अतहर बाई को सब बातें याद हैं।

अँधेरी रात। मुर्शिदावाद से नेशनल हाई-वे पर गाड़ी सन-सन करती चली आ रही थी। इस तरह जाना-आना अतहर वाई के लिए नयी वात नहीं थी। जो लोग अतहर बाई को गाने के लिए ले जाते, वे उसे पेशगी रुपये दे जाते। अतहर वाई की निश्चित गाड़ी थी। किराया पाने पर वे वाईजी को दूर-दूर जगहों पर ले जाते। साथ में रहते तवलची, सारंगी वाला और दूसरे कुछ लोग। उस दिन गाना समाप्त होने में देर हो गयी थी। जब दल-वल लेकर अतहर वाई लौट रही थी तो अचानक गाड़ी की हेड-लाइट की रोशनी में दिखायी पड़ा कि एक लड़की वही रास्ता पकड़े, हाँफती हुई भागी जा रही है।

लेकिन गाड़ी की तेज़ी से लड़की कैसे भाग सकती?'

फिर लड़की कोई चारा न देख ठिठककर खड़ी हो गयी। उस समय गाड़ी विलकुल लड़की के सामने पहुँचकर रुक गयी थी।

गाड़ी के ड्राइवर ने गाड़ी से उतरकर लड़की को पकड़ लिया।

गाड़ी के अन्दर से अतहर बाई ने पूछा, 'ठगनलाल, यह कौन है?'

हेड-लाइट के प्रकाश में लड़की का चेहरा साफ़ दिखायी दिया। गले के पास का हिस्सा आग में जला हुआ था। साड़ी का भी कुछ हिस्सा जला था। देखने पर समझ में आया कि आग से बचकर ही वह भागी जा रही थी।

ड्राइवर ठगनलाल जब लड़की को पकड़कर गाड़ी के पास लाया तो अतहर वाई ने पूछा, 'तुझे क्या हुआ है, वेटी? तुम्हारी साड़ी-आड़ी कैसे जल गयी?'

पीछा किये जाते पक्षी की तरह लड़की उस समय थर-थर काँप रही थी। लड़की अतहर बाई की एक बात का भी जवाव न दे सकी। अतहर वाई ने प्यार से उसे अपनी गाड़ी में चढ़ाकर ठगनलाल से कहा, 'चलो ठगनलाल, जल्दी घर चलो।'

लड़की का इलाज झटपट करना होगा। अँधेरे में भी अतहर वाई ने लड़की के चेहरे को देखकर समझ लिया कि लड़की वंगाली है। अतहर बाई उससे वार-वार पूछने लगी, 'वताओ तो, क्या हुआ वेटी? मुझसे सब साफ़-साफ़ वताओ। तुम्हें कोई डर नहीं है। मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगी। किसी को कुछ न पता चलेगा। वताओ, वताओ, वात वताओ। मेरे सवालों का जवाव दो।'

लड़की ने एक वार वोलने की कोशिश भी की, लेकिन वोल न सकी।

जब अतहर वाई कलकत्ता के सदर स्ट्रीट के मकान में आ पहुँची तो रात आख़िरी दम पर थी। उस समय बिजली की रोशनी में लड़की के

चेहरे की ओर और भी अच्छी तरह देखा। देखकर लगा कि लड़की को किसी ने जैसे आग में जलाकर मार डालना चाहा हो, लेकिन भाग्य के जोर से वह भागकर बच गयी।

अतहर बाई ने उतनी रात में ही डॉक्टर को बुला भेजा।

डॉक्टर भी बार-बार लड़की से पूछने लगा, 'तुम्हें क्या हुआ है? किसी ने तुम्हें आग में जलाकर मारना चाहा था?'

उस दिन लड़की किसी भी बात का जवाब न दे सकी।

जब किसी को किसी भी बात का कोई जवाब न मिला तब सिर्फ़ जले घाव की एक दवा लिखकर डॉक्टर चले गये।

जाते वक़्त कह गये, 'इसके इलाज की जरूरत है। लगता है, इसे बड़ा भारी शॉक लगा है। बहुत डर जाने से किसी-किसी को ऐसा हो जाता है। तब मुँह से कोई बात ही नहीं निकलती।'

अतहर बाई ने पूछा, 'किस तरह से वह ठीक होगा? माने इसके मुँह से बोली कैसी फूटेगी?'

डॉक्टर कह गये, 'मानसिक रोग के डॉक्टर से इलाज कराने पर ठीक हो सकता है। लेकिन सबसे अच्छी तरकीब है प्यार। कोई इसे अगर अपनी बेटी की तरह प्यार करे तो शायद किसी दिन यह मुँह से बातें करने लगे।'

यह कहकर डॉक्टर चले गये।

प्यार इसी तरह की एक दवा है जिससे शायद जंगल के बाघ को भी पालतू बनाया जा सकता है। लेकिन दुनिया में उस तरह से कितने लोग प्यार कर सकते हैं?

अतहर बाई को अपने ही जीवन में क्या किसी का प्यार मिला था? कब एक दिन किस बाई के गर्भ से उसने इस धरती की मिट्टी का स्पर्श किया था, यह उसे भी नहीं मालूम था। उसके पिता कौन थे, उसे यह भी नहीं मालूम था। वह जानने की कोशिश भी नहीं करती थी। अपने दुर्भाग्य को भी गले के सुर से वह भुलाये रहने की बराबर कोशिश करती रहती। भूली रहती अपने जन्म का इतिहास। जवानी के पहले ख़तरनाक

दिनों में जिस महिला ने उसकी रक्षा की थी उसी ने उस्ताद रखकर उसे गाना सिखाया था। लेकिन वह पूरे हृदय से, पूरी लगन से हमेशा उस पर पहरा लगाये रहती थी। कहने को वही अतहर वाई की धर्म-माता थी।

उसकी उसी धर्म-माता ने सिखाया था, 'दुनिया में सब-कुछ झूठा है बेटी, असली चीज़ सुर है। सुर कभी इंसान को धोखा नहीं देता। सुर वेजान में जान भी डाल देता है। उस सुर से ही तू शादी कर। और किसी से तू शादी मत करना, वेटी। सुर ही भगवान है। सुर ही अल्लाह-ताला है।'

अतहर वाई सुर को ही भगवान मानकर अव तक पूजा करती आयी। अचानक कहीं से एक अज्ञात-कुलशील लड़की ने आकर उसके मन को दूसरी ओर फेर दिया। उस वक़्त उसको लेकर ही उसके दिन बीतने लगे। पहले सवेरे नींद से उठकर गाने का रियाज़ करती, उसके वाद से तमाम वक़्त लड़की को लेकर विताने लगी। अतहर वाई तव इतने तड़के लड़की को बग़ल में लिटाकर आप ही वातें करती। प्यार से उसके मन को जीतने की कोशिश करती रहती।

कहती, 'वात करो वेटी, वात करो।'

लेकिन लड़की सिर्फ़ अतहर वाई के मुँह की ओर ही देखती रहती। वोलने की कोशिश करने पर भी उसके मुँह से कोई वात न निकलती। लगता कि उसे सब सुनायी देता है। सब उसकी समझ में आता है। लेकिन हाथ हिलाने और होंठ हिलाने के सिवा शायद उसमें कुछ सामर्थ्य वाक़ी न थी।

उसी लड़की की उम्र जब बढ़ी तो मुश्किल हुई। उम्र जिस तरह किसी की रुकी नहीं रहती, लड़की की उम्र भी उसी तरह रुकी न रही। तभी अतहर वाई के सामने समस्या उठ खड़ी हुई। तव उसे घर पर अकेला छोड़कर बाहर कहीं जाना न होता। और गाने का मुजरा करने पर वाहर जाना ही पड़ेगा! तव लड़की को साथ ले जाना पड़ता। सभी को पता चल गया कि अतहर बाई की लड़की गूँगी है। गले पर जलने का एक दाग़ भी है।

कुछ लोग अतहर बाई से पूछते भी, 'इसके गले पर जलने का निशान कैसा है, वाईजी?'

अतहर वाई कहती, 'छुटपन में खेलते-खेलते आग से जल गयी थी।'

वे सहानुभूति दिखाते। कहते, 'आह...!'

'लेकिन वोल क्यों नहीं पाती?'

अतहर वाई को ये सव वातें अच्छी न लगतीं। बस ऊपर की ओर

उँगली उठाकर कहती, 'नसीव का खेल है वावूजी, नसीव का खेल...।'

लेकिन जो खोद-खोदकर पूछने वाले होते उनकी जिज्ञासा किसी तरह दूर न होना चाहती। वे कलकत्ता की अतहर बाई के घर आकर लड़की का रूप देखकर आँखें फेर न पाते। अतहर बाई के प्यार-दुलार में तव लड़की और भी खिल उठी थी। और भी सुन्दर हो गयी थी।

ऐसा ही एक आदमी था देवकान्त भद्र।

देवकान्त भद्र अकसर अतहर बाई का गाना सुनने आता। अच्छी रक़म भी ख़र्च करता। लेकिन उसका असली उद्देश्य दूसरा ही था। उद्देश्य था, अतहर वाई की पाली लड़की को देखना।

एक दिन देवकान्त भद्र ने कह ही डाला, 'दे दो न बाईजी, अपनी लड़की को।'

बात सुनकर अतहर बाई का कलेजा धक्-से हो गया।

बोली, 'उसे लेकर आप क्या करेंगे? वह तो गूँगी है।'

देवकान्त भद्र बोले, 'हो न गूँगी, मेरे लड़की नहीं है, इसीलिए मैं उसे अपनी लड़की की तरह पालूँगा। अपने पास रखकर अपनी वेटी की तरह बड़ा करूँगा।'

'उसके वाद? आप जब न रहेंगे तब?'

देवकान्त भद्र बोले, 'उससे बाद मैं उसके नाम से बहुत-सा रुपया वसीयत कर जाऊँगा। उसी रुपये के लालच में बहुत-से लोग उससे शादी करने को तत्पर रहेंगे। एक अच्छा-सा लड़का देखकर शादी कर देने से उसे फिर कोई दुख न रहेगा।'

बाबूजी की बातें सुनकर अतहर बाई को अजीब-सा डर लगा था। समझ गयी कि इतने दिन इतने रुपये ख़र्च कर गाना सुनने आना एक वहाना था। असल मतलब था लड़की को हड़पना।

उस दिन अतहर बाई ने उस बात का कोई जवाब न दिया।

लेकिन दो दिन बाद फिर वही एक अनुरोध हुआ।

और उससे भी जब कुछ नतीजा न निकला तो अन्तिम पत्र पुलिस से आया। अभियोग था कि अतहर बाई एक युवती को अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए पाल रही है जिससे कि बुढ़ापे में उसे रोजगार में लगाकर अपना पेट चला सके।

यह कलकत्ता बड़ा विचित्र शहर है।

इस कलकत्ता की जब सृष्टि हुई थी तो भारत-भाग्य-विधाता के मन में क्या था, कौन जाने ! शायद उनकी इच्छा हुई थी कि यहीं से किसी दिन चैतन्यदेव, परमहंसदेव, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ के समान लोग पैदा होकर पृथ्वी के सभी लोगों को शिक्षा देंगे, मोक्ष देंगे, और देंगे प्रकाश। ज्ञान का प्रकाश, त्याग का प्रकाश, भक्ति का प्रकाश। वह एक ऐसा प्रकाश है जो सामान्य मनुष्यों में नया जीवन फूंकेगा।

लेकिन बीसवीं शताब्दी के सप्तम चरण में आकर उसका सब-कुछ नष्ट हो गया। महापुरुषों के स्थान पर यहाँ जन्म लिया अमूल्य घोष, प्रसन्न सेन, हरिसाधन चट्टोपाध्याय, सर्वजय बनर्जी, देवकान्त भद्र जैसे लोगों ने। वे कहने लगे—हम ही इस युग के चैतन्यदेव, परमहंसदेव, स्वामी विवेकानन्द, और रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं। हम ही तुम्हें इस युग में दीक्षा देंगे, शान्ति देंगे, मोक्ष देंगे। हम ही इस युग के दशावतार हैं। हमारी भक्ति कर ही इस लोक और परलोक में जो कुछ काम्य है वह प्राप्त कर लोगे। तुम लोग हमारे फ़ण्ड में चन्दा दो, हमारी पार्टियों में शामिल हो जाओ। हमें चुनाव में जिता दो, हम तुम्हारी सब कामना पूरी कर देंगे—फ़्लैट चाहिए तो फ़्लैट मिलेगा ; टेलीफ़ोन चाहिए टेलीफ़ोन दिला देंगे ; गाड़ी चाहो तो गाड़ी भी दिला देंगे। और नौकरी ? वह तो हमारी मुट्ठी में है। कितने रुपये महीने की नौकरी चाहिए, बोलो ! एक हज़ार, दो हज़ार, तीन हज़ार रुपये की नौकरी ! हम तो सभी दे सकते हैं। चैतन्यदेव, परमहंसदेव, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जो न दे सके, हम, इस नयी बीसवीं सदी के सप्तम चरण के महापुरुष, वही सब-कुछ दिला देंगे। उसके बदले में तुम्हें एक काम करना होगा—हमें वोट देना होगा !

लेकिन एक बात है। हमारा बाहरी रूप ही देखो। भीतर देखने की कोशिश मत करना ! हम क्या खाते हैं, क्या करते हैं, भीतर-ही-भीतर क्या मतलब गाँठते हैं—उसके लिए दिमाग़ चक्कर में मत डालना, क्योंकि हम जीवन में मात्र एक नीति ही मानते हैं, और वह है राजनीति। याद रखो—राजनीति में नीति नाम की कोई चीज़ नहीं है। पिछले युग में जिस तरह धर्म था, वैसे ही इस युग में है राजनीति। इस राजनीति में सत्-असत्, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा नाम की कोई चीज नहीं है। राजनीति का एक मात्र धर्म कार्य-सिद्धि है। उस कार्य-सिद्धि के लिए हम जिस पथ का अवलम्बन करते हैं उसका अधिकतर समय तुमको मिथ्याचार लग सकता है। लेकिन हमनें कोश में उसका नया, बड़ा-सा नाम रखा है—'डिप्लोमेसी'। अर्थात कूटनीति। इस डिप्लोमेसी के अनुसार ही सारी

दुनिया चल रही है, और अगर हम डिप्लोमेसी न करें तो हम पिछड़ जायेंगे ।

स्वदेश ने कलकत्ता आकर जो कुछ देखा था उस सब में ही उसे 'डिप्लोमेसी' की गन्ध आती थी। जैसे उसके पिता हैं, उसके सीनियर वकील सर्वजय वनर्जी भी वहीं हैं। और सिर्फ़ पिता या चाचा ही क्यों, और सव भी तो इसी डिप्लोमेसी के शिकार हैं। विना पढ़े परीक्षा पास करना चाहते हो तो डिप्लोमेसी करो; भवसागर पार कर सकोगे। नौकरी में उन्नति चाहते हो तो काम न करके वड़े साहव की पत्नी को खुश रखो; उसी से ऑफ़िस में सबको लाँघकर प्रमोशन पा जाओगे।

अव उसकी शादी में तीन महीने वाक़ी हैं। लेकिन इन सामान्य तीन महीनों में ही उसके जीवन में ऐसा उलट-फेर हो जायेगा, यह किसे पता था ?

स्वदेश के कई दिन वड़ी छटपटाहट में कटे। कहीं पर एक अपराध-वोध उसे काँटे की तरह छेदने लगा। मन में यह उठने लगा कि वह फिर एक वार सदर स्ट्रीट जाकर उस लड़की से पूछ आये कि उसका असली नाम क्या है ? लेकिन उसे शरम आती। वह किसी से भी वात नहीं कर सकता। और-तो-और एककौड़ी दे-चौधरी, जिससे वह सारी वातें कहता, उससे भी यह वात छिपाकर मन-ही-मन घुटता रहता। और सवसे वड़ी वात कि जिसके अधीन वह क़ानून की प्रैक्टिस करता उससे भी वताते-वताते रुक जाता।

एककौड़ी ने एक बार पूछा, 'क्यों रे, ऐसा क्या दिन-रात सोचता रहता है ? शादी होगी, इसलिए मन ख़राव हो गया है ?'

स्वदेश कहता, 'नहीं।'

'तो ? ऐसा गम्भीर-गम्भीर क्यों वना रहता है ?'

स्वदेश कहता, 'गम्भीर कहाँ हूँ ?'

एककौड़ी कहता, 'गम्भीर नहीं तो क्या ? दिन-भर कहाँ-कहाँ घूमता है, देर से मेस लौटता है। सोचा है, मुझे कुछ पता नहीं ? दिन-भर क्या अपनी वीवी के वारे में सोचता रहता है ?'

स्वदेश कहता, 'धत्, वह वात तो मेरे मन में ही नहीं है।'

एककौड़ी कहता, 'लेकिन किसी-न-किसी दिन ब्याह तो तुझे करना ही होगा, पक्की सगाई के वाद तो तू शादी तोड़ नहीं सकता है। मेरी तरह तो तेरा मन कड़ा नहीं है। यह देख न, मुझे क्या कभी घर की वात सोचते देखा है ? मेरी तरह घर छोड़कर तू आवारा घूम सकेगा ? नहीं-नहीं करके भी अभी भी मेरे घर में जो है उससे मैं दो पीढ़ियों तक आराम

से ऐश के साथ ज़िन्दगी विता सकता हूँ। लेकिन नहीं।'

इसके जवाव में स्वदेश कुछ न कहता। सिर्फ़ कहता, 'सभी क्या सव-कुछ कर सकते हैं, एककौड़ी दादा ?'

एककौड़ी कहता, 'मेरी माँ ने मुझे कई वार बुलवा भेजा। मैं क्या एक वार भी घर गया ?'

स्वदेश इस पर वहस न करता। कहता, 'तुम मेरी हालत ठीक से न समझोगे, एककौड़ी-दा। तुम्हारे पिता और मेरे पिता में वहुत फ़र्क है।'

एककौड़ी कहता, 'वही अगर सोचता है तो शादी कर ले। शादी कर सौ में से नव्वे लोग जो कुछ करते हैं वही तू कर।'

'मैं अगर व्याह कर मेस छोड़ दूं तो तुम क्या करोगे ?'

एककौड़ी कहता, 'मेरी वात तुझे नहीं सोचना है। जिसके कोई नहीं रहता, उसकी ज़िन्दगी क्या नहीं वीतती है ? मेरी भी ज़िन्दगी वैसे ही कट जायेगी। दुनिया में जितने मेरी तरह के लोग हैं, मैं उनमें ही जाकर मिल जाऊँगा। चैतन्यदेव तो सव-कुछ रहते भी बेघर हो गये थे। दुनिया छोड़कर सड़क पर निकल पड़े थे। तव उनका खाना-पहनना कैसे चलता था ? असल में तेरा कोई आदर्श ही नहीं है, इसीलिए पिता की वात न मानने में इतना भय खाता है। आदर्श होने पर दुनिया में रुपयों-पैसों की ज़रूरत नहीं रहती। रुपया-पैसा न रहने पर भी खाना-पहनना जुट जाता है।'

इतनी वातों के वाद भी स्वदेश अपनी समस्या की वात मुँह खोलकर एककौड़ी-दा से नहीं कह पाता। और तो और, सर्वजय वावू से भी सामने होकर नहीं कह पाता।

दूसरे दिन ही सर्वजय वावू ने उससे पूछा था, 'वह चिट्ठी अतहर वाई को दे आये थे न ?'

स्वदेश ने कहा था, 'हाँ, दे आया था।'

'अतहर वाई के हाथमें दे आये थे, या और किसी के हाथों में ?'

'उनकी नौकरानी के हाथ में।'

सर्वजय वावू ने कहा था, 'उससे ही हो जायेगा। मकान खोजने में कुछ मुश्किल तो नहीं हुई थी ?'

स्वदेश ने कहा था, 'नहीं।'

वात कह कर स्वदेश चला जा रहा था। लेकिन पीछे से सर्वजय वावू ने फिर पुकारा।

वोले, 'सुनो, तुम्हें कव वक़्त मिलेगा ? तुम्हारे लिए कुछ सूट और कुर्तों का ऑर्डर देना होगा। कव चलोगे ?'

स्वदेश बोला, 'अभी तो शादी में देर है, बाद में किसी दिन चलने से हो जायेगा।'

सर्वजय बाबू बोले, 'नहीं, नहीं, मुझे टालमटोल पसन्द नहीं है। जो करना हो तो फ़ौरन करना ही ठीक है। आख़िर कलकत्ता शहर का हाल तो देखो—तरह-तरह की रुकावटें आ सकती हैं, उसका क्या कुछ ठीक है ? ट्राम-बस-टैक्सी की स्ट्राइक हो सकती है। उसके बाद हड़ताल-उड़ताल के चलते दूकानदार भी शायद ठीक वक़्त पर माल की डिलिवरी न दे सके। मैंने तो बिटिया के लिए अभी ही गहनों का ऑर्डर दे दिया है।'

स्वदेश बोला, 'मुझे सूट की वैसी ज़रूरत नहीं है; मेरे पास तो बहुत-से पैंट-शर्ट हैं।'

सर्वजय बोले, 'वह तुम्हारे पास जो है वह मुझे मालूम है। वे भले आदमियों के पहनने लायक़ नहीं हैं। तुम से मैंने पहले भी कहा था, अब भी कह रहा हूँ—अपना वह सस्ता सूट पहनकर तुम जीवन में कहीं उन्नति नहीं कर सकोगे। इस ज़माने में तुम अगर उन्नति करना चाहते हो तो ज़माने के साथ क़दम मिलाकर चलना होगा। वह न कर सकने पर तुम पिछड़ जाओगे, यह बताये देता हूँ।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन महात्मा गांधी तो ज़माने के साथ मिलकर नहीं चले थे, वे क्या इसलिए पिछड़ गये थे ?'

बात सर्वजय बाबू को अच्छी न लगी।

बोले, 'तो तुम क्या महात्मा गांधी हो ? गांधी के लिए जो ठीक था, वह क्या हमारे लिए भी ठीक है ?'

स्वदेश बोला, 'लेकिन बर्नार्ड शॉ तो दूसरी बात कह गये हैं।'

'किस तरह की ?'

स्वदेश बोला, 'बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि अधिकतर लोग दुनिया के साथ चलते हैं और मुट्ठी-भर कुछ लोग चाहते हैं कि दुनिया उनके हिसाब से चले, उनके लिए ही पृथ्वी बढ़ती चलती है। जैसे रूसो, वॉल्तेयर, चैतन्यदेव, ईसामसीह, सुकरात—इन्होंने दुनिया को अपनी राह पर चलाना चाहा था, इसी से उनके लिए दुनिया इतनी आगे बढ़ी है। आपके-मेरे लिए नहीं।'

सर्वजय बाबू ने चुप रहकर स्वदेश की बात सुनी। सुनकर थोड़ा ताज्जुब में पड़ गये। स्वदेश के मुँह से ये बातें उन्हें सुनना पड़ेंगी, इसकी उन्होंने जीवन में कभी कल्पना भी न की थी। कुछ देर गम्भीर बने रहे। उसके बाद बोले, 'तुम अगर यही विश्वास करते हो, तो ज़िन्दगी में

तुम्हारा कुछ भी न हो सकेगा ?'

स्वदेश बोला, 'किस होने को आप होना कहते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।'

सर्वजय वावू वोले, 'यह सीधी वात तुम भी नहीं समझ सकते ? तो मेरे जूनियर वनकर तुमने इतने दिनों में क्या सीखा ? तुम कोर्ट में जाकर देखते नहीं कि आदमी किस को परम उन्नति मानता है ? किस चीज़ को आदमी जी-जान से चाहता है ?'

स्वदेश ने कहा, 'मैं वह सच ही नहीं जानता।'

सर्वजय वावू वोले, 'तो सुनो, दुनिया में रुपया ही एकमात्र चीज़ जो वच्चे-वूढ़े सभी चाहते हैं। रुपये के सिवा इस दुनिया में कोई और कुछ नहीं चाहता। सभी चाहते हैं कि उनका अपना रुपया हो; उनके वच्चों के लिए रुपये हों, उनके पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र के लिए रुपये हों। और तो और, देश की गवर्नमेंट भी रुपये ही चाहती है। मन्त्री से लेकर एम० पी०, एम० एल० ए० भी देश का भला कहाँ चाहते हैं, वस यही चाहते हैं कि उन्हें रुपये मिलें। इतना रुपया हो जिससे कि तीन-चार पीढ़ियाँ वैठे-वैठे खा सकें। कोर्ट गये विना मुझे इस सवका पता न चल पाता। और मेरे साथ कुछ दिन कोर्ट जाकर तुम भी वह जान पाओगे। और कुछ दिनों जाने से तुम जान सकोगे कि वर्नार्ड शॉ जो वातें कह गये हैं वे हवाई वातें हैं। वे सव वातें किताव विकवाने के लिए लिखनी पड़ती हैं। और असली उद्देश्य हुआ कि तुम्हारी तरह के सरल लड़के उन कितावों को पढ़कर कम्युनिस्ट वन जायें, और लेखकों को और भी रुपये मिलें।'

उसके वाद कुछ रुककर कहने लगे, 'और देखते नहीं हो, मेरे केस में कोई मुवक्किल हारता है ? क्यों नहीं हारता ? उसका सवव है कि कोर्ट का जो स्टाफ़ है. सभी को मैं केस के पीछे पान खाने के पैसे, वख्शीश वग़ैरह देता हूँ।'

स्वदेश वोला, 'पान खाने में उन्हें इतना पैसा लगता है ?'

सर्वजय वावू वोले, 'अरे, यह सीधी वात नहीं समझे ? पान खाने का नाम कर उनके हाथों में रुपये रख देता हूँ, घूस दे रहा हूँ कहने से तो उनका अपमान होगा। इसी से वख्शीश कहता हूँ। मेरे घर की वात ही समझ लो। मेरे मकान पर कभी विजली वन्द होते देखा है ? पूरे कलकत्ता में जव घुप अँधेरा होता है, तो जगह-जगह पर रोशनी कैसे जलती रहती है ? थियेटरों-सिनेमाओं में कभी भी वत्तियाँ नहीं वुझतीं ; क्यों नहीं वुझतीं ? क्योंकि ठीक जगह पर वख्शीश देने पर फिर वत्ती नहीं वुझेंगी। इतने से ही समझ सकते हो कि रुपये में क्या असीम क्षमता है !'

यह सब सुना-सुनाकर ही सर्वंजय बाबू ने अपने भावी दामाद को आदमी बनाना चाहा। इसी से उस दिन भी आगे की बात स्वदेश को और भी विस्तार से समझाकर कही थी, कि तभी ख़बर मिली कि अतहर बाई अचानक मर गयी।

बुधवार को जिसका केस था उस आसामी की अचानक हृदय-यन्त्र की क्रिया बन्द हो गयी।

सर्वंजय बाबू समाचार सुनकर जैसे आसमान से गिर पड़े। ऐसी घटना उनके जीवन में पहले कभी नहीं हुई थी।

'अब क्या होगा? और उनकी पाली उस लड़की का अब क्या होगा?'

जो आदमी ख़बर देने आया था वह मुद्दई का आदमी था।

बोले, 'देवकान्त बाबू ने समाचार पाकर आपको बताने को कह दिया है। इसीलिए आपको बताने आया हूँ।'

समाचार देकर वह आदमी चला गया।

स्वदेश सब सुन रहा था। समाचार सुनकर घबराहट से उसका सारा बदन थर-थर काँप उठा। तो वही लड़की? उसका क्या होगा?

सर्वंजय बाबू बोले, 'सुना, वह आदमी क्या कह गया?

स्वदेश कुछ कह न सका। सिर्फ़ ताज्जुब से सर्वंजय बाबू के मुँह की ओर देखता रहा। उसके बाद जब मन में व्यापा असर दूर हुआ तो पूछा, 'तो क्या होगा, काका बाबू?'

सर्वंजय बाबू बोले, 'क्या होगा, कुछ न होगा? बाईजी लोगों का अन्त में यही होता है।'

'लेकिन उनका मुक़दमा?'

'मुक़दमा ख़ारिज हो जायेगा।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन बाईजी के घर में जो लोग थे उनका क्या होगा? क्या होगा उनका? उनका खाना-पीना कैसे चलेगा?'

सर्वंजय बाबू बोले, 'उस बात को सोचने से हमें क्या फ़ायदा? हमें मुवक्किल के पास से रुपये मिल गये हैं। हमारा झगड़ा ख़त्म। हमारे लिए वह अध्याय बन्द। हमारे पास बहुत-से केस हैं। हम उनकी फ़िक्र करेंगे। मुवक्किल के जीने-मरने को लेकर हम अपना दिमाग़ परेशान करें—हमसे नहीं चलेगा।'

उसके बाद बोले, 'तुम आज चले मत जाना। बेटी ने तुम्हारे लिए बहुत-सा अच्छा-अच्छा खाना बनाया है। आज तुम भी यहीं खाओगे, समझे?'

स्वदेश ने उस वात पर ध्यान न देकर कहा, 'लेकिन वह लड़की ?'

सर्वजय वावू बोले, 'लड़की ? तुम किस लड़की की वात कह रहे हो ? वह वाई की लड़की ?'

स्वदेश ने कहा, 'हाँ।'

सर्वजय वावू वोले, 'उसके वारे में सोचने से तुम्हें क्या फ़ायदा ?'

स्वदेश वोला, 'लेकिन वे ही तो हमारे मुवक्किल हैं। उन्होंने ही तो आपको मुक़दमा लड़ने के लिए रुपये दिये थे।'

सर्वजय वावू वोले, 'जव तक मुवक्किल रुपये देते हैं तव तक हम उनकी ओर से मुक़दमा लड़ते हैं। हम वकील लोग किसी को ठगते नहीं। इस केस का मुद्दई देवकान्त भद्र अगर हमको ब्रीफ़ दे तो हम उसकी ओर से भी लड़ेंगे। क़ानून का हित देखना हमारा काम है। मुवक्किल लोग अपना हित स्वयं देखें। जाओ, तुम ऊपर जाओ। वेटी तुम्हारे लिए खाना वनाकर वैठी है। तुम आज यहीं खाओगे।'

स्वदेश वोला, 'मैं फिर एक वार जाऊँगा।'

'कहाँ ?'

स्वदेश वोला, 'उसी अतहर वाई के घर, सदर स्ट्रीट।'

'वहाँ जाने से फ़ायदा ?'

स्वदेश वोला, 'पता लगा आऊँगा कि अतहर वाई किस तरह, कैसे मरीं ! क्यों और कैसे यह हुआ ?'

सर्वजय वावू वोले,'नहीं, तुम्हें देखने नहीं जाना है। मुवक्किल वकील के पास आयेगा, वकील मुवक्किल के पास नहीं जायेगा—यही हमारा क़ायदा है। इस तरह करने से तुम्हें कभी शोहरत नहीं मिलेगी, यह मैं वताये देता हूँ।'

स्वदेश ऊपर ही जा रहा था, लेकिन कुछ सोचकर ऊपर नहीं गया। जिस के साथ शादी पक्की हो गयी है उसके साथ शादी के पहले ऐसी घनिष्ठता अच्छी नहीं।

स्वदेश फिर सर्वजय वावू के सदर फाटक से सड़क पर उतर आया।

कलकत्ता शहर के रास्तों पर चलते लोगों की ऐसी व्यस्तता रहती है कि देखकर लगेगा कि कलकत्ता शहर ही शायद पृथ्वी पर सबसे निर्जन जगह है। सड़क का कोई भी आदमी आपके लिए अपने दिमाग़ को परेशान नहीं करेगा; आपके सुख या दुख को लेकर उनमें से किसी को सिर-दर्द न होगा। आप अपनी समस्याएँ लेकर रहो, हम अपनी समस्याएँ लेकर रहें। आपके साथ हमारा क्या सम्वन्ध ?

स्वदेश सारे दिन आवारा की तरह शहर के एक कोने से दूसरे कोने घूमने लगा।

सर्वजय वावू ने चेम्वर से दो-मंज़िले पर जाकर लड़की से पूछा, 'हाँ रे, स्वदेश आया था ?'

जयन्ती वोली, 'कहाँ ? नहीं तो।'

'यह क्या ? स्वदेश नहीं आया ? मैंने उससे ऊपर आने को कहा था। तूने उसके लिए खाना बनाया है ?'

जयन्ती क्या कहती ! सर्वजय वावू वोले, 'तो लगता है कि उसे वहुत शर्म आ गयी। स्वदेश वहुत शर्मीला है, इतना शर्मीला होकर किस तरह क़ानून के पेशे में प्रैक्टिस करेगा, यह समझ में नहीं आता।'

जयन्ती ने इस वात का भी कोई जवाव न दिया। सिर्फ़ वोली, 'तुम क्या अभी खाकर निकलोगे, वावा ?'

सर्वजय वावू खाकर निकले नहीं। वोले, 'मैं दोपहर को ज़रा रुक-कर खाऊँगा, आज तीसरे पहर तुझे लेकर न्यू मार्केट जाऊँगा। और तो ज़्यादा वक़्त है नहीं, इसी में सव ख़रीद-फ़रोख़्त करना होगी।'

जयन्ती वोली, 'अभी भी तो वहुत वक़्त है। तुम इतनी फ़िक्र क्यों करते हो ?'

सर्वजय वावू वोले, 'मेरी समझ में नहीं आता कि तू कह क्या रही है ! वक़्त देखते-देखते वीत जाता है। फूल-शैया का सामान लेना होगा। अच्छी चीज़ न देने से लोग क्या कहेंगे ? हरिसाधन के दोस्त आयेंगे। तमाम एम० एल० ए० आयेंगे। तमाम मिनिस्टर आयेंगे। कलकत्ता के तमाम वड़े-वड़े लोग, कोई भी तो आने से न रहेगा। फूल-शैया का सामान अगर ख़राव रहे तो वताओ तो कि वे लोग क्या कहेंगे ? वाज़ार की चुनी-चुनी चीज़ें न देने से वदनामी तो मेरी ही होगी।'

कहते-कहते सहसा हाथ की घड़ी की ओर देखकर उन्हें कोर्ट की वात याद आ गयी। कोर्ट के ज़रूरी काम की वात याद आते ही वह स्नान-घर में घुस गये।

कोर्ट जाने के पहले वोले, 'तो वेटी,तुम तैयार रहना। मैं आकर खाते

ही निकल पड़ूँगा।' इतना कहकर निकल गये।

स्वदेश उस समय घूम रहा था। एक बार वह सड़क पकड़कर शुरू कर उस रास्ते से निकल फिर किसी दूसरे रास्ते पर निकल आता। सहसा लोगों से भरा एक रास्ता देखकर जाते-जाते देखा कि सर्वजय बाबू और जयन्ती गाड़ी से उतरकर एक सोनार की दूकान के अन्दर घुस गये। समझा कि उसके ब्याह की ख़रीद उन लोगों ने शुरू कर दी।

स्वदेश अपने को ओट में कर एक गली में घुस गया। उसके बाद चलते-चलते जब बहुत रात हो गयी तो मेस के बाहर आकर पुकारा, 'गोविन्द—ओ रे गोविन्द !'

गोविन्द स्वदेश को देखकर ताज्जुब में पड़ गया। बोला, 'क्यों छोटे बाबू, दिन-भर कहाँ थे ?'

स्वदेश बोला, 'क्यों, क्या मुझे कोई खोज रहा था ?'

गोविन्द बोला, 'वकील साहब आपकी तलाश में आये थे।'

'वकील साहब ? कौन वकील साहब ? सर्वजय बाबू ?'

गोविन्द बोला, 'हाँ, मैंने कह दिया कि आप सारे दिन मेस में नहीं लौटे।'

'तुमने और क्या कहा ?'

गोविन्द बोला, 'और कहा कि छोटे बाबू आजकल अकसर घर नहीं लौटते। उस पर वकील साहब ने पूछा—तुम्हारे छोटे बाबू खाते कहाँ हैं ? मैंने जवाब दिया कि आप कुछ नहीं खाते।'

स्वदेश बोला, 'तुम्हें इतनी बातें करने की क्या ज़रूरत थी ? मैं खाता नहीं, यह तुमसे किसने कहा ? किसी दूकान पर खा लेता हूँ।'

बातचीत की आवाज़ कानों में पड़ते ही अन्दर से एककौड़ी निकल आया।

बोला, 'क्या रे ? तू इतनी रात तक कहाँ था ? तेरा ससुर आया था। तेरी बहू को भी देखा। गाड़ी के अन्दर बैठी थी। तेरी बहू देखने में तो अच्छी नहीं है।'

स्वदेश ने इस बात का कोई विरोध न किया। बोला, 'मेरा मन ठीक नहीं है, भाई।'

एककौड़ी ताज्जुब में पड़ गया। स्वदेश ऐसी बात तो कभी कहता नहीं था। पूछा, 'तेरा मन है भी कि ख़राब हो जायेगा ? इतने बड़े आदमी का तो तू बेटा है, इतने बड़े आदमी का दामाद बनने चला है, तुझे तो खुशी से धेई-धेई कर नाचना उचित है।'

स्वदेश बोला, 'मेरे बाबा बड़े आदमी हैं तो उससे मेरा क्या ? तुम्हारे बाबा भी तो बड़े आदमी हैं, तो तुम क्यों नहीं धेई-धेई करके नाचते हो ?'

एककौड़ी बोला, 'मेरी बात छोड़ दे, मेरी बात अलग है, मैं तो आवारा हूँ, मुझे रुपयों की क्या जरूरत है ? लेकिन क्या तू भी वही है ? तुझे तो रुपयों की ज़रूरत है। तू वकील बनेगा, तेरे पास पैसे होंगे, तू और सारे वकीलों की तरह लोगों को धोखा देकर खायेगा। तुझमें मुद्दई-मुद्दालेह के बीच कोई फ़र्क नहीं रहेगा। जो तुझे रुपया देगा तू उसके ही साथ रहेगा। और मैं ? मैं तो भिखारी हूँ रे, मैं तो तेरी गरदन पर सवार रहकर खाता हूँ...।'

स्वदेश बोला, 'नहीं, अगर तुम मेरे मन की हालत जानते !'

एककौड़ी बोला, 'तेरा मन बड़ा है या देश के आदमी का मन बड़ा है ? देश-भर के लोगों के मन की हालत क्या है, तूने सोचकर कभी वह देखा है ? लड़के परीक्षा पास कर नौकरी पाते हैं ? जो लोग परीक्षा की कापियाँ देखते हैं वे तबीयत से कापी देखते हैं ? जानता है, कापियाँ देखने के लिए वे किराये के लोग रखते हैं ! उस दिन एक लड़के को ढाई सौ रुपये महीने की पुलिस की नौकरी दो हज़ार रुपये घूस देने पर मिली, मालूम है ? जो रुपया घूस दिया गया वह उधार लेकर दिया गया। लेकिन उसे उसी उधार के लिए बारह फ़ीसदी हर महीने सूद देना होगा। उसके मन की हालत ज़रा सोच। इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है, बता, बता ?'

स्वदेश चुप रहा। कोई भी जवाब न दिया।

एककौड़ी बोला, 'क्यों, चुप क्यों रह गया ? बात बता ! मेरी बात का जवाब दे !'

स्वदेश बोला, 'इस बात का मैं क्या जवाब दूँ ? मैं तो सब देख रहा हूँ, सुन रहा हूँ, मेरी क्या कुछ करने की सामर्थ्य है ?'

एककौड़ी बोला, 'इसके लिए तेरे बाबा की तरह के लोग ही ज़िम्मेदार हैं। उन्हें ठीक किये बिना कुछ न होगा।'

स्वदेश को ये सब बातें सुनने में अच्छी नहीं लग रही थीं। बोला, 'मैं चलूँ, एककौड़ी दादा।'

'यह क्या रे, इस बेवक़्त कहाँ जायेगा ? तू तो अभी-अभी दिन-भर के बाद घर आया है।'

स्वदेश बोला, 'मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।'

'क्यों, बता तो ? तुझे हुआ क्या है, मुझसे साफ़-साफ़ बता न ?'

स्वदेश बोला, 'सदर स्ट्रीट में एक बाई हमारी मुवक्किल थीं, उनका

नाम था अतहर बाई, वह अचानक मर गयीं।'

'तो बाई के मरने से तुझे क्या ? वह तो मरेंगी ही। उनकी क्या कोई जात है ? बस शराब पियेंगी, पेट में ज़ख्म होंगे, वे मरेंगी ही। वे तो समाज की कोई हैं नहीं, उनके लिए किसी को चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं।'

स्वदेश फिर न बैठा। झटपट खड़े होकर बोला, 'मैं चलूँ, एककौड़ी दादा।'

'कहाँ जायेगा ?'

स्वदेश बोला, 'वहीं सदर स्ट्रीट।'

'क्यों ?'

स्वदेश फिर न रुका। बोला, 'बाद में तुम्हें सब बताऊँगा, अभी तो चलूँ।'

कहकर सड़क पर निकल गया। सड़क पर चलते-चलते सीधे सदर स्ट्रीट पर जाकर रुका। मकान दो-मंजिला था। लेकिन मकान में बाहर से कोई रोशनी दिखायी न दी। बाहर खड़े-खड़े दिखायी पड़ा कि मकान जैसे मुर्दा हो रहा हो। वह तो होगा ही।

लेकिन वह लड़की ? उससे अगर एक बार भेंट होती तो एक बार पूछता कि उसका नाम क्या है ? उसके गले में किस चीज़ का निशान है ? आग में अगर जली थी तो कैसे ?

चारों ओर तरह-तरह के लोग आवाजाही कर रहे थे। बहुतेरे उसकी ओर नज़र उठाकर भी देखते। शायद बहुत-से सोचते कि स्वदेश किसी लड़की के पास जायेगा, इसीलिए खड़े-खड़े राह देख रहा है।

लेकिन कोई कुछ भी सोचे उससे स्वदेश का कुछ आता-जाता नहीं। एकाग्रचित्त हो घर की ओर उत्सुकता से देख रहा था। कभी-कभी एकाध गाड़ी आकर खड़ी हो जाती। उस समय मकान के दो-मंज़िले पर बत्ती जल जाती; रोशनी से घर प्रकाशित हो जाता। स्वदेश को लगता कि शायद फिर गाने-बजाने की आवाज़ सुनायी पड़ेगी। गाड़ी से एक सज्जन उतरते हैं। धोती-कुर्ता पहने अधेड़ उम्र के आदमी हैं। उसके बाद और कोई आवाज़ न होती। मकान की रोशनी जलती ही रहती।

एक दिन स्वदेश साहस कर गाड़ी के पास जा खड़ा हुआ। ड्राइवर अन्दर आराम से स्टीयरिंग के सामने बैठा था।

स्वदेश ने पूछा, 'क्यों भाई, इस गाड़ी के मालिक का क्या नाम है ?'

ड्राइवर पहले तो चुप रहा। उसके बाद पूछा, 'क्यों, नाम क्यों पूछ रहे हैं ?'

स्वदेश बोला, 'नहीं, मेरी जानने की इच्छा हो रही है।'

ड्राइवर बोला, 'आपको नाम जानने की क्या ज़रूरत है ?'

लेकिन स्वदेश के कुछ कहने के पहले ही गाड़ी के मालिक सज्जन जल्दी-जल्दी आकर गाड़ी में बैठ गये। स्वदेश उन्हें देखते ही फिर अपनी जगह लौट आया।

गाड़ी ने तभी चलना शुरू किया था। गाड़ी पर बैठते ही सज्जन ने ड्राइवर से पूछा, 'वह आदमी कौन है, मक़बूल ?'

मक़बूल गाड़ी चलाते-चलाते बोला, 'पता नहीं, कौन है।'

'वह तुमसे क्या पूछ रहा था ?'

मक़बूल बोला, 'पूछ रहा था, आपका नाम क्या है ?'

'तूने नाम बता दिया ?'

मक़बूल बोला, 'न, न, मैं कभी ऐसा करता हूँ ? सारे बदमाश हैं।'

सज्जन बोले, 'अब से कभी भी कहीं मकान के आगे गाड़ी न खड़ी करना। मैं जिस मकान में जाऊँ उससे बहुत दूर गाड़ी रखना। इन गुण्डों की परेशानी से देखता हूँ कि कलकत्ता शहर में अब गाड़ी भी नहीं चलायी जा सकती। मैं जहाँ जाऊँ वहीं ये साले पीछे लगे रहेंगे।'

मक़बूल तब गाड़ी लेकर पार्क स्ट्रीट से मुड़कर सीधे चौरंगी जा पहुँचा।

लेकिन उस दिन स्वदेश न रुक सका। एक महीने से घूमते-घूमते उस दिन वह एकदम सीधे सदर स्ट्रीट के मकान के ज़ीने से ऊपर चढ़ गया।

दरवाज़े की कुंडी खटखटाने में जैसे कुछ संकोच हुआ।

उसके बाद बिना कुछ ज़्यादा सोचे-विचारे, बिलकुल हताश होकर कुंडी खटखटा दी।

अन्दर से किसी नयी शकल ने आकर दरवाज़ा खोलकर पूछा, 'कौन ? किससे मिलना है ?'

स्वदेश बोला, 'यहाँ अतहर बाई रहती हैं ?'

औरत बोली, 'नहीं, वह यहाँ नहीं रहतीं।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन पहले तो अतहर बाई यहीं रहती थीं ?'

औरत बोली, 'पहले रहती थीं, लेकिन अब नहीं रहती हैं।'

स्वदेश ने पूछा, 'तो अब कहाँ गयीं ?'

औरत बोली, 'वह मर गयीं।'

स्वदेश अब क्या पूछे, यह उसकी समझ में न आया।

आखिर फिर अपने को संभाल न रख सका। बोला, 'अच्छा, अतहर बाई के इस मकान में एक और लड़की थी, वह कहाँ है ?'

औरत ने उस बात का जवाब न देकर कहा, 'आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? आपका नाम क्या है ?'

स्वदेश बोला, 'मेरा नाम स्वदेश चट्टोपाध्याय है; बलरामपुर के हरिसाधन चट्टोपाध्याय मेरे पिता हैं। और कुछ जानना है ?'

औरत को वह सब न मालूम था। बोली, 'न, आप अभी जाइये, अतहर बाई मर गयीं, इस मकान में और कोई नहीं रहता।'

कहकर दरवाज़ा धड़ाम से उसके मुँह पर बन्द कर दिया।

स्वदेश कुछ देर वहीं हारा-सा, कुछ देर गूँगा बना खड़ा रहा। उसके बाद धीरे-धीरे फिर ज़ीने से नीचे सड़क पर उतर आया।

सदर स्ट्रीट बहुत चौड़ी सड़क नहीं थी। लेकिन थोड़ी सूनी-सूनी-सी थी। पटरियों पर दो-एक छोटे-छोटे पेड़ थे। पान-सिगरेट-कोकाकोला की एक-दो दूकानें थीं। वहीं से वह चलने लगा।

सहसा पीछे से जैसे किसी ने ज़नानी आवाज़ में पुकारा, 'ओ बाबू, बाबू !'

स्वदेश ने नज़र उठाकर देखकर पहचाना—वही नौकरानी है। उसकी ओर बढ़कर पूछा, 'मुझे बुला रही हो ?'

'हाँ, आइये। आपको दीदी बुला रही हैं।'

'तुम्हारी दीदी ?'

'हाँ।'

'मुझे क्यों बुला रही हैं ?'

'यह नहीं मालूम। मुझे आपको बुला लाने को कहा है।'

स्वदेश बात ठीक से समझ नहीं सका। थोड़ा कुतूहल भी हुआ। स्वदेश पीछे-पीछे चलने लगा। उसके बाद वही पहले की तरह फिर ज़ीने से ऊपर चढ़ना। एक-मंज़िले पर लगता था कि कोई और किराये पर रहता था। उसका दरवाज़ा बन्द था। दो-मंज़िले पर चढ़कर नज़दीक ही एक दरवाज़ा था। एक पीतल की प्लेट पर पता लिखा हुआ था—बारह बटा एक सदर स्ट्रीट। नौकरानी ने उसे अन्दर ले जाकर एक बैठक में

बैठा दिया। बोली, 'आप बैठिये, मैं दीदी को ख़बर दे रही हूँ।'

कहकर वह अन्दर चली गयी।

स्वदेश वहाँ बहुत देर तक बैठा रहा। चारों ओर नज़र डालकर देखा। कमरा सजा हुआ था। सामान्यत: जिस तरह कलकत्ता के लोगों के कमरे सजे रहते हैं उनसे हज़ार गुना ज्यादा फ़ैशन से सजा हुआ था। सब-कुछ मकान-मालिक की आर्थिक क्षमता का परिचायक था। मानो मकान के मालिक आँखों में उँगली डालकर दिखाना चाहते हों, 'तुम मेरे वैभव का नमूना देखो।'

सहसा दूसरी तरफ़ का परदा हटाकर एक महिला कमरे में आयी। वही पहले देखी लड़की, गले में वही आग से जला निशान, बहुत सजी-बजी। लगा कि जैसे इतनी देर से आईने के आगे खड़े-खड़े उससे मिलने के लिए ही सज रही हो। उसके आने के साथ-साथ कमरा एक अपूर्व सुगंधि से महक उठा।

'मुझे पहचान सकते हो ?'

स्वदेश हक्का-बक्का रह गया। उसने अच्छी तरह फिर महिला के चेहरे की ओर देखा। उसकी आँखों में एक खोज की छाया क्रमश: अस्पष्ट से स्पष्ट होने के प्रयत्न में अधीर हो उठी।

महिला फिर बोली, 'मुक्ति कैसी है ?'

मुक्ति ! स्वदेश और बैठा न रह सका। उत्तेजना में वह सोफ़ा से सीधा होकर उठ खड़ा हुआ।

'अभी नहीं पहचान सके ?'

स्वदेश बोला, 'मैं ठीक से नहीं समझ पा रहा हूँ। तुम मुक्ति को कैसे जानती हो ? मुक्ति तो मेरी बहन का नाम है।'

'मेरा नाम संध्या है। संध्या घोष।'

स्वदेश बोला, 'तो तुम हमारे बलरामपुर के कानाई घोष की लड़की हो ? मुझे पहले दिन ही शक हुआ था। तुम यहाँ कैसे आयीं ?'

महिला के मुँह से इस बार हलकी-सी हँसी निकल पड़ी। बोली, 'भाग्य के फेर से।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन यह तो अतहर बाई का मकान है। मैं तो उनसे ही मिलने उस दिन आया था। तुम्हारी गरदन में आग से जलने का निशान देखते ही शक हुआ था। वह तुम्हारी कौन थीं ?'

संध्या ने उस बात का जवाब न देकर कहा, 'मैं पहले समझ न सकी। तुम सरला से अपना नाम बता गये थे। उसके मुंह से तुम्हारा नाम सुनते ही समझ गयी कि यह तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है। इसीलिए उससे

तुमको बुला भेजा। मैं कल्पना भी नहीं कर सकी थी कि इतने दिनों बाद इस तरह फिर तुमसे यहाँ मुलाक़ात होगी। बलरामपुर के क्या हाल हैं?'

'मैं भी कल्पना नहीं कर सका था। तुम बचपन में मेरे घर मेरी बहन के साथ खेलने आती थीं। अब मुझे सब याद आ रहा है। उसके बाद एक दिन तुम्हारे घर आग लग गयी थी। तुम्हारे माँ-बाप सब ही जल गये थे। मैं उस वक़्त कलकत्ता में था; बाद में सब सुना। सुना था कि बाबा ने थाने में रिपोर्ट भी लिखवायी थी। मेरे बाबा ने असेम्बली में सवाल भी पूछे थे, जाँच-कमीशन भी बैठा था। अन्त में पता चला कि वह दुर्घटना ही थी।'

'और क्या सुना था?'

'और सुना था कि तुम्हें तलाश नहीं किया जा सका। किसी-किसी ने बताया कि तुम आग लगने के पहले ही कहीं भाग गयी थीं। भागकर आत्महत्या कर ली। सुना था कि तुम्हारी लाश भी बहुत दिनों बाद मिली थी।'

संध्या ने पूछा, 'उसके बाद? उसके बाद और क्या सुना?'

स्वदेश बोला, 'उसके बाद और क्या सुनता? दुनिया में कितनी दुर्घटनाएँ होती हैं; रोज़ाना कितने मकान जलते हैं; कितने लोग आत्म-हत्या करते हैं; तमाम लोगों का जन्म होता है; कितने लोग रसातल में डूब जाते हैं; कितने उतार-चढ़ाव होते हैं—किसके पास इतना वक़्त है कि वह सब याद रखे? मैं तो उन सब बातों को भूल ही गया था। इस वक़्त तुमको देखकर वे सब बातें याद आती हैं। सचमुच तुम यहाँ कैसे आयीं? वह देवकान्त भद्र कौन है? उनके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? उस आदमी ने ही तो अतहर बाई के ख़िलाफ़ तुम्हारे लिए मुक़दमा लड़ा था। तुम ही तो उसका लक्ष्य थीं। तुम्हें पाने के लिए ही तो उसकी इतनी कोशिश थी। और तुम उसके ही पल्ले पड़ गयीं?'

संध्या बोली, 'मैं जब बलरामपुर में थी तो सभी मुझसे घृणा करते थे। तुम्हारे साथ जिस जयन्ती की शादी होने की बात थी वह भी मुझसे घृणा करती थी। लेकिन देखो मेरे पास अब कितनी सम्पत्ति है, देखो मेरे पास कितने गहने हैं! मैं इस समय जो गहने पहने हूँ, इससे भी अधिक और गहने मेरी अलमारी में हैं। मेरे अपने नाम में लाखों रुपये के हीरे-जवाहरात हैं, मालूम है? यह सब अतहर बाई के दिये हुए हैं। इसके पहले मेरे मुँह से बोली भी नहीं निकलती थी। अतहर बाई ने मुझे अपनी बेटी की तरह पाला। ये इतने गहने, सब अतहर बाई के दिये हैं। और वह देवकान्त बाबू? अतहर बाई जब मर गयीं तो देवकान्त बाबू के पल्ले में न पड़कर

मेरे लिए और कौन-सा रास्ता था ? पता है, मुझे इस समय ये सब गहने पहनकर एक बार तुम्हारे बलरामपुर जाने की तबीयत होती है। तबीयत होती है कि वहाँ जाकर आज सबको अपना यह ऐश्वर्य दिखाऊँ।'

'लेकिन ये सब रुपये, इतने गहने—यह सब अतहर बाई का दिया हुआ है ?'

संध्या बोली, 'हाँ, सभी अतहर बाई का दिया है।'

'और वह देवकान्त बाबू ? उन देवकान्त बाबू के साथ क्या तुम्हारी शादी हुई है ? इस एक महीने में इतनी बातें हो गयीं ?'

संध्या हँसती-हँसती लोट-पोट हो गयी। बोली, 'बाप रे, तुम कैसे बुद्धू हो ! मैं उस वक़्त ही देखती थी कि तुम दिन-रात किताब लिये बैठे रहते थे। मुक्ति कहती—दादा दिन-रात किताबें पढ़ते रहते हैं। इतनी किताबें पढ़ने से ही शायद तुम्हारी-सी अक़्ल हो जाती है ! मेरे सिर पर माँग में क्या सिन्दूर है कि कहते हो मेरा ब्याह हो गया ! मेरा ब्याह क्यों होगा ?'

स्वदेश बोला, 'तो अगर शादी न हो तो इतना रुपया तुम्हें कहाँ से मिला। किसने दिया ?'

संध्या बोली, 'उससे तो अच्छा था कि पूछते इतनी बड़ी आग के बाद भी तुम बच कैसे गयीं ? मैं कैसे ज़िन्दा बच गयी, मरी क्यों नहीं, यही पूछो। क्यों मेरा यह शरीर जल नहीं गया, और मेरी यह गरदन जली और मेरा यह कपाल जल गया ? क्यों यह कपाल जलकर बिलकुल राख नहीं हो गया ?'

स्वदेश को लगा कि बातें करते-करते संध्या का गला जैसे बिलकुल भर आया हो। उसके चेहरे पर मुसकराहट ज़रूर थी, लेकिन कलेजे में जितना रुदन था वह मानो बाहर हँसी बनकर निकला आ रहा हो !

स्वदेश बोला, 'मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ, संध्या। सचमुच यहाँ आकर मैं अवाक रह गया हूँ। कितने समय पहले की बात है, लेकिन मुझे फिर सब याद आ रहा है।'

इस बीच संध्या ने अपने को संभाल लिया था। अब वह शान्त होकर बोली, 'ठीक है, अब तुम जाओ, स्वदेश-दा। बहुत दिनों बाद तुमसे भेंट हुई है न, इसी आवेग में तुमसे बहुत कुछ कह डाला। बुरा न मानना। एक दिन तुम्हारे वकील की चिट्ठी यहाँ लाने के बहाने तुमसे भेंट हो गयी थी। लेकिन उस दिन मैं डर गयी थी। सोचा था कि तुम्हारे बाबा ने जिस तरह मुझे जलाकर मारना चाहा था, तुम भी शायद उसी तरह मुझे जलाकर मारोगे। इसी से डरकर दरवाजा बन्द कर तुम्हें भगा दिया था। लेकिन

उससे मुझे एक फ़ायदा हुआ था। उस आग में जलने के वाद से सात-आठ वरस तक मेरी ज़वान वन्द रही। मैं गूँगी हो गयी थी। लेकिन तुमको देखने के वाद से ही मेरी ज़वान से वोली फूटी। पहले सव सोचते थे कि मैं कभी कुछ वोल न सकूँगी।'

फिर कुछ रुककर वोली, 'अच्छा, उस दिन जो मुक़दमे की चिट्ठी अपने वकील साहव के पास से लाये थे वह कैसा मुक़दमा था, पता है?'

स्वदेश के कुछ कहने के पहले ही संध्या वोली :

'तुम्हारे विना वताये भी मैं वता सकती हूँ। मुक़दमा मुझको लेकर ही था।'

'वह मुझे मालूम है।'

'हाँ, अतहर वाई न मर जातीं तो शायद मुझे भी कचहरी जाकर गवाही देना पड़ती।'

स्वदेश वोला, 'लेकिन देवकान्त वावू ने मुक़दमा क्यों किया?'

संध्या वोली, 'मुक़दमा न होने से मेरे भाग्य में सुख होगा न!'

'सो इतना गहना, इतना ऐश्वर्य रहते भी तुम कहती हो कि तुम्हारे भाग्य में सुख नहीं है? औरत होकर पैदा होने पर तुमने जीवन में और क्या चाहा था?'

संध्या वोली, 'मैंने जो चाहा था वह जीवन में अव कभी नहीं मिलेगा, यह मैं जानती हूँ। इससे अच्छा था, उस दिन आग में जलकर मर जाती। तव इस तरह ज़िन्दगी-भर जल-जलकर झुलसना न पड़ता।'

उसके वाद ज़रा उठकर एकदम स्वदेश के मुँह के पास मुँह लाकर वोली, 'अच्छा स्वदेश-दा, उस दिन तुम अपने वावा को समझा-बुझाकर हमारे घर में थोड़ा ज़्यादा मिट्टी का तेल छिड़कने को नहीं कह सकते थे? उसमें क्या ज़्यादा ख़र्च हो जाता?'

स्वदेश चौंक पड़ा। वोला, 'तुम कह क्या रही हो? मेरे वावा? मेरे वावा ने तुम्हारा घर जलाया?'

संध्या वोली, 'जी हाँ। वह न होता तो आज मेरे वावा ज़िन्दा होते, और मेरे वावा के ज़िन्दा रहने पर तुम्हारे वावा की वरवादी होती। मेरे वावा तुम्हारे वावा की राह का काँटा बन रहे थे। यह भी तुमको नहीं पता? इसी से, राह के काँटे को हटा देने के लिए ही मेरे वावा को इस तरह से आग में जलकर मरना पड़ा।'

स्वदेश वोला, 'लेकिन तव की पुलिस की तहक़ीक़ात में तो यह वात नहीं निकली।'

संध्या वोली, 'रुपये ख़र्च करने से क्या कोई भी ख़बर पुलिस की

तहक़ीक़ात से निकलती है ? तुम्हीं बताओ, निकलती है। तुमने तो इतने दिन तक वकालत की है—इतने दिनों में यह भी नहीं समझ पाये ? कलकत्ता में तो तमाम पैसे वाले लोग हैं, किसी दिन सुना कि उनके पापों की कहानी का कभी, किसी वक़्त पर्दाफ़ाश हुआ हो ? किसी दिन उन्हें फाँसी लगी; किसी दिन उन्हें जेल हुई; किसी दिन उन्हें किसी भी तरह की सज़ा मिली ?'

कुछ देर के लिए कमरे में एक कष्टकर निस्तब्धता छायी रही।

कुछ देर बाद स्वदेश बोला, 'यह सब क्या सच है ? मुझे तो विश्वास करने में भी संकोच होता है।'

संध्या बोली, 'कौन तुमको विश्वास करने के लिए सिर की क़सम दिला रहा है ? जो दूसरे लोगों को बरबाद करता है वह क्या उसका सबूत रखकर बरबाद करता है ? स्वदेश-दा, मैं प्रमाण नहीं दे सकूँगी; प्रमाण देने लायक़ मेरे पास कुछ नहीं है। तुम मुझसे उसका कोई भी प्रमाण मत माँगना। और इतनी बातें जो कह रही हूँ, इसलिए दया करके कुछ बुरा भी न मानना। मैं यही सोचती हूँ कि उस दिन आग से जल मरने के डर से मैं भाग क्यों आयी ! नहीं तो मुझे आज इस बड़वानल में इस तरह तड़प-तड़प के जलना न पड़ता !'

कहते-कहते वह मानो बिलकुल टूट गयी।

स्वदेश इस बीच संध्या के सिर पर हाथ रखकर उसे सान्त्वना देते हुए कहने लगा, 'सच बताओ, तुम्हारे साथ क्या हुआ है ? मेरे बाबा ने अगर तुम पर सचमुच अन्याय किया है तो मैं उनका बेटा होकर, न हो तो कुछ प्रायश्चित करूँगा। बताओ न, तुम्हारे साथ क्या हुआ ?'

संध्या ने सहसा सिर उठाया। बोली, 'मेरे लिए तुम कष्ट करोगे ? मैं तुम्हारी कौन हूँ ?'

स्वदेश बोला, 'तुम तो समझ गयी हो कि मैं वकील हूँ। अगर मेरी ओर से तुम्हारा कुछ भी भला हो तो मैं उसके लिए जान तक दे सकता हूँ।'

सहसा नीचे मानो किसी के पैरों की आवाज़ हुई। सरला झटपट अन्दर आकर बोली, 'दीदी, बड़े बाबू आ रहे हैं।'

साथ-ही-साथ संध्या का चेहरा जैसे सूख गया। पहले तो उसकी समझ में न आया कि क्या करे ? उसके बाद बोल पड़ी, 'सरला, तू एक काम कर। तू इन दादा बाबू को लेकर जल्दी से पास की कोठरी में छिपा दे। जा, जिससे बड़े बाबू को पता न लगे।'

उस समय और अधिक वक़्त न था। स्वदेश सरला के साथ अन्दर चला गया। कमरे के पास ही छोटा, सँकरा, छता हुआ बरामदा था। उसी

से लगी एक कोठरी थी। उसके अन्दर स्वदेश को छिपाकर उसने दरवाज़े पर ताला लगा दिया। दरवाज़ा वन्द करने के पहले सरला वोली, 'दादा वावू, आप कोई आवाज़ न कीजियेगा। वड़े वावू के चले जाने के वाद मैं फिर आकर ताला खोलकर ले जाऊँगी।'

स्वदेश ने पूछा, 'वड़े वावू कौन हैं? कौन आ रहा है? देवकान्त भद्र ?'

सरला वोली, 'हाँ, मैं चली।'

कहकर सरला दरवाज़ा वन्द कर चली गयी।

कमरे के चारों ओर स्वदेश ने नज़र डालकर देखा। चारों ओर सामान ठसा पड़ा था। ज़्यादातर लेविल लगी वोतलें ही थीं। वोतलों का ढेर था। देखकर लगा कि सव शराव की वोतलें हैं—विलायती छाप की।

अचानक पास के कमरे से किसी की आवाज़ सुनायी दी। जिधर से आवाज़ आ रही थी उसी ओर जाकर वह खड़ा हो गया। उधर एक वन्द दरवाज़ा था।

'सुनो, कोई आया था ?'

स्वदेश ने दरवाज़े में एक पतली सेंध से पास के कमरे के अन्दर की ओर देखने की कोशिश की। अस्पष्ट-सा दिखायी पड़ा। जो आदमी कमरे में आया था उसे स्वदेश पहचान गया। वही आदमी था जिसे उसने सर्वजय वनर्जी के चेम्वर में देखा था। गोरी शकल, क़द में ऊँचा, चेहरे पर लम्वी मूँछें।

'किसी वकील के पास से इस घर में कोई महीना-भर पहले आया था? वकील के पास से यहाँ आने की वात थी। मुझे टेलीफ़ोन पर पता चला कि अतहर वाई के नाम से यहाँ एक दिन एक चिट्ठी भेजी गयी थी। कोई आया नहीं था ?'

संध्या सामने ही खड़ी थी। वोली, 'कहाँ, नहीं तो।'

'सरला को तो वुलाओ! वह कहाँ है ?'

वुलाते ही सरला कमरे में आयी। वड़े वावू ने पूछा, 'हाँ रे सरला, कोई अतहर वाई के नाम चिट्ठी लेकर वकील साहव के पास से यहाँ किसी दिन आया था ?'

सरला ने जवाव दिया, 'कहाँ, नहीं तो वड़े वावू! कोई भी तो नहीं आया।'

देवकान्त भद्र वोल पड़े, 'सव वेकार लोग हैं। कोई कुछ काम नहीं करता। वस वैठे-वैठे पैसे खायेंगे। तो छोड़ो...।'

कहकर संध्या की ओर देखा। वोले, 'तुम कैसी हो? कल जो आदमी

आया था वह कैसा है ? अच्छा है ?'

संध्या के कुछ जवाव देने के पहले ही वड़े वावू वोल उठे, 'यों तो आदमी अच्छा है, पता है ! काफ़ी रुपये वाला है। अचानक वाप के मर जाने से वहुत-सा रुपया मिल गया है। समझ में नहीं आता कि किस तरह रुपये उड़ाये। लेकिन उसमें एक ख़रावी है। शराव वहुत पीता है। तुम्हारे विस्तर पर तो क़ै-वै नहीं कर दी ?'

संध्या वोली, 'नहीं।'

वड़े वावू वोले, 'मैंने जो कुछ सुना है उससे समझा कि उसने अभी तक शादी नहीं की है। जव तक शादी न करे तभी तक हमारे लिए अच्छा है। क्यों ? तुमको कुछ दिया ?'

संध्या ने वात न समझकर वड़े वावू के मुँह की ओर सिर उठाकर देखा।

वड़े वावू वोले, 'नहीं समझीं ? तुमको कव अक़ल आयेगी ? पूछ रहा हूँ कि तुमको कुछ रुपये-उपये दिये ?'

संध्या वोली, 'नहीं।'

वड़े वावू वोले, 'ऐसी शर्म करने से क्या कोई कुछ देता है ? इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है, समझीं ? इतना कुछ जानती हो और रुपये वसूल करने का ढंग नहीं सीखा ? तुम्हारे भले के लिए ही इतनी वातें कह रहा हूँ, नहीं तो मुझे क्या ? किसी दिन खाने को नहीं मिलता था, पहनने को नहीं मिलता था। अतहर वाई ने इतने रुपये ख़र्च कर तुम्हें क्यों पाला ? रुपये कमाने के लिए ही तो। इतना तो मानती हो ? अतहर वाई के मरने के बाद मैं अगर तुम्हारी देखभाल न करता तो वताओ तुम्हारी क्या हालत होती ? तव तुम भूखी रहकर मरने को होतीं। तुम तव वोल न पातीं; सव लोग तुमको गूँगी कहते। मैंने आकर डॉक्टर को दिखाकर इलाज कराया था, इसीलिए तो तुम्हारे मुँह से वोली निकली। कहा जाये तो मैंने ही तुमको फिर से जिन्दगी दी। कहने को मैंने ही तुमको राह पर से उठाकर रानी के आसन पर विठलाया। अव मेरे जो करने लायक़ है वह कर रहा हूँ। लेकिन अपना भविष्य तो तुम्हें ही देखना होगा। मैं बुड्ढा हो गया हूँ। मैं और कितने दिन जीऊँगा ?'

संध्या फिर भी पहले की तरह चुप रही।

वड़े वावू फिर बोले, 'लेकिन रुस्तमजी आदमी अच्छा है, समझीं ? एक वात का आदमी है। भाव-मोल करने वाला आदमी नहीं है। लेकिन ताज्जुव है कि तुमको एक रुपया भी नहीं दे गया। इस एक महीने में भी न सीख पायीं कि रुपये कैसे लेना होते हैं ? या किस तरह रुपये छीने जाते

हैं ? जब शराब पीकर बेहोश हो जाये तो जेब में हाथ डालकर कुछ हथिया क्यों नहीं लिया ? पता तो है कि वह बड़ी आसामी है। कुछ हज़ार निकल जाने से उसका कुछ आता-जाता नहीं। असल में उसको किसी तरह पता भी नहीं चलता। बाप के अगाध रुपयों का मालिक हो गया है। उम्र कम है। नया-नया उड़ना सीखा है। इसी तरह की पार्टी की तो मुझे ज़रूरत है। असल में हुआ क्या कि तुम किसी ठेठ बलरामपुर की लड़की हो न, इसी से अभी तक कुछ छल-प्रपंच, क़ायदा-क़ानून नहीं सीखा है। यह कलकत्ता है, कलकत्ता शहर, समझीं ? यहाँ रहने के लिए शरम-अरम करने से नहीं चलता। बेशर्म बनना पड़ेगा। मसल है : लाज-लज्जा, भय-- तीनों ग़ायब !'

उसके बाद पता नहीं, बड़े बाबू को क्या याद आ गया। बोले, 'हाँ, अच्छी बात है। पता है, उस दिन तुम्हारे बलरामपुर के एक लड़के को अपने वकील के यहाँ देखा।'

संध्या ने उत्सुक होकर सिर उठाया।

'तुम पहचानो तो शायद पहचान लो। तुम्हारी ज़बानी सुना था। वही जो तुम्हारे बलरामपुर के एक बड़े आदमी हैं, पॉलिटिक्स में उनका बड़ा नाम-धाम है। हरिसाधन चट्टोपाध्याय। जिसने तुम्हारे पिता को चुनाव में हराने के लिए तुम्हारा घर जला दिया था, याद नहीं है ? उन्हीं के लड़के को देखा था। नाम सुना था स्वदेश, या ऐसा ही कुछ ! वह वकील का जूनियर होकर कचहरी जाता है। मैंने ज़रूर अपना परिचय नहीं दिया---देखो तो, कहाँ का पानी कहाँ जा गिरता है ! उसे तुम जानती हो ? देखकर पहचान सकती हो ?'

संध्या ने सिर हिलाया। बोली, 'नहीं।'

'पहले उसे जानती थीं ?'

संध्या ने फिर सिर हिलाया। बोली, 'नहीं।'

बड़े बाबू बोले, 'और वह बात भी तो कितने दिनों की पुरानी है ! तब तुम छोटी थीं। वह भी छोटा था। न पहचानने की ही बात है। अगर उस मुक़दमे में तुमको कठघरे में खड़ा होना पड़ता तो ज़रूर उसे पहचान जातीं। जाने दो, अतहर बाई के मरने से वह झंझट ख़त्म हो गया। मेरा भी वकील का ख़र्च बच गया। तुमको एक बात बताकर सावधान किये दे रहा हूँ। मान लो कि वह अगर कभी तुमसे बात करने आये, अगर पूछे--तुम मुझे जानती हो ? तो तुम कह देना--नहीं, मैं तो आपको नहीं जानती। समझीं, तब पहचान न लेना। ख़बरदार। वकील-मुख्तारों का कभी भी विश्वास न करना। अन्त में जिसे केंचुआ समझोगी शायद साँप निकल

आये। तब उलटे मुसीबत होगी।'

उसके बाद बड़े बाबू बोले, 'अब मैं चलूँ, समझीं! मेरी पत्नी की तबीयत फिर थोड़ी ख़राब हो गयी है। डॉक्टर को घर आने को कहा है। चलूँ।'

उसके बाद फिर मानो कुछ बात याद आयी। बोले, 'ये सब धूर्त लोग ज़ाहिरन तो पॉलिटिक्स करते हैं। अख़बारों में तसवीर छपाते हैं। और तुम्हारी तरह के परिवारों के घर जलाया करते हैं। और पता है, चुनाव के वक़्त यही फिर हमारे दरवाज़े पर रुपयों के लिए आते हैं, विश्वास करोगी? तुम्हारे बाबा को भी मैंने चुनाव के पहले रुपये दिये थे, और उस हरिसाधन चट्टोपाध्याय को भी हज़ारों रुपये मैंने ही दिये थे। तुम्हारे बाबा को रुपयों की कमी हो सकती थी, लेकिन हरिसाधन चट्टोपाध्याय को? बताओ, उसे रुपयों की क्या ज़रूरत थी? और वह अब भी चुनाव के पहले मेरे पास आकर हाथ फैलाते हैं।'

सहसा मेज़ की ओर आँख जाते ही एक चिट्ठी पर बड़े बाबू की नज़र अटक गयी।

'यह चिट्ठी किसने दी? यह चिट्ठी यहाँ कहाँ से आयी?'

लिफ़ाफ़े में मुड़ी-तुड़ी चिट्ठी पड़ी थी। लिफ़ाफ़े पर अतहर बाई का नाम लिखा था। बहुत दिन पहले की चिट्ठी थी। चिट्ठी पर धूल जम गयी थी। मेज़ के एक कोने में उस समय भी और बहुत-से बेकार काग़ज़ों के साथ पड़ी हुई थी। ऊपर अतहर बाई का नाम लिखा था। 'यहाँ यह चिट्ठी कब आयी थी? किसने दी थी? मुझसे तो तुमने कुछ नहीं बताया?'

संध्या बोली, 'इतने दिनों की बात हो गयी, मुझे याद नहीं।'

'याद नहीं माने? घर में कौन आता-जाता है, तुम्हें याद नहीं रहता?'

देवकान्त बाबू बोले, 'जाने दो, आज दोपहर को ही इतनी सजी-बजी हो, कोई आने वाला है क्या?'

संध्या बोली, 'नहीं।'

'तो तुम्हारा इतना साज-श्रृंगार क्यों है? ज़रूर कोई आयेगा।'

कोठरी के अन्दर से स्वदेश सब सुन रहा था। अब उसे लगा कि वह निकलकर उस आदमी को बता दे कि हाँ, वह सचमुच यहाँ आया था। लेकिन झूठ कहने के अपराध में अगर संध्या मुश्किल में पड़ जाये तो? अगर वह संध्या पर कुछ जुल्म और अत्याचार करे तो? उसे लगा कि वह कमरे के अन्दर से ही चिल्लाकर अपना अस्तित्व जता दे। उसके बाद जो हो, सो हो। उससे शायद संध्या के बदले उस पर ही जुल्म हो। तो वह भी अच्छा है। स्वदेश अपने ऊपर ही सारी ज़िम्मेदारी ओढ़ लेगा।

उससे भी तो उसके वावा के पापों का प्रायश्चित करने का उसे सुयोग मिल सकता है।

वड़े वावू ने अव चिल्लाकर पुकारा, 'सरला !'

सरला पास ही कहीं थी। उसके आते ही वड़े वावू ने पूछा, 'हाँ रे, यहाँ वाहरी कोई आदमी आया था या आने की वात है ?'

सरला डर से घवराकर काँपने लगी। वोली, 'नहीं, वड़े वावू। कोई नहीं आया। किसी के आने की वात भी नहीं है।'

'होशियार, ख़ाली मकान है, अच्छी तरह नज़र रखना।'

सरला सिर हिलाकर वोली, 'रखूँगी।'

'हाँ, नज़र रखना। कभी भी वाहरी आदमी इस मकान में न घुसे। मैं जिसको लेकर आऊँ उसके सिवा और किसी भी आदमी को कभी अन्दर न घुसने देना, समझी ?'

सरला वोली, 'मैं तो वड़े वावू, किसी को मकान में घुसने ही नहीं देती।'

'तो यह चिट्ठी यहाँ कैसे आयी ? यह चिट्ठी क्या भूत ले आये ?'

सरला वोली, 'वह वहुत दिन पहले एक आदमी आया था। उस समय अतहर वाई जिन्दा थीं। एक सज्जन यह चिट्ठी दे गये। कहा था कि वे वकील वावू के घर से आये हैं, और यह चिट्ठी देकर चले गये। कहा था—यह चिट्ठी अपनी माँ को दे देना। वही चिट्ठी लेकर मैंने मेज़ पर रख दी थी—उसके वाद ही तो अतहर वाईजी मर गयीं।'

वड़े वावू वोले, 'अब से कोई अनजान आदमी आने पर मुझे ज़रूर ख़वर करना, समझी ?'

सरला वोली, 'मैं वता दूँगी।'

'ख़वरदार, कभी ग़लती न हो।'

'जी मैं कह रही हूँ न कि आपको सव वता दूँगी।'

वड़े वावू वोले, 'हाँ, जो कहा वह याद रखना। अब तू जा।'

उसके वाद संध्या की ओर देखकर वोले, 'सुनो, तुमसे एक बात वता दूँ। तुम्हारी तवीयत तो अब ठीक है ?'

संध्या वोली, 'हाँ।'

'तो वता दूँ। मैं कल शाम को एक आदमी को तुम्हारे पास ले आऊँगा। वहुत छैला आदमी है। ठसाठस पैसे वाला। समझीं ? जिस तरह वह खुश हो, ऐसी कोशिश तुमको करना पड़ेगी। विगड़ने से नहीं चलेगा। इस धन्धे में नयी-नयी आयी हो। सज-सँवरकर तैयार रहना। और जितना भी हो सके तरकीब से रुपये खींच लेना।'

उसके वाद अचानक कुछ याद आया। वोले, 'मुझे जल्दी है। मैं चलूँ। मेरी पत्नी की तवीयत फिर कुछ ख़राव हो गयी है। डॉक्टर आयेगा। दरवाज़े को अच्छी तरह भीतर से ताला लगा लो।'

कहकर फिर न रुके। एकदम जल्दी-जल्दी ज़ीने से नीचे उतर गये। नीचे सड़क पर उतरकर चलते-चलते गली के मोड़ पर आकर कुछ देर पूरव की ओर पैदल चले। देवकान्त वावू जव यहाँ आते गाड़ी को वहुत दूर पार्क स्ट्रीट के मोड़ पर खड़ी कर आते। यही देवकान्त भद्र का नया नियम था। ड्राइवर को वताना ठीक नहीं था कि वावू कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं, किससे मिलते हैं, क्या वातें करते हैं। उसके सिवा जान-पहचान के लोग वहुत वार गाड़ी को भी पहचानते; ड्राइवर को भी पहचान लेते। गाड़ी का नम्वर भी याद रखते!

गाड़ी पर वैठते ही वड़े वावू वोले, 'अव चलो मक़वूल, ज़रा कॉलेज स्ट्रीट की ओर—एक ज़रूरी काम है।

जीवन सदा मृत्यु के आसपास ही मँडराता है। पाप के समीप ही पुण्य रहता है। इसीलिए देखा गया है कि इतिहास में जव मत्स्य-न्याय का युग आया तो साथ-ही-साथ आये ईसामसीह, वुद्धदेव, महावीर, शंकराचार्य, चैतन्यदेव या परमहंस रामकृष्ण। लेकिन जिस तरह मृत्यु की मृत्यु नहीं होती, मृत्युंजय लोगों की भी मृत्यु नहीं होती। इसी से इस युग में भी हरिसाधन चट्टोपाध्याय-से लोगों के घर में स्वदेश चट्टोपाध्याय-से का जन्म होता है। और स्वदेश चट्टोपाध्याय-से लोगों को लेकर भी इसलिए कथा-कहानी लिखी जाती हैं।

कॉलेज स्क्वायर की एक जगह पर आकर वड़े वावू उतर गये। उतर-कर पास के एक हॉल के अन्दर घुस गये। तव मक़वूल अकेले ही गाड़ी के अन्दर वैठा रहा। रास्ते के किनारे क़तार-की-क़तार गाड़ियाँ खड़ी थीं। सव गाड़ियों के मालिक हॉल के अन्दर चले गये थे। लगता था कि सभी मीटिंग में लेक्चर सुन रहे थे। लाउड-स्पीकर की सहायता से अन्दर का भाषण वाहर के लोगों को सुनाया जा रहा था कि जिससे वे लोग भाषण-

सुधामृत से वंचित न रह जायें !

मक़बूल ने गाड़ी के अन्दर उठंगकर एक बीड़ी सुलगायी । बड़े बाबू के आने के पहले ही बीड़ी ख़त्म कर देना होगी । धुआँ खींचने से शरीर में एक अच्छी-सी झुनझुनी पैदा हुई । सहसा लाउड-स्पीकर में एक आवाज़ से मक़बूल के कान खड़े हो गये । बड़े बाबू की आवाज़ है । हाँ, साफ़ बड़े बाबू के गले की आवाज़ है ।

मक़बूल कान खड़े कर बड़े बाबू का भाषण सुनने लगा ।

उस समय बड़े बाबू कह रहे थे : 'जिस हालत से हमारा देश गुज़र रहा है वह असह्य है । जो देश चलाने वाले हैं और जो देश के वासी हैं उनमें दुराचार का व्यापक स्रोत बह रहा है । आज हमें नये सिरे से सोचना पड़ेगा कि यह दुराचार क्यों है, यह दुर्दशा क्यों है ? मानव सृष्टि के आदि से आज तक के समय का जो इतिहास लिखा गया है उसमें मनुष्य के कलंक की तमाम बातें भी जिस तरह लिखी गयी हैं, उसी तरह उसकी बहुतेरे गुणों की बातें भी लिखी गयी हैं । उसमें मुहम्मद तुग़लक के अत्याचार की बातें जिस तरह हैं उसी तरह हैं महाराज अशोक की अभय और अहिंसा की वाणी भी । जिस भारतवर्ष में किसी दिन तथागत बुद्ध, शंकराचार्य, चैतन्यदेव, रामकृष्ण परहंस ने जन्म ग्रहण किया था उसी भारतवर्ष में ही फिर उनके ही निकट पैदा हुए थे महाराज घूसख़ोर नन्दकुमार, घूसख़ोर अमीरचन्द, नवाब मीर जाफ़र-से देशद्रोही । लेकिन आज उसी धर्म के पीठस्थान भारतवर्ष में केवल अधर्म की जय-जयकार है, इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है ? हम सभी ज़िम्मेदार हैं । हमारे पापों से ही हमारी इस मातृभूमि की यह दुर्दशा हो रही है । वही दुर्दशा दूर करने के लिए हमें अपना चरित्र सुधारना होगा । हमें भला बनना होगा; हमें सच्चाई के मार्ग का अनुसरण करना होगा । तभी अधर्म का देश फिर धर्मभूमि में परिणत हो सकेगा । तभी फिर इस देश में बुद्ध, शंकराचार्य, चैतन्यदेव, रामकृष्ण परमहंस के समान महापुरुषों का आविर्भाव सम्भव होगा...।'

मक़बूल गाड़ी में बैठा बड़े बाबू का लेक्चर सुन रहा था, लेकिन लेक्चर का एक अक्षर भी समझ नहीं पा रहा था । सिर्फ़ यही समझ रहा था कि बड़े बाबू बहुत पंडित आदमी हैं । पास की गाड़ी के ड्राइवर से उसने पूछा, 'सुनो भैया, यहाँ क्या हो रहा है ? यह कैसी मीटिंग है ?'

वह आदमी शायद कुछ लिखना-पढ़ना जानता था । बोला, 'तुम देख रहे हो न, लाल कपड़े पर बड़े-बड़े अक्षरों में वहाँ क्या लिखा है ?'

मक़बूल बोला, 'भैया, मैं उर्दू जानता हूँ, बंगला नहीं पढ़ पाता ।'

वह आदमी बोला, 'लिखा है : आर्य-धर्म महासम्मेलन ।'

आर्य-धर्म महासम्मेलन ! मक़बूल ने सुनकर भी बात का सिर-पैर न समझा । बस इतना समझा कि उसका मालिक बहुत विद्वान आदमी है। कलकत्ता शहर का बहुत रईस और ख़ानदानी आदमी है। सहसा बड़े जोरों से तालियों की आवाज़ बहुत देर तक होती रही। तालियों की यह गड़गड़ाहट तारीफ़ में थी। मक़बूल समझ गया कि उसके मालिक के लेक्चर की सब तारीफ़ कर रहे हैं। उसके मालिक की तारीफ़ के माने मक़बूल की भी तारीफ़। ख़ुशी से मक़बूल ने एक बीड़ी और सुलगायी। उसके बाद और ज्यादा उठंग कर आराम से बीड़ी लेकर धुआँ खींचने लगा।

कवियों ने मानव-जीवन की नदी से तुलना की है। जीवन और नदी एक ही समान हैं। किसी दिन किसी पर्वत-कंदरा में जन्म लेकर समुद्र को लक्ष्य कर नदी अपनी यात्रा आरम्भ करती है। कितनी सहजता से, कितने सीधे रास्ते से वह समुद्र में जाकर विलीन हो सकेगी, उसी ओर उसका लक्ष्य रहता है। लेकिन क्या सभी नदियाँ समुद्र में जा मिलती हैं ? मनुष्य का जीवन भी वैसा ही है। सारे मनुष्यों का जीवन ही क्या महाजीवन में जाकर सम्पूर्णता प्राप्त करता है ? मरुभूमि की रेत में जाकर जिस प्रकार बहुतेरी नदियाँ खो जाती हैं, बहुतेरे मनुष्य भी उसी प्रकार संसार की बालुका-राशि में खो जाते हैं। बहुतेरे आदमी भी उसी तरह यात्रा के आरम्भ से ही लक्ष्यभ्रष्ट हो बीच में ही समाप्त हो जाते हैं।

सदर स्ट्रीट के बारह बटा एक पते पर जाकर स्वदेश शायद उसी तरह समाप्त हो गया था। नहीं तो सर्वजय बाबू की तरह इतने बड़े फ़ौज़दारी-वकील, हरिसाधन बाबू की तरह के ऐसे बड़े देश-सेवक, इन सबकी सारी योजनाओं को उसने क्यों व्यर्थ कर दिया ?

सर्वजय बाबू के चेम्बर में उस समय मुवक्किलों की भीड़ थी।

कामकाज में वे चूर थे। सहसा वहाँ हरिसाधन बाबू आ गये।

सर्वजय चौंक पड़े, 'तुम ? यहाँ ? क्या बात है ?'

हरिसाधन बोले, 'तुमसे ज़रा अकेले में एक बात है, बहुत ज़रूरी।'

सर्वंजय ने सभी मुवक्किलों को पास के कमरे में भेज दिया। बोले, 'बताओ, क्या बात है? कोई फ़ौजदारी का मामला-वामला है?'

हरिसाधन बोले, 'न भाई, वह सब-कुछ नहीं है, उससे भी ज़्यादा सीरियस है। अपने बेटे स्वदेश की बात कहने आया हूँ। वह कहाँ है?'

सर्वंजय बोले, 'वह तो कई दिनों से आ नहीं रहा है। मैंने सोचा कि वह बलरामपुर में है, ब्याह आदि के काम से वहीं चला गया होगा।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'अरे नहीं, तो फिर वहाँ से तुम्हारे पास भागा-भागा क्यों आता? तुम्हें तो मालूम है कि इसी अगहन में स्वदेश की शादी होगी। सगाई भी हो चुकी है। तुम तो उसी दिन कलकत्ता चले आये। उसके दूसरे दिन उसने कहा, अभी भी तो क़रीब तीन महीने बाक़ी हैं, उतने दिनों बलरामपुर में बैठे-बैठे क्या करूँगा? वह सुनकर मैंने कहा, तो जाओ, उतने दिनों सर्वंजय के साथ कचहरी आना-जाना। उसके बाद अचानक आज चिट्ठी मिली। उसने लिखा है कि वह शादी नहीं करेगा। यह देखो, यह चिट्ठी है...।'

कहकर लड़के की चिट्ठी सर्वंजय की ओर बढ़ा दी।

उसके बाद बोले, 'अब क्या करूँ, बताओ? इसी से सोचा कि तुम्हारे पास चलूँ, जाकर देखूँ कि तुम को उसकी कोई ख़बर है या नहीं? उसने मुझे बड़ी मुसीबत में डाल दिया है।'

तभी सर्वंजय ने स्वदेश की चिट्ठी पढ़ डाली थी। वह बोले, 'मेरी तो समझ में कुछ नहीं आ रहा है कि उसने ऐसा क्यों किया! मैंने तो उसे आख़िरी बार महीना-भर पहले देखा था। एक चिट्ठी उसके हाथ महीना-भर पहले सदर स्ट्रीट के एक मकान में अपने एक मुवक्किल को पहुँचाने के लिए दी थी। उसके बाद से वह मेरे पास आया ही नहीं। संन्यासी-उन्यासी तो नहीं हो गया? तुम ज़रा उसके मेस के पते पर जाकर देख आओ न!'

'तुम क्या समझते हो कि वहाँ गया नहीं? अभी-अभी वहीं से तो आ रहा हूँ।'

'वहाँ जाकर क्या देखा?'

हरिसाधन बोले, 'वहाँ तो भाई बड़ी गड़बड़ है!'

'क्या गड़बड़ी है?'

हरिसाधन बोले, 'वह सब बताकर तुम्हारा वक़्त नहीं ख़राब करना चाहता। वहाँ तमाम अगले-पगले लोग रहते हैं। पता है, मेरे बेटे ने वहाँ एक पागल पाल रखा है। मोटी बात यह है कि सुना कि मेरा बेटा अब वहाँ नहीं रहता। और मेस में किसी को पता भी नहीं कि वह कहाँ गया। वह

किसी को कुछ ख़बर नहीं दे गया।'

सर्वजय बोले, 'तब क्या होगा ? भाई, मेरा ख़याल है कि वह संन्यासी बन गया है। मैं तो भाई लोगों को चराकर खाता हूँ; आदमी पहचानता हूँ। स्वदेश कोई ग़लत काम नहीं कर सकता है।'

हरिसाधन बोले, 'आदमी इससे ज़्यादा और क्या ग़लत काम करेगा ? मैं यही सोच रहा था कि तुम्हें कैसे मुँह दिखाऊँगा ! तुम्हारी इकलौती लड़की है। मेरे बेटे से उसका ब्याह होगा, यह शादी कितने बरस पहले ठीक हुई थी ! और इसीलिए तुमने अपनी बेटी के लिए कहीं कोई वर नहीं खोजा। इस वक़्त अगर सचमुच यह शादी न हो तो मैं तुमको कैसे मुँह दिखाऊँगा ? और उसके सिवा, मेरी अपनी भी तो एक लड़की है। मुझे उसकी भी तो शादी करना है। उसकी भी फ़िक्र तो मुझे करना होगी।'

सर्वजय बोले, 'अरे, तुम्हारी बेटी की और शादी की फ़िक्र ! तुम्हारी बेटी देखने में अच्छी है। तुम्हारे पास रुपये हैं, जो भी देखने आयेगा एक-दम झपटकर ले लेगा। लड़की की शादी के बारे में तुम फ़िक्र मत करो। उसके सिवा तुमने लड़की को अच्छी तरह लिखाया-पढ़ाया है—एक बार वर-पक्ष को पता चलने की ज़रूरत है। हाँ, मेरी जयन्ती का क्या होगा, मैं यही सोच रहा हूँ।'

हरिसाधन बोले, 'अरे, यह तुमने क्या कहा ! रुपयों से क्या सुख ख़रीदा जाता है ? वही अगर होता तो तमाम बड़े-बड़े लोगों की लड़कियाँ सुखी होतीं।'

उसके बाद ज़रा रुककर बोले, 'हटाओ, मैं अब उठूँ। तुम्हारे काम में बहुत हर्ज कर दिया।'

सर्वजय भी उठ खड़े हुए। बोले, 'आख़िर स्वदेश मिला या नहीं, इसकी मुझे ख़बर दे जाना। मैं फ़िक्र में रहूँगा।'

इसके बाद और बातें न हुईं। हरिसाधन चले गये। मुवक्किल फिर आकर सर्वजय बाबू को घेरकर बैठ गये। सारी पृथ्वी के जो न्याय और अन्याय, पाप और पुण्य, अविचार और सुविचार का संघर्ष चल रहा है वह क़ानून जानने वाले के चेम्बर में जाकर जिस तरह प्रत्यक्ष होता समझते हैं, इस तरह और कहीं जाने पर सम्भव नहीं। शायद वह न्यायालय में भी दुर्लभ है !

अचानक तभी ही एक टेलीफ़ोन आया।

'कौन ?'

'मैं देवकान्त भद्र बोल रहा हूँ।'

सर्वजय बाबू का चेहरा हलकी मुसकराहट से खिल उठा ! बोले, 'कल के अख़बार में आपका लेक्चर पढ़ा।'

देवकान्त बाबू बोले, 'कौन-सा भाषण ?'

'वही जो कॉलेज स्क्वायर के आर्य-धर्म महासम्मेलन में आपने दिया था। मुझे बहुत अच्छा लगा।'

'छोड़ो। आपको अच्छा लगा, उससे मुझे खुशी हुई। अब काम की बात कह रहा हूँ। मेरे मुक़दमे की तारीख़ तो पड़ी है, उस दिन नहीं हो सकेगा। आप वक़्त ले लें। मुद्दई को कुछ असुविधा है।'

'क्यों ? क्या असुविधा है ?'

देवकान्त बाबू बोले, 'वह फ़ोन पर नहीं बताया जा सकता। मैं आपके पास आकर सब समझाकर बता दूँगा।'

'अच्छा, ठीक है।' कहकर सर्वजय बाबू फिर मुवक्किलों को ले बैठे।

देवकान्त भद्र एकदम सज्जन व्यक्ति हैं। उनकी बात की क़द्र है। जो कुछ करते हैं सोच-समझकर, दिमाग़ ठण्डा रखकर करते हैं। ठेकेदारी का पैतृक व्यवसाय था। उसी दौलत से उन्होंने घर-गाड़ी और जायदाद खड़ी की। उसके बाद जो-कुछ था चक्रवृद्धि के भाव से, क्रम से बढ़ता ही गया। जो मकान बनवाये वे सभी पुरानी अँग्रेज़ बस्ती में। एक भी किरायेदार नहीं बैठाया। बसायी थीं—कुछ घरवालियाँ। कलकत्ता कारपोरेशन से शुरूकर इनकम टैक्स ऑफ़िस तक सब चौकियों पर अपने लोग हैं। वे ही सारा काम कर देते हैं। खुद वह भाषण देते फिरते हैं। संस्कृत-संस्था या आर्य-धर्म सम्मेलन की तरह बड़ी-बड़ी सभाओं में वह भाषण देते मिलेंगे। वहाँ भी उनके किराये के लोग ही रहते। वे उनके भाषण के वक़्त नियमपूर्वक तालियाँ बजाते।

इन सब कामों में उनका दान सर्वजन-विदित है। वह गृहस्थ हैं। क़ायदे से उनके पत्नी, कन्या, पुत्र, दामाद हैं। उनके भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर उठाकर ही वे खुश नहीं हैं—उनके बाद की पाँच पीढ़ियाँ भी निश्चिन्त रहें, इसकी व्यवस्था भी उन्होंने कर रखी है।

फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं है। बाद की दस पीढ़ियों तक निश्चिन्त हों जायें, उसके लिए ही वह प्रयत्न करते जाते हैं।

उनका ठेकेदारी का काम घाटे का है। वह जब मिले तो मिले। असली कारबार की बात यहाँ बताता हूँ। कैसे अद्भुत और कैसे विचित्र साधन से वह अपना शिकार तलाश करते, उसका एक उदाहरण देना ही यहाँ काफ़ी होगा। देवकान्त बाबू के आदमी इधर-उधर सब ओर घूमते। बाज़ाब्ता उनका यही काम था। कभी कलकत्ता में, कभी गाँवों में, कभी फिर कलकत्ता या बंगाल के बाहर। इसी तरह घूमते-घूमते ही एक दिन शाम को संध्या से उनकी मुलाक़ात अतहर बाई के घर हो गयी।

अतहर बाई के घर एक कम-उम्र की लड़की है, यह ख़बर उन लोगों को किसी अनजाने सूत्र से मिली थी। ख़बर मिली कि अतहर बाई एक लड़की को पाल रही है।

एक दिन एक मुजरे का बहाना कर दो आदमी अतहर बाई के घर गये।

जाकर बोले, 'मुजरा करेंगी, बाईजी ?'

अतहर बाईका पेशा ही था गाना सुनाना, मुजरे करना। 'तुम्हें मैं गाना सुनाऊँगी। और तुम मुझे बदले में उजरत देना।' देश में जब रुपये देने वाले लोगों की कमी नहीं; गाना सुनने के नशे वाले लोगों की भी कमी नहीं है। आदि काल से यह पेशा कलकत्ता में चला आ रहा है। जब राजे-रजवाड़ों-ज़मींदारों के दरबारों की प्रतिष्ठा थी, तब इन बाई लोगों का कारबार ज़ोरों पर था। उस वक़्त गौहरजान, मल्काजान की-सी बाई कलकत्ता की सड़कों पर घोड़े वाली टमटम पर चढ़कर घूमती थीं। उन दिनों देश में गिफ़्ट टैक्स नहीं था। किसी तरह का इनकम टैक्स भी न था। गाना सुनकर एक मकान दे देना मामूली-सी बात थी। ऐसा भी सुना गया कि एक रात में एक रईस की जेब मियाँ की मल्हार का बढ़िया राग सुनने के लिए ख़ाली हो गयी थी। कहा जाता है कि लखनऊ के नवाब वाजिद-अली के ज़माने से ही बड़े लोगों के घरानों में यह रिवाज चला आता था। इसीलिए लाल-बाज़ार, बहू-बाज़ार के अंचल में बाई लोगों की उन दिनों शानदार बस्ती थी। इतिहास बताता है कि बाबू-कल्चर का केन्द्र बम्बई नहीं, मद्रास नहीं, दिल्ली नहीं—केन्द्र था एकमात्र यही कलकत्ता। पाप करने के लिए भी कलकत्ता आना पड़ता, पुण्य करने के लिए भी इसी कलकत्ता में ही आना पड़ता। वही समय था बाबू-कल्चर का स्वर्ण युग !

उसके बाद कितना वक़्त बीत गया। राज बदल गया, इतिहास बदल गया। भूगोल बदल गया। लोकसभा में कितने नये क़ानून पास हो गये।

इनकम टैक्स से शुरू कर गिफ़्ट टैक्स लगने तक कितने लोगों के त्यौहार और कितनों की बरबादी हुई, इसकी सीमा नहीं। लेकिन सबसे ज्यादा जिनकी हानि हुई वे हैं ये बाई लोग। इस ज़माने में इनकी संख्या कम हो गयी है, लेकिन जो कल्चर अभी भी अन्तिम झलक दिखाता हुआ बच रहा है वह इसी शहर में फैली-बिखरी अतहर बाइयों के कारण ही है।

देवकान्त भद्र ने जिस दिन पहले-पहल आकर देखा, उस दिन हक्के-बक्के रह गये थे। इस तरह की अमूल्य निधि किसी बाई की हिफ़ाज़त में है और उसके अपने किसी काम नहीं आ रही थी!

लेकिन अतहर बाई बहुत सख्त चीज़ थी। मुड़ जायेगी, लेकिन टूटेगी नहीं।

जो टूटते नहीं, सिर्फ़ मुड़ते हैं वे ही हमेशा जीतते हैं, ऐसी कोई बात नहीं है। उनसे भी और भी कठोर लोग हैं जो न तो मुड़ते हैं, न टूटते हैं।

देवकान्त भद्र उसी ज़ात का आदमी है। देवकान्त भद्र के धैर्य की सीमा नहीं। वह जानते हैं कि कार्य-सिद्धि करने के लिए अधीरज होने से काम नहीं बनता। धीरे-धीरे इन्तज़ार करना पड़ता है।

कई बार आने पर ही देवकान्त भद्र की समझ में आया था कि लड़की बोल नहीं सकती। यह अच्छा ही है। गरदन में आग से जलने का एक निशान है। वह हुआ करे, उससे जवानी का जलवा कम नहीं होता, बल्कि और बढ़ जाता है। इसीलिए देवकान्त भद्र को काफ़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी।

सारी प्रतीक्षाओं, का आना एक दुर्घटना से हुआ। शायद ऐसा ही होता है। मनुष्य जब सब ओर से अपने को निरापद समझता है, वही आश्रय सहसा एक दिन क्यों काल-वैशाखी[1] में छिन्न-भिन्न हो जाता है—उसके कारण की कोई व्याख्या नहीं कर सकता।

इसीलिए जब अतहर बाई की आकस्मिक मृत्यु की ख़बर देवकान्त भद्र के कानों में पड़ी तो उस घर में आकर पतित-पावन की भूमिका में

1. चैत्र-वैशाख में संध्या के समय आने वाला आँधी-पानी।

उतर पड़े। वोले, 'वेटी, तुम्हें डर की क्या वात है ? मैं तो हूँ।'

संध्या गूँगी वनकर देवकान्त भद्र के मुँह की ओर देखती रही। पहले भी उसकी ज़बान से किसी दिन कोई वात नहीं निकली थी; उस समय भी उसके मुँह से कोई वात नहीं निकली। लेकिन क्या करे, यह उसकी समझ में न आया। उसके वाद से जैसा चल रहा था उसका जीवन वैसा ही चलने लगा। अतहर वाई की आकस्मिक मृत्यु से उसकी कोई तुरत हानि नहीं हुई। देवकान्त भद्र ने उसे किसी प्रकार की कमी नहीं महसूस होने दी।

लेकिन जव देखा गया कि उड़ने वाला पक्षी ज्यादा पालतू हो गया है तो वह एक संभ्रान्त अतिथि को लेकर वहाँ पहुँचे।

वोले, 'बेटी, इनकी ज़रा ख़ातिर करो। यह कलकत्ता के गणमान्य विशिष्ट व्यक्ति हैं।'

सो भले आदमी जैसे विशिष्ट थे, उस पहली रात को ही उसका सवूत मिल गया। घृणा से, विरक्ति से कहीं लड़की कुछ वुरा कर बैठे, उसके लिए पहरे का इन्तज़ाम देवकान्त वाबू ने पहले से ही कर रखा था। इसी से कोई गड़वड़ी न हुई। लेकिन उसके वाद वाले दिन भी वही हुआ, उसके वाद के दिन भी वही। अर्थात अतहर वाई की मौत के वाद के दिन से ही प्रायः सन्ध्या के जीवन में एक और नया अध्याय शुरू हो गया। रोज़ ही नयी-नयी शकलें और रोज़ ही वही पुरानी घृणा और पुरानी विरक्तिकर वितृष्णा का सामना करना पड़ता था।

इसी तरह एक महीने से ज्यादा बीत गया।

उस दिन एक पार्टी आयी। पुरानी पार्टी। ठहरा था चौरंगी के एक होटल में। विदेशी आदमी था। सफ़ेद चमड़ी की जात का आदमी। बहुत-से डॉलरों का मालिक। इण्टरनेशनल फ़्लाइट से सारी दुनिया घूमता-फिरता था। केवल दो दिनों के लिए कलकटा में रुका था। तवीयत में आ गयी सदर स्ट्रीट की औरत की वात! और तभी यथास्थान पर टेलीफ़ोन हुआ।

'हलो! मैं डिक बोल रहा हूँ। मेरी याद है ? डु यू रिमेम्बर मी ?'

देवकान्त वावू पहचान गये। बोले, 'डिक! अरे कैसे हो? कव आये ?'

'यही अभी। एक मिनिट भी नहीं हुआ।'

डिक सामान्यतः वाहर जाकर किसी अनजान जगह पर नहीं जाता था। वह ब्लैकमेल से बहुत डरता था। उस बार इस पार्टी से इतनी घनिष्ठता हो गयी थी कि वह भुलायी नहीं जा सकती। असली स्कॉच पिलायी थी, एकदम रियल स्कॉच।

पूछा, 'सदर स्ट्रीट पर वह तुम्हारी फैंसी टॉय है न ?'

देवकान्त वावू बोले, 'है, है, डोन्ट वरी। यू शैल गेट हर। मैं आज ईवनिंग में जा रहा हूँ। तैयार रहना।'

इसी शाम को गड़बड़ हुई। डिक को लेकर देवकान्त वावू ने सदर स्ट्रीट के बारह वटा एक नम्बर के घर की ओर प्रस्थान किया। ख़ास विलायती पार्टी। इन सब पार्टियों को जैसे-तैसे हैंडल नहीं करना था। ये लोग कभी-कभी ही इंडिया में थोड़ी-बहुत मौज मानने आते। ये लोग खुले हाथों डॉलर ख़र्च करते। ये लोग जहाँ जाते उस देश के स्लम एरिया को लेकर अपने देश के अख़वारों में लेख लिखते!

देवकान्त वावू बोले, 'अव की कलकत्ता से कहाँ जाओगे ?'

डिक बोला, 'उड़ीसा जाऊँगा। वहाँ जाकर पुरी देखूँगा। उसके वाद जाऊँगा महावलिपुरम्। उसके वाद विवेकानन्द रॉक देखने जाऊँगा। वहाँ से जाऊँगा केराला—इंडिया का वेनिस। उसके बाद जाऊँगा वैंकाक।'

डिक का वड़ा लम्वा प्रोग्राम था। वरस-भर रुपये जमाकर वह दुनिया देखने निकल पड़ता।

देवकान्त वावू बोले, 'तो इतना पैसा वरवाद करके तुम लोगों को क्या फ़ायदा होता है, मिस्टर डिक ?'

डिक हँस पड़ा। बोला, 'रुपया जमा करके ही क्या फ़ायदा होता है ? मरने के साथ ही तो सब ख़त्म...।'

डिक की अजीब फ़िलॉसोफ़ी थी। देवकान्त वाबू ने फिर पूछा, 'इसीलिए शायद तुम लोगों में से इतने हिप्पी हो गये हैं ?'

डिक बोला, 'यह किसने कहा कि सिर्फ़ हमारे देश में ही हिप्पी हैं ? तुम्हारे देश में नहीं हैं ? तुम्हारा इंडिया तो हिप्पियों का कैपिटल है। राजधानी ! इस इंडिया में ही तो पहला हिप्पी हुआ था। तुम्हारे इंडिया का गोटामा बुड्डा ही तो वर्ल्ड का ग्रेटेस्ट हिप्पी था। तुम लोगों के गौतम वुद्ध ही तो संसार के श्रेष्ठ हिप्पी थे।'

वातों के वीच में ही मक़वूल ने गाड़ी रोक दी। यह पार्क स्ट्रीट था। मक़वूल यहाँ गाड़ी रखेगा। उसके बाद पैदल चलकर सदर स्ट्रीट जाना होगा। डिक भी गाड़ी से उतरा। चारों ओर शाम हो रही थी। पिछले रोज संध्या को सब-कुछ सिखा-पढ़ा दिया गया था। पार्टी के पास से लड़की कुछ खींच ले। उसे भी तो अपना भविष्य देखना है। इन सब पार्टियों को खुश कर सकने पर रातों-रात वहुत वड़ी आदमी बन सकती है। वहुतेरी ऐसी वन भी गयी हैं। वहुतों ने पासपोर्ट बनवाकर विदेशों में

सैर की और सफलता पायी। इसी तरह कलकत्ता से कितनी ही लड़कियाँ वेरूत गयीं। कुवैत गयीं। मनीला गयीं। जाकर वड़े आराम से रह रही हैं।

डिक ने पूछा, 'इसको तुमने कैसे खोज निकाला, मिस्टर भद्र ?'

मिस्टर भद्र बोले, 'वह बहुत लम्वा क़िस्सा है, मिस्टर डिक। पता है, इंडियन लोग वहुत वदमाश होते हैं। एक और आदमी ने उसके घर में आग लगाकर उसे जला देना चाहा था।'

'माई गॉड! उसके वाद ?'

'उसके बाद उसी आग में माँ-वाप-ग्रैंडफ़ादर सभी जल मरे। बस यही लड़की वच रही। तब उसी हालत में मेरे पास आकर रोने लगी। मैं क्या करता! लड़की को देखकर मुझे वहुत दया आयी। मैंने तब उस पर बहुत-सा रुपया ख़र्च कर उसे लिखना-पढ़ना सिखाया। यानी आदमी वनाया। अव तुम लोग आते हो, इसी से तुम लोगों के पैसों से उसका निर्वाह होता है। आजकल वही उसकी एकमात्र इनकम है। तुम अगर कर सको तो उसकी कुछ मदद कर सकते हो। वेरी पूअर गर्ल! इस तरह की कितनी लड़कियाँ इंडिया में हैं, इसका कोई हिसाव है ?'

तभी सदर स्ट्रीट का मकान आ गया। दोनों ही सदर दरवाज़े से मकान में घुसे। उसके बाद एक-एक कर ज़ीना चढ़ ऊपर गये। ऊपर जाकर देवकान्त वाबू हक्के-वक्के हो गये। दरवाज़ा विलकुल पट खुला था। चारों ओर अँधेरा था। देवकान्त बाबू ने अँधेरे में टटोलते-टटोलते अन्दर जाकर स्विच दवाकर रोशनी की। अजीव ताज्जुब है! सव लोग कहाँ गये ? 'सरला! सरला!' पुकारने पर किसी ने जवाव नहीं दिया। आलमारी, बॉक्स, पिटारियाँ—सव मुँह वाये खुले थे। पागलों की तरह चीख़कर देवकान्त वाबू ने पुकारा। कहीं कोई न था। सब ख़ाली। वे लोग सारी क़ीमती-क़ीमती चीज़ें लेकर भाग गये थे। ताज्जुब है!

डिक ने पूछा, 'वह गर्ल कहाँ गयी, भद्र ? वैनिश्ड ?'

देवकान्त वाबू बोले, 'नहीं, नहीं। भागेगी क्यों ? लगता है कि पड़ोस के मकान में घूमने गयी है। चलो, रिपन स्ट्रीट में मेरा एक और मकान है। शायद वह वहीं चली गयी हो। मैंने तो पहले से अपायंटमेंट किया नहीं था। चलो।'

क्रोध, क्षोभ और अपमान में उस समय देवकान्त बाबू उबल रहे थे, फूलकर कुप्पा हो रहे थे और जल रहे थे। उसकी ऐसी हिम्मत! इतनी हेंकड़ी! ऐसा विश्वासघात!

रिपन स्ट्रीट के दरवाज़े पर घंटी बजते ही वह खुल गया। एक हँसमुख

लड़की सामने निकल आयी। डिक को देखते ही हँसते-हँसते बिलकुल लोट-पोट हो गयी।

देवकान्त बाबू ने परिचय करा दिया। उसके बाद विस्तृत व्याख्या कर समझा दिया—'यह गर्ल कैलकटा यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट है। वेरी इंटेलिजेंट ऐंड क्लेवर।'

साहब पिघल गये। देवकान्त बाबू खुश हुए। काम बन गया। एक झलक हँसी से ही साहब को बस में कर लिया। अब कोई ख़तरा नहीं है। धीरे-धीरे विदा लेकर वहाँ से देवकान्त बाबू चले आये। लेकिन बाहर आते ही फिर याद आ गया। फिर मन-ही-मन ग़ुस्से में फूलने लगे। फूलने लगे और जलने लगे।

बाहर चलते-चलते फिर पार्क स्ट्रीट में खड़ी गाड़ी पर बैठ गये। उसके बाद बोले, 'मक़बूल, ज़रा पार्क स्ट्रीट के थाने तो चल! एक रिपोर्ट दर्ज कराना होगी।'

मक़बूल ने गाड़ी चला दी।

एक दिन रोम शहर में आग लगी थी। वह एक ऐतिहासिक घटना है। और रोम का सम्राट नीरो उस समय खुशी में उस आग के झोंकों की तालों पर बेला बजा रहा था। लेकिन बंगाल के ऐसे छोटे गाँव बलरामपुर में जिस दिन एक घर में आग लगी थी, उस दिन आँखों की ओट जो आदमी हँस रहा था उसके नाम का किसी को पता नहीं चला। सिर्फ़ एक आदमी जानता था। लेकिन वह उस समय कहाँ था?'

वह जहाँ भी रहे, लेकिन हरिसाधन बाबू फ़िक्र में पड़ गये थे। उनके पास धन है; सम्मान है; पुलिस उनकी सहायक है। इसलिए उनको कौन छू सकता है? किसकी गरदन पर कई सिर हैं? पहले-पहले उस बात पर विधान सभा में सवाल उठा था; तरह-तरह का शोर मचा था। लेकिन पुलिस-रिपोर्ट मिलने के बाद सब ठंडा पड़ गया था। विरोधियों का सारा विद्वेष दबा दिया गया था—बदनामी की सभी बातें भी।

ऐसा ही होता है। सिर फोड़कर मरने पर भी बड़ों के आगे छोटों की

सारी शिकायतों का कुछ प्रतिकार नहीं होता। अगर कोई प्रतिकार चाहता है तो वह दूसरे मार्ग से आता है।

संध्या ने वही मार्ग पकड़ा था। बड़े अप्रत्याशित भाव से वह मार्ग उसके आगे आ गया था। उस दिन फिर जब दरवाज़े की घंटी बज उठी थी तो सरला ने दरवाज़ा खोल दिया था।

संध्या ने पूछा, 'कौन है, री सरला? फिर कौन आया है?'

सरला बोली, 'फिर वही आदमी है, दीदी।'

'वही आदमी माने? कौन आदमी?'

सरला बोली, 'वही जो एक दिन सवेरे आया था। वकील बाबू की चिट्ठी लेकर।'

सरला की बात सुनकर संध्या चौंक पड़ी। उठकर खड़े होते ही जो आदमी कमरे में आया वह और कोई नहीं, स्वदेश था।

'यह क्या, तुम? फिर आये? तुम्हारी यह कैसी शकल हो गयी है?'

स्वदेश बोला, 'तुम्हारा कमरा छोड़कर चले जाने के बाद से मैं इस एक महीने बस पागलों की तरह सड़कों पर घूमता फिरा हूँ। मैं कुछ तय नहीं कर पा रहा हूँ। लगता है कि मैं सचमुच पागल हो जाऊँगा। बता सकती हो, मैं क्या करूँ?'

संध्या बोली, 'तुम्हें बुख़ार-उख़ार तो नहीं हुआ है? देखूं?'

कहकर संध्या स्वदेश के माथे पर हाथ रखकर बदन का ताप देखने लगी। लेकिन स्वदेश ने संध्या का हाथ झट से हटा दिया।

संध्या ने डर के मारे हाथ हटा लिया। लेकिन स्वदेश ने ज़बरदस्ती उसका हाथ अपने हाथ में पकड़ रखा। स्वदेश की आँखों की ओर देखकर वह समझ गयी कि उनमें तूफ़ान का संकेत है। बोली, 'छोड़ो, हाथ छोड़ दो।'

स्वदेश बोला, 'नहीं।'

संध्या धीमी आवाज़ से बोली, 'तुम क्या करते हो? देख रहे हो, सरला बाहर है?'

स्वदेश बोला, 'नहीं, मैं किसी तरह नहीं छोड़ूँगा। पहले कहो कि मेरी बात मानोगी?'

'क्या बात?'

स्वदेश बोला, 'पहले कहो, मेरी बात मानोगी?'

'पहले बताओ, तुम्हारी बात क्या है?'

स्वदेश बोला, 'मैं इस पूरे महीने-भर सोचता ही रहा हूँ। सोच-सोचकर मेरा दिमाग़ गरम हो गया है। आज बहुत देर तक गंगा के किनारे

जाकर बैठा रहा। तुम्हें मालूम है, मेरे साथ जयन्ती की शादी का सब ठीक-ठाक हो गया है।'

संध्या बोली, 'वह तो मुझे मालूम है। वह तो बचपन से ही तय है।'

'न, पक्की सगाई भी हो गयी है। मैं इस वक़्त बात से ही नहीं बँध चुका, व्रत-बद्ध भी हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं जो करने जा रहा हूँ वह सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी ग़लत है, मानवीय न्याय की दृष्टि से भी ग़लत है। लेकिन मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया है, मैं वह शादी नहीं करूँगा।'

'यह कैसी बात है ?'

स्वदेश बोला, 'हाँ, सब-कुछ जानने के बाद वह शादी करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। तुम पर मेरे बाबा ने जो जुल्म किया है उसका प्रतिकार मुझे करना ही पड़ेगा। और वह अगर सम्भव न हो तो मैं फिर घर नहीं लौटूंगा।'

संध्या बोली, 'घर न लौटकर कहाँ जाओगे ? मेस में ही रहोगे !'

'न, उस मेस में भी मैं लौटकर नहीं जाऊँगा।'

'तो क्या करोगे ?'

स्वदेश बोला, 'वह नहीं जानता। फिर, उसके सिवा जीवित रहने की भी मेरी इच्छा नहीं है। इस दुनिया में ज़िन्दा रहने से क्या फ़ायदा है ? लगता है कि यह दुनिया ज़िन्दा रहने लायक़ है ही नहीं। यहाँ एक आदमी भी नहीं जिसे कि इंसान कहा जाये। मेरे जो सीनियर वकील हैं, देखता हूँ कि वह केवल रुपयों को ही पहचानते हैं। उनके निकट रुपयों के सिवा बाक़ी सब तुच्छ है। जान-बूझकर वह ऐसे आदमी का भी मुक़दमा ले लेते हैं जो हत्यारा हो। कारण बस रुपया है। और तुम्हारे देवकान्त बाबू, एक ओर तो इतने बड़े लड़कियों के व्यापारी हैं, और दूसरी ओर 'आर्य-धर्म सम्मेलन' में लेक्चर देकर वाहवाही लूटते हैं ! और अपने बाबा की बात भी कहूँ। वह अपने स्वार्थ के लिए सर्वजय बाबू की बेटी से मेरी शादी कर रहे हैं। उसके बाद अपनी बात सोचो। आज जो तुम्हारी यह हालत है उसके लिए मेरे बाबा ही तो जिम्मेदार हैं। तुम ही बताओ, इसके बाद भी कोई समझदार आदमी इस दुनिया में जिन्दा रह सकता है ? बताओ, चुप क्यों हो ? जवाब दो।'

संध्या मन लगाकर स्वदेश की बातें सुन रही थी। कोई भी बात उसके मुँह से नहीं निकल रही थी।

'जाने दो, तुम जब कुछ कहतीं नहीं, तो लगता है कि मैं यों ही तुम्हारे पास आया। जितनी देर बाहर रहा, सिर्फ़ तुम्हारी शकल ही मेरी आँखों

के आगे रही। सोचा था कि तुमसे मुझे कुछ आशा-सान्त्वना मिलेगी। सो तुम भी जब उसी दल में हो तो मेरे यहाँ खड़े रहने से क्या फ़ायदा? मैं चला...।'

कहकर झटपट दरवाज़े के बाहर चला गया। जाकर एकदम ज़ीने से तड़तड़ नीचे उतरने के लिए क़दम बढ़ाये।

पीछे से संध्या ने पुकारा, 'सुनो,ज़रा सुन जाओ।'

स्वदेश ने पीछे घूम मुँह उठाकर कहा, 'कुछ कहना है?'

'हाँ, तुमने दिन-भर कुछ खाया नहीं, मैं समझ गयी हूँ। आओ, ज़रा अन्दर आओ।'

स्वदेश अन्दर गया। संध्या ने दरवाज़े पर साँकल लगा दी। बोली, 'इस तरह ख़फ़ा होकर मत जाओ। तुम्हारी क्या हालत हो गयी है, जाकर ज़रा शीशे में तो देखो।"

'यही बात कहने के लिए क्या तुम मुझे बुलाकर लायी हो?'

संध्या बोली, 'देखो, मैं तो पहले ही अपनी मुसीबतों में परेशान हूँ। उस पर तुम भी मुझे इस तरह कष्ट दोगे? तुममें कुछ दया भी नहीं है?'

स्वदेश बोला, 'लेकिन मुझ पर किसने दया दिखायी है कि मैं तुम पर दया करूँ?'

संध्या बोली, 'लेकिन जयन्ती? सर्वंजय बाबू की बेटी? उसने क्या किया है? उस पर तुम क्यों ऐसा अत्याचार कर रहे हो? वह तो तुम्हारे लिए ही इतने दिनों से प्रतीक्षा किये बैठी है। उससे तुम्हारा ब्याह होगा, इसीलिए तो सगाई भी हो गयी है। उसके लिए तुम क्या करोगे? उससे अगर तुम अब शादी नहीं करोगे तो सगाई के पहले ही कह सकते थे, तब फिर तुम्हारी कोई ज़िम्मेदारी न रहती।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन उस वक़्त तो कुछ पता नहीं था। तब तो मालूम नहीं था कि मेरे बाबा ने ही तुम्हारा मकान जलाया था।'

संध्या बोली, 'लेकिन उसका तो कोई प्रमाण भी नहीं है। मैं ही उसका कोई प्रमाण कहाँ दे सकूँगी? सिर्फ़ मेरी बात सुनकर ही तुम विश्वास करोगे?'

स्वदेश बोला, 'तुम्हारा विश्वास अगर नहीं करता, तो फिर तुम्हारे पास ही लौटकर क्यों आया? और अपने बाबा को तो मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। मैं तो छुटपन से ही अपने बाबा को देखता आया हूँ। बाबा की बैठक में किसके साथ क्या बातें होतीं, माँ के साथ रात को क्या बातें होतीं, वे सब तो मैंने अपने कानों ही सुनी हैं। बीच-बीच में एक-एक कर काँग्रेस की कान्फ्रेंस हुईं और मेरे इन्हीं बाबा ने ट्यूबवेल से या बाँस के ठेके

से लाखों रुपये कमाये। और कितने प्रमाण चाहिए ? माँ के साथ इस पर बाबा से बहुत बहस हुई। बाबा समझते कि मैं बच्चा हूँ; मैं सब-कुछ नहीं समझता। यह ठीक है कि उस वक़्त मैं वह सब गहराई से नहीं समझता था। लेकिन अब सोचता हूँ कि बाबा के लिए सब सम्भव है। अब सोचता हूँ, उस चोरी के पैसे से ही मेरी लिखाई-पढ़ाई हुई है। उसी पाप के रुपयों से ख़रीदा चावल, दाल, मछली खाकर ही मैं बड़ा हुआ हूँ। इस पाप का बोझ अगर मैं नहीं उतारूँगा तो कौन उतारेगा ? अब अपने ऊपर भी इसीलिए मुझे नफ़रत हो रही है। लगता है, मेरे खून में भी शायद वही पाप बह रहा है।'

संध्या बोली, 'लेकिन उसके लिए तुम अपने को क्यों ज़िम्मेदार समझते हो ?'

'मैं अगर उन पापों का प्रायश्चित न करूँ तो और कौन करेगा ? बाप के पुण्य का फल अगर बेटा पाता है तो बाप के पापों का फल भी तो बेटे को ही भुगतना पड़ेगा। इसीलिए मैंने निश्चय किया है कि मैं अकेले ही इसका प्रायचिश्त करूँगा। मैं सब-कुछ छोड़कर कहीं चला जाऊँगा। ऐसी जगह जाऊँगा जहाँ आज से किसी को पता न चले।'

'तुम भाग जाओगे ? प्रतिकार नहीं कर सकते हो, कम-से-कम प्रतिवाद तो करोगे !'

स्वदेश बोला, 'इसे भागना बताकर जो कह रही हो वह नहीं है, संध्या। मैं इस समय एकाग्रचित्त हो, दूर जाकर सोचना चाहता हूँ कि किस तरह इसका प्रतिकार किया जाये। उसके बाद अगर किसी दिन इसका कोई समाधान पा सकूँगा तो लौट आऊँगा।'

उसके बाद थोड़ा रुककर बोला, 'मैं चलूँ ?'

संध्या अब सहसा पास चली आयी। बोली, 'मेरी एक बात मानोगे ?'

'क्या ?'

'मुझे अपने साथ ले चलोगे ?'

स्वदेश भौंचक्का हो गया। बोला, 'तुम्हें ? तुम मेरे साथ चलोगी ?'

संध्या बोली, 'बताओ न, दुनिया में मेरा और कौन है जो मुझे जाने से रोके ? मेरा मन अपना कहने को तो कोई नहीं है।'

'लेकिन तुम्हारे मालिक ? तुम्हारे बड़े बाबू ? अतहर बाई की मृत्यु के बाद इतने दिनों तक खिला-पिलाकर जिन्होंने आदमी बनाया, यह सुख, यह विलास, यह ऐश्वर्य, और आराम दिया है, वह तुम्हें छोड़ेंगे ? ज़रा देर पहले तुम्हारी कोठरी में छिपा था। सारी बातें तो मैंने सुनीं। देखा तो कि वहाँ ढेरों विलायती शराब की बोतलें रखी हुई हैं। सभी तो

तुम्हारे पेट में गयी हैं। यह नशा क्या तुम जरा-सी वात में छोड़ सकोगी ?'

संध्या बोली, 'तुम ठीक ही कह रहे हो, स्वदेश-दा। सचमुच वे मेरे पेट में गयी हैं। लेकिन उसके लिए कितना दाम चुकाना पड़ा, वह जानते हो ?'

'नहीं पता। सुना है। सुना है कि एक सौ, दो सौ, तीन सौ रुपये तक एक-एक वोतल के दाम हैं।'

संध्या बोली, 'तव तुम ख़ाक जानते हो ! तुमको अगर मालूम होता तो यह वात न कहते। एक सौ, दो सौ, तीन सौ रुपयों से भी इनका दाम ज्यादा है। अगर विश्वास न हो तो यह देखो।'

कहकर अपने वदन पर की साड़ी हटाकर ब्लाउज़ के वटन खोल नंगा शरीर दिखाया। वोली, 'देखो, दिखायी पड़ता है ?'

स्वदेश देखकर चौंक पड़ा। वोला, 'ये कैसे निशान हैं ?'

'और देखोगे ? यह देखो।'

कहकर पीठ की ओर ब्लाउज़ को उसने ऊँचा करके पकड़ा। स्वदेश ने देखा, गोल-गोल काले-काले उभरे निशान हैं। देखने में भी वीभत्स लग रहे थे। लगा कि किसी ने जैसे आग से उन जगहों को दाग़ दिया हो। पूछा, 'वताओ तो, ये सव कैसे निशान हैं ?'

संध्या ने कहा, 'क्या हुआ ? देखा ? एक सौ, दो सौ, तीन सौ रुपयों से ज्यादा दाम मुझे नहीं देना पड़ा ?'

स्वदेश वोला, 'वताओ ने, ये कैसे निशान हैं ?'

'मेरे सुख, मेरे आराम और मेरे ऐश्वर्य की वात तुम कर रहे हो न ? अव देखा न कि मुझे कितना सुख, कितना आराम और ऐश्वर्य मिल रहा है !'

स्वदेश वोला, 'मज़ाक छोड़ो। सच-सच वताओ न, यह सव क्या है ?'

संध्या वोली, 'जानवर लोग मुझे कितना प्यार करते हैं, प्यार करके मुझे कितनां अच्छा खाने-पहनने को देते हैं, यह उसकी गवाही है। नोच-खसोटकर वे अपने प्यार की अमिट छाप हमारे शरीर पर डाल जाते हैं।'

उसके वाद ब्लाउज-साड़ी ठीक कर वोली, 'अव मेरी वात का विश्वास हुआ न ?'

स्वदेश का आश्चर्य तव भी दूर न हुआ था। वोला, 'दिन-पर-दिन यह हाल होता है ?'

संध्या वोली, 'दिन-पर-दिन। रात-पर-रात। नहीं तो मालिक से

गालियाँ खाना पड़ेंगी। इसीलिए तो कहती हूँ कि मुझे भी अपने साथ ले चलो।'

स्वदेश बोला, 'मेरे साथ चलने से तुमको बहुत तकलीफ़ होगी, संध्या। वे तकलीफ़ें क्या तुम सह सकोगी ? मैंने इतने दिनों तक बाबा से बहुत-से रुपये लिये थे। अब से वह नहीं लूंगा। उनके देने पर भी न लूँगा। उस पर तुम्हारा भार लेकर मैं किस मुसीबत में पड़ूँगा ?'

संध्या बोली, 'मुसीबत क्यों कह रहे हो ? मैं तुम्हारी मदद भी तो कर सकती हूँ ?'

स्वदेश बोला, 'तुम क्या कहना चाहती हो कि मैं तुम्हारे खून से सने रुपयों को छूकर मैं आराम से बैठकर खाऊँगा ?'

संध्या बोली, 'लेकिन मेरी बात क्या एक बार भी न सोचोगे ? तब मैं क्या करूँ ?'

स्वदेश बोला, 'देखो, जिससे मेरी सगाई भी हो चुकी है, जिससे कुछ ही दिनों के बाद मेरी शादी होने वाली है, मैं उसकी ही बात सोच रहा हूँ !'

संध्या बोली, 'मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने स्वार्थी हो ! अगर वह जानती तो इस तरह बे-आबरू होकर अपनी लज्जा, अपनी घृणा तुम्हारे आगे प्रकट न करती। ठीक है, लेकिन एक बात आज तुमसे कहे देती हूँ, आज तुम मुझ को लेकर नहीं जा रहे हो, न सही, लेकिन बाद में कभी इस घर में आओगे तो उस दिन मेरा यह जला मुँह नहीं देख सकोगे। मेरे माँ-बाप को जिस तरह तुम्हारे बाबा ने जलाकर मार डाला, मैं भी किसी दिन लज्जा से, घृणा से उसी तरह अपने-आप को जलाकर ख़त्म कर दूँगी।'

बात कहकर संध्या पीछे लौटी। बोली, 'जाओ, तुम्हें देर हो रही है, तुम चले जाओ।'

लेकिन स्वदेश अब न जा सका। संध्या की राह में जाकर उसे रोककर उसके सामने खड़ा हो गया। बोला, 'सचमुच तुम चलोगी ?'

संध्या बोली, 'तुम मुझसे यह बात क्यों पूछ रहे हो ? तो क्या मैं अभी तक तुमसे झूठ कह रही थी ?'

स्वदेश बोला, 'तो कल शाम को जब बड़े बाबू किसी नये बाबू को लेकर आयेंगे तो क्या होगा ? तब अगर पुलिस में ख़बर दें ?'

'तुम क्या पुलिस के डर से ही अभी तक मुझे साथ लेने में डर रहे थे ?'

स्वदेश बोला, 'मैं ठीक से समझ नहीं पा रहा हूँ। मैंने सोचा था कि

अन्त में तुम ही शायद पुलिस के डर से हट जाओगी। फिर और देर मत करो। साथ में जो सामान ले चलना हो, ले लो।'

संध्या बोली, 'सामान कुछ भी साथ में नहीं लेना है, मैं अभी आयी।'

बाहर किसी ने साँकल खटखटायी। संध्या बोली, 'सरला, देख तो इस वक़्त फिर कौन आया?'

जो बाहर आया था उसने बाहर से ही पुकारा, 'माँ...!'

आवाज़ सुनते ही संध्या पहचान गयी। वह बोली, 'वह कोई नहीं, हमारा फूल वाला है।'

'फूल वाला? फूल वाला माने?'

'रोज़ मुझे फूल दे जाता है।'

कहकर दरवाज़ा खोल आदमी के हाथ में से फूलों का गुच्छा लेकर संध्या ने कहा, 'हरिपद, तुम्हारा कितना बाक़ी है?'

हरिपद बोला, 'क्यों माँ? पहले महीना तो पूरा हो, उसके बाद मैं रुपये ले लूंगा, ऐसी जल्दी क्या है?'

संध्या बोली, 'नहीं हरिपद, तुम ग़रीब आदमी हो, तुम क्यों बेकार में रुपया फेंकते जाओ? तुम्हारी पत्नी बीमार थी, अब कैसी है?'

'अभी भी उसी तरह है माँ, ज़रा भी अच्छी नहीं हुई।'

संध्या झटपट अन्दर जाकर बैग ले आयी। उसमें से रुपये निकालकर बोली, 'यह लो हरिपद, अपना रुपया लो।'

हरिपद रुपये गिनकर चौंक पड़ा। बोला, 'माँ, यह देखो, तुमने गिनने में ग़लती की है। मेरे तो दस रुपये भी नहीं हुए, तुमने ग़लती से एकदम एक सौ रुपये के नोट दे डाले।'

संध्या बोली, 'नहीं, वह ठीक है, मैंने जान-बूझकर एक सौ रुपये तुमको दिये हैं। उन रुपयों से अपनी बहू का इलाज करो, और बाक़ी से अपने लड़के-लड़कियों के लिए कुछ ख़रीद देना।'

हरिपद की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। संध्या बोली, 'अब तुम जाओ, हरिपद!'

सरला ने तभी आकर कहा, 'दीदी, रात का क्या खाना बनेगा?'

संध्या को उस वक़्त बहुत मानसिक व्यस्तता थी। बोली, 'आज मेरे लिए कुछ नहीं पकाना होगा, रे! तू अपने अकेले के लिए पका ले। मैं आज नहीं खाऊँगी।'

'खाओगी नहीं? क्यों?'

संध्या ने कहा, 'मैं आज होटल में खाऊँगी। मैं अभी बाहर निकल रही हूँ।'

कहकर अन्दर चली गयी। सरला उस वक़्त भी खड़ी थी। बोली, 'सुना आपने? अगर खाना नहीं था तो पहले से बताना था। मैंने उधर मैदा सान लिया है। अब सारा बरबाद हुआ न!'

स्वदेश ने पूछा, 'तुम्हारी दीदी बीच-बीच में कभी होटल में भी खाती हैं?'

सरला बोली, 'ज़िन्दगी में कभी होटल में नहीं खाया, दादा बाबू! समझ में नहीं आता कि आज क्या हो गया?'

कुछ देर बाद ही संध्या तैयार होकर कमरे में आयी। जल्दी-जल्दी में सिर्फ़ साड़ी बदल ली थी। और हाथ में एक बैग था।

आते ही सरला से कहा, 'सरला, यह कुछ रुपये रख ले। रोटी वाला आये तो उसे तीस रुपये दे देना, और तेरे पास बाक़ी सत्तर रुपये रहेंगे, बाद में मैं आकर ले लूँगी।'

'तुम कब लौटोगी, दीदी?'

संध्या बोली, 'मुझे लौटने में कुछ देर होगी।'

कहकर स्वदेश की ओर मुड़कर बोली, 'चलो।'

संध्या आगे-आगे चलने लगी। पीछे स्वदेश था। सड़क पर आकर संध्या बोली, 'ज़रा जल्दी-जल्दी चलो, कहीं कोई देख न ले।'

स्वदेश बोला, 'अपना बैग दे दो। तुम्हें तकलीफ़ होगी।'

'मुझे तकलीफ़ न होगी। चलो, एक टैक्सी ले लें।'

स्वदेश ने जल्दी से संध्या के हाथ से बैग लेकर कहा, 'बैग इतना भारी क्यों है? इसमें क्या है?'

'कुछ नहीं,' कहकर एक जाती हुई टैक्सी को हाथ हिलाकर संध्या ने रोका। उसके बाद दोनों उसके अन्दर जाकर बैठ गये।

टैक्सी धुआँ छोड़ती सीधे तेज़ी से चलने लगी।

सर्वजय बनर्जी जैसे क़ानूनीपेशा लोगों के पास सभी को कभी-न-कभी जाना पड़ता है। आज के ज़माने में क़ानून ने आदमी को जितनी आज़ादी दी है, ठीक उतनी ही पराधीनता भी। आदमी को आज़ादी देने के लिए

आदमी ने ही एक दिन क़ानून बनाये थे। लेकिन आज आदमी ने ही आदमी को क़ानून और क़ानूनपेशा लोगों की गुलामी करने को लाचार कर दिया है।

सर्वजय बनर्जी सारे मुवक्किलों से कहते, 'अरे मशाई, मैं जब तक हूँ, तब तक डर की क्या बात है?'

लेकिन देखा जाता है कि आख़िर तक डर बेकार नहीं होता। स्वदेश से भी वही कहते, 'देखो स्वदेश, तुम्हारे बाबा मेरे क्लास-फ्रेंड थे, इसीलिए तुमको तबीयत से सब सिखाता हूँ। असल में मुवक्किलों का भला करना बड़ी बात नहीं होती। बड़ी बात होती है क़ानून की मर्यादा रखना। यह बात तुम याद रखो कि क़ानून ही हमारा भाग्य है। उससे मुवक्किलों का जो हो सो हो।'

स्वदेश इन सारी बातों का कोई जवाब न देता।

सर्वजय बाबू कहते, 'क्यों जी, तुम कुछ कहते नहीं? कुछ तो बोलो।'

'मैं क्या बोलूं?'

'हाँ, तुम्हें कुछ कहना पड़ेगा। तुम भी कभी मेरी तरह सीनियर एडवोकेट बनोगे। तब समझोगे कि मेरी बातों की क्या क़ीमत है। दुनिया में ऐसा कोई वकील नहीं है जो कह सके कि मैं कुल क़ानून का पारंगत हो गया हूँ। तुम आइन्स्टाइन की 'थियरी ऑफ़ रिलेटिविटी' कोशिश करके समझ सकते हो। कार्ल मार्क्स का 'डास कैपिटल' भी कोशिश करके कुछ-न-कुछ समझ सकोगे। लेकिन क़ानून दूसरी चीज़ है। इसे पूरी तरह कोई नहीं समझ सकता, इसीलिए मुंसिफ़ी, जजी, फिर हाईकोर्ट, और उसके ऊपर भी सुप्रीम कोर्ट नाम की कोर्ट बनी हैं।'

यूँ सब बातों के कहने को सर्वजय बाबू को ज़्यादा वक़्त न मिलता था। साथ-ही-साथ मुवक्किल आकर घेर लेते। और मुवक्किल के माने ही थे रुपये। और सर्वजय बाबू के निकट रुपये के माने ही ईश्वर के थे।

उसी परम कारुणिक ईश्वर के प्रसंग की आलोचना करते-करते ही बीच-बीच में कुछ देर के लिए वह आदमी बन जाते।

और तभी वह दोस्त का बेटा होने से स्वदेश को क़ानून का कथामृत सुनाते। सुनाते कि क़ानून ही समाज के मनुष्य के लिए मनुष्य का अवदान हैं। 'मनुष्य ने समाज से बँधे रहकर पहले जिस काम को किया वह था क़ानून बनाना। युग-युग में क़ानून बदला है; क़ानूनों की धाराएँ बदली हैं, किन्तु मूल क़ानून क़ानून ही बना रहा। क़ानून पर जितनी भी किताबें लिखी गयीं, परम करुणामय ईश्वर पर भी उतनी किताबें नहीं लिखी गयीं। जब तक समाज है, तब तक क़ानून भी रहेगा। क़ानून का

ग़लत इस्तेमाल करो तो देखोगे कि समाज नष्ट हो जायेगा। ये हम लोग जो क़ानूनीपेशा लोग हैं, वे समाज के विवेक हैं। जिस दिन हम न रहेंगे, उस दिन मानव-समाज में विवेक नाम का कुछ बाक़ी न रहेगा।'

स्वदेश कहता, 'लेकिन काका वावू, एक अँग्रेज़ थे, उनका नाम था, जे० टी० सडरलैंड। उन्होंने पहले एक किताव लिखी थी। उसका नाम रखा था 'द लॉ-लेस लॉ', माने 'क़ानूनहीन क़ानून'। मैंने वह किताव पढ़ी।'

सर्वंजय वावू कहते, 'इसीलिए तो ब्रिटिश गवर्नमेंट ने उस किताव को ज़ब्त कर लिया था। देखो, तुम लड़के हो, अभी तुम समझोगे नहीं। उस वात के अर्थ होते हैं सोने की पत्थर की प्याली। सोने की पत्थर की प्याली कहने से अगर कुछ मतलव समझा जाता है तो 'क़ानूनहीन क़ानून' वात भी समझी जा सकती है। वह वात विरोधाभासी है। ऐसी वात कहने से सभाओं में वाहवाही मिल सकती है, सरकारी कचहरी में उसका कोई मूल्य नहीं। क्या क़ानूनी है और क्या ग़ैर-क़ानूनी—यह समझने की अक़्ल भी वहुतों में नहीं रहती, जानते हो? जिनमें वह अक़्ल है वे ही दुनिया में श्रेष्ठ लोग होते हैं। इसीलिए देखोगे कि जितने वड़े-वड़े लीडर हैं सव क़ानून पढ़कर ही आगे आये—जैसे कि देश के महात्मा गांधी, सुभाष बोस, राजेन्द्रप्रसाद से लेकर छोटी मछली तक सभी नेता!'

स्वदेश कहता, 'किन्तु तथागत वुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, गोस्वामी तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर...!'

सर्वंजय वावू कहते, 'उनकी वात छोड़ो, वे क्या आदमी थे?'

'आदमी नहीं थे?'

'न, वे महापुरुष थे। उनके उपदेश सुनने से तो दुनिया चलेगी नहीं। उनका उपदेश सुनने से तो जान पड़ता है कि प्रॉपर्टी ज़हर है। प्रॉपर्टी तो वास्तव में ज़हर नहीं है। तुम अगर अच्छे वकील वनना चाहते हो तो उन सारे लोगों का नाम भूलकर भी मत लेना।'

लेकिन जैसा कि पहले कहा, इतनी वातें करने का उनके पास ज़्यादा वक़्त नहीं रहता था। कोई-न-कोई मुवक्किल आकर चेम्बर में पहुँच जाता और वह फिर क़ानून के अमृत में डूव जाते!

उस दिन हाँफते-हाँफते देवकान्त भद्र आ पहुँचे। देवकान्त वावू सर्वंजय वावू के वहुत दिनों के पुराने बँधे हुए मुवक्किल थे। उनके किये सर्वंजय वावू ने हज़ारों रुपये कमाये थे। बदले में देवकान्त भद्र का भी वहुत भला हुआ था।

देवकान्त बाबू को देखते ही सर्वजय बाबू बोले, 'आइये, आपकी बात ही सोच रहा था।'

'मेरी बात ? मेरी क्या बात ?'

'वही जो उस दिन आपने आर्य-धर्म सम्मेलन में जो लेक्चर दिया था, वह अख़बार में पढ़ा था। बुद्ध, परमहंस देव, और चैतन्यदेव की जो व्याख्या आपने की, उसे देखकर मैं ताज्जुब में पड़ गया। आप इतना लिखना-पढ़ना कब कर पाते हैं ?'

देवकान्त भद्र बोले, 'रात को जाग-जागकर।'

'रात को जाग-जागकर ?'

'हाँ, दुनिया के सारे अच्छे काम रात को जाग-जागकर ही तो सम्पन्न होते हैं। उसे धर्म कहिये, विज्ञान कहिये या साहित्य कहिये। रात में सिर्फ़ घंटा-आध घंटा ही सोता हूँ।'

'और बाक़ी वक़्त क्या करते हैं ?'

'बाक़ी वक़्त में वही महापुरुषों की पुस्तकें पढ़ता हूँ। उनकी किताबें पढ़ने से मन पवित्र हो जाता है, मुझे बहुत सुख मिलता है। सोचता हूँ कि उनकी तुलना में मैं कितना छोटा हूँ!'

उसके बाद रुककर बोले, 'हटाओ ये सब बातें। मैं एक कामसे आया था। एक केस फ़ाइल करने को कहने...।'

सर्वजय बाबू बोले, 'किसके नाम ?'

देवकान्त बाबू बोले, 'अपने किरायेदार के नाम। संध्या घोष। पहले उस मकान में अतहर बाई रहती थी। अतहर बाई के मर जाने के बाद वह संध्या घोष ही मकान में किराये पर रहती थी। मेरे छः महीने का किराया दिये बिना वह भाग गयी है। घर में जो फ़र्नीचर, फ़िटिंग वग़ैरह थे सब लेकर चम्पत हो गयी है। लगभग दस हज़ार रुपये का सामान था। देखिये, इन्सान कितना विश्वासघाती हो सकता है!'

'उसके माँ-बाप-रिश्तेदार कोई हैं ?'

'कोई नहीं। आग में जलने की दुर्घटना में वे सब कभी के मर चुके हैं। तब लड़की मेरे पास आकर रोने लगी। उस वक़्त लड़की को देखकर मुझे बहुत दया आयी। तो कहा—ठीक है, सदर स्ट्रीट का मेरा मकान तो ख़ाली ही पड़ा है, तुम वहीं रहो।'

'उसका खाने-रहने का ख़र्च कैसे निकलता था ?'

'उसका इन्तज़ाम भी मैंने कर दिया था। मेरी जो कम्पनी है उसी में एक नौकरी भी दे दी थी। छः सौ रुपये महीने, काम कुछ भी नहीं। और मकान-किराये के खाते उसी में से दो सौ रुपये काट लेता था। उसके

हाथ में चार सौ रुपये रहते। उनसे एक लड़की की ज़िन्दगी हँस-खेलकर चल जाती। लेकिन उससे भी लड़की का मन नहीं भरा। तीन महीना पहले से दफ़्तर नहीं आती थी। मैंने काफ़ी समझाया। लेकिन ज़िद। ऐसा अच्छा मकान, किराया देना नहीं पड़ता; बताइये, वह काम क्यों करे?'

सर्वजय बाबू ने पूछा, 'तो वह पेट कैसे चलाती थी?'

देवकान्त बाबू बोले, 'अरे, उसकी बात ही तो पहले आपसे कही। पहले जो केस किया वह तो उसके ही लिए था, उसी संध्या घोष के लिए। किसी ने उसका रुपया-पैसा-गहना-पत्ता लेकर उसे ब्लैकमेल किया था, वह बात सुनते ही मैंने भी एक मुक़दमा कर दिया। सोचा था कि शायद कुछ वसूल हो जाये। लेकिन तब क्या मालूम था कि लड़की नक्सल है? अतहर बाई के मरने के बाद से ही लड़की नक्सलियों के पंजे में पड़ गयी।'

'लड़की और नक्सल?'

'हाँ मशाई, मुझे पहले तो कुछ नहीं मालूम था। मेरा स्वभाव ही है कि मैं सब आदमियों का विश्वास कर लेता हूँ। उसे मेरा ख़राब स्वभाव कहिये या अच्छा स्वभाव कहिये, सब पर विश्वास करना मेरा स्वभाव है। उस विश्वास करने के परिणामस्वरूप ही आज मेरा यह हाल है। कितने ही लोगों ने कितनी ही तरह से उसके लिए मुझे धोखा दिया, कोई हद नहीं है। वह छोड़िए, पहले जो हुआ सो हुआ, अब निश्चय किया है—मैं इसे ज़रूर ठीक करूँगा, इस लड़की को।'

सर्वजय बाबू को यह सारी तत्व-कथा लेकर आलोचना करने का ज़्यादा वक़्त न रहता। फिर भी बोले, 'जानते हैं देवकान्त बाबू, एक डॉक्टर को एक गुमनाम चिट्ठी मिली थी; चिट्ठी में यह कहकर उसे डराया गया था कि वह चार रुपयों से ज़्यादा फ़ीस नहीं ले सकेंगे। कहिये तो कैसा जुल्म है! किसी दिन गुंडे मुझसे ही कहेंगे कि आपको बिना पैसा लिये मुक़दमा लड़ना होगा। फिर तो हो गया!'

देवकान्त बोले, 'मैं भी तो वही कहता हूँ। हम जंगल के शासन में रह रहे हैं, या सभ्य देश में? खुद मेहनत कर बदन का पसीना बहाकर रुपये कमाकर बुढ़ापे में कुछ आराम करें, उसका भी कोई चारा नहीं। जो कुछ किया है वह मेरी समझ की ग़लती है। पता है, अपनी ही भलमनसी से आज मेरी यह मुसीबत है।'

सर्वजय बाबू बोले, 'ठीक है, मैं अभी डिक्टेशन दे रहा हूँ।'

कहकर आसामी का नाम-पता लिख लिया। उसके बाद बोले, 'मैं कल ही केस पुलिस-कोर्ट में फ़ाइल कर रहा हूँ।'

देवकान्त भद्र बात कहकर निकलकर गाड़ी में बैठ गये।

मक़बूल बोला, 'हुज़ूर !'

'क्या है, रे ?'

मक़बूल बोला, 'हुज़ूर, कुछ छोकरे यहाँ चक्कर लगा रहे थे। मुझसे आकर पूछा, यह किसकी गाड़ी है ?'

'क्यों ? किसकी गाड़ी है, इससे उन्हें क्या मतलब ? कौन हैं वे ?'

'यह पता नहीं, हुज़ूर !'

'तो तूने क्या कहा ?'

मक़बूल बोला, 'मैंने आपका नाम बता दिया।'

'तूने मेरा नाम क्यों बताया ? कोई इधर-उधर का नाम बताने का ख़याल न आया ?'

मक़बूल बोला, 'मैं तो इतना समझा नहीं, हुज़ूर ! फिर भी मैंने पूछा था, आप लोग इतनी बातें क्यों पूछते हैं ?'

'तो उन लोगों ने क्या जवाब दिया ?'

मक़बूल बोला, 'कोई जवाब नहीं दिया।'

'उन लोगों की कैसी शकल थी ? ग़ौर से देखा था ?'

'जी हाँ हुज़ूर, लम्बे-लम्बे बाल, लाल-नीला कुर्ता, और पतली, लम्बी पैंट—सभी लड़के यही पहने थे। छोकरों के एक दूसरे झुंड ने भी मुझे एक दिन पकड़ लिया था, वह पार्क स्ट्रीट पर। आप पार्क स्ट्रीट पर गाड़ी खड़ी कर काम से चले गये थे, उस दिन भी वही बात पूछ रहे थे। किसकी गाड़ी है, बाबू क्या काम करते हैं, घर कहाँ है—यही सब।'

देवकान्त बाबू बोले, 'तो ज़रा थाने तो चल, बटतला थाने। ज़रा ओ० सी० से मिल आऊँ। एक डायरी दर्ज करा दूँ।'

मक़बूल गाड़ी को ट्राम की सड़क पर से सीधे उत्तर की ओर चलाने लगा।

न, देवकान्त बाबू को लगा, ये सब बातें ज़्यादा बढ़ने देना ठीक नहीं हैं। शुरू में ही ख़त्म कर देना ठीक है, जिससे और अंकुर न फूट सकें।

इतने दिनों में बात चारों ओर फैल गयी थी। बात हर किसी के बेटे की

शादी की नहीं थी। वलरामपुर के जिस आदमी के घर किसी दिन गांधीजी आये थे, जिसकी पुकार पर चुनाव के पहले अमूल्य घोष, प्रसन्न सेन आदि के समान महामान्य लोग आकर हुगली ज़िले की पॉलिटिक्स की असल प्लानिंग करते थे, महात्मा गांधी खुद आकर जिसके गाँव की एक मीटिंग में भाषण दे गये थे, उन्हीं हरिसाधन चट्टोपाध्याय के अपने एकमात्र वेटे की शादी की वात थी। मन-ही-मन सव तैयार ही थे कि किसी दिन उस शादी के लिए उन्हें निमन्त्रण मिलेगा। गौर को भी आशा थी कि हरिसाधन वावू के घर व्याह में उसे मिठाई वनाने का ऑर्डर मिलेगा। वी०डी०ओ०, कॉलेज के प्रिंसिपल, स्कूल के हेडमास्टर मशाई से लेकर सोशल एजूकेशन ऑफ़िसर तक--सभी उस घर में जमा होंगे। लेकिन सगाई के वाद भी वह शादी टूट गयी—इस तरह की ख़वर फैल गयी।

गौर घोष एक दिन सीधे-सीधे आ पहुँचा। नन्द सामने ही था।

गौर ने पूछा, 'नन्द-दा, क्यों जी, लोगों के मुँह से यह सव क्या सुन रहा हूँ?'

नन्द वोला, 'क्या सुन रहे हो?'

'सुन रहा हूँ कि छोटे वावू की शादी टूट गयी है?'

'किसने कहा, टूट गयी है?'

'लोग वातें कर रहे हैं। अभी तो वी० डी० ओ० साहव स्टेशन की ओर जा रहे थे। मेरी दुकान पर चाय पी गये। उन्होंने भी कहा था।'

नन्द वोला, 'उड़ती ख़वरों पर कान न देना, गौर! छोटे वावू की शादी में लेन-देन का झगड़ा नहीं; छुटपन से ही लड़की पसन्द है, शादी क्यों न होगी?'

गौर निश्चिन्त हो गया। यही कहो। वहुत दिनों के वाद इतना वड़ा ऑर्डर एकदम निकल जायेगा? गौर वेफ़िक्र होकर फिर अपनी दूकान पर लौट आया।

लेकिन हरिसाधन वावू निश्चिन्त न हो सके। वात उस समय भी पूरी नहीं फैली थी। लेकिन वात कव तक दवायी जा सकती थी? किसी-न-किसी दिन तो फैलेगी ही। ज़िन्दगी में उन्होंने वहुत-कुछ किया। सभी तो दवा है। किसी को आज तक पता नहीं चल सका है। यह ज़रूर है कि उसके लिए उनका वहुत-सा रुपया वरवाद हो गया। वरवाद क्यों, जव काम पूरा हो गया तो उसे रुपये का वरवाद होना कैसे कहेंगे? अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए सिर्फ़ रुपया ही नहीं, उनका वहुत-सा वक़्त भी वरवाद हुआ है।

पिता की बात भी उन्हें याद थी। पिता ने छुटपन में उन्हें वहुत सम-

तुम्हारी शकल देखकर ही मालूम पड़ता है।'

उसके बाद कुछ रुककर फिर वोले, 'सुना है कि सब तुम्हारे आगे तुम्हारी खूब प्रशंसा कर गये हैं। तुम्हें भी तारीफ़ सुनना बहुत अच्छा लगा, वह भी मैंने देखा। तुम अभी लड़के हो, इस बुड्ढे आदमी की एक बात गाँठ बाँध लो; बाद में कभी तुम्हारे काम आयेगी। यह आज जो लोग तुम्हारी तारीफ़ कर गये हैं, किसी दिन यही सब तुम्हारे सबसे बड़े दुश्मन बन जायेंगे—यह समझ रखना। इसी का नाम पॉलिटिक्स है। दिल से भला चाहने वाला अगर कोई एक आदमी भी रहेगा तो वह मैं रहूँगा। और कोई नहीं। इस बात का तुम विश्वास करो।'

हरिसाधन बाबू को उस बात का उस दिन जवाब देने की हिम्मत नहीं हुई थी।

पिता ने फिर कहा था, 'आज जिन लोगों ने सीढ़ी लगाकर तुम्हें पेड़ पर चढ़ा दिया है, वे ही फिर तुम्हारे बुरे दिनों में उस सीढ़ी को खींच लेंगे, यह याद रखना। इसी का नाम है पॉलिटिक्स। इसी का नाम राजनीति है। इसीलिए मैंने तुम्हें इस धन्धे में जाने को मना किया था। लेकिन तुम्हारे भाग्य में दुख हो तो मैं क्या करूँगा?'

उसी से पिता का स्वास्थ्य बिगड़ गया था। तब वह किसी काम-धाम में मन नहीं लगाते थे। जिस काम में जिन्दगी-भर व्यस्त रहे, तब से उन्हें उसी काम से मानो वितृष्णा हो गयी हो। उनकी सब रुचि जाती रही। किस खेत में कितना धान हुआ था या किस खेत में धान नहीं हुआ, वह ज़रा फ़िक्र न करते थे। वह कभी गम्भीर बने रहते और कभी छिपकर रोते भी थे। वह समझ गये थे कि अपनी तबीयत का जीवन किसी का नहीं बीतता। मनुष्य एक अदृष्ट महाशक्ति की इच्छा को ही रूप देने का प्रयत्न करता है। रूप देने की सार्थकता उसके अपने हाथों के अधीन नहीं है।

एक दिन सिर्फ़ यह बोले, 'तुमने मेरे बेटा होकर मुझे जो तकलीफ़ दी, किसी दिन जब तुम्हारा बेटा होगा तब तुम्हें ठीक इसी तरह तकलीफ़ देगा।'

पिता का यह अभिशाप ही क्या उनके जीवन में इतने दिनों बाद फला?

सच ही तो, किस बात के लिए यह संसार है? किसलिए यह जीवन धारण करना है? जीवन-भर उन्होंने केवल अपनी उन्नति करना चाहा था। किन्तु बाहर प्रकट रूप से यह जताया था कि वह देश के लोगों और जन-गण का काम कर रहे हैं। लेकिन किसी ने भी क्या देश के लोगों और जन-गण का काम कभी किया है?

राजनीत को लेकर ही उन्होंने जीवन आरम्भ किया था। तब से ही सीख लिया था कि राजनीति करने में ज़बान की बात के साथ मन की बात का मेल रखने से नहीं चलेगा। पार्टी के सभी के साथ हाथ मिलाकर चलने से पार्टी के मेम्बरों के साथ भी मीठी बातें करना होंगी, फिर पब्लिक को क्रुद्ध करने से भी नहीं चलेगा। दो नावों पर पैर रखकर चलना सीखने की दुर्लभ कला का नाम ही है राजनीति। उस कला के अच्छी तरह मर्मज्ञ हो गये हैं और उसे जान लिया है, इसीलिए इतने दिनों तक एक ही आसन पर जमकर टिके रहे।

लेकिन जीवन-भर बाहरी वोटों पर जीतकर भी वह पहली बार चुनाव में अपने घर में ही हार गये। अपने घर में ही वह अपने बेटे से पराजित हो गये। यह क्यों हुआ ? तो क्या उनके पिता का अभिशाप ही इतने दिनों बाद फला ?

कार्तिक ने कब गाड़ी रोक दी थी, यह ध्यान न रहा। वह बोला, 'आ गये, बाबू !'

हरिसाधन बाबू बोले, 'मैंने तो तुझे कर्बला टैंक लेन ले चलने को कहा था।'

कार्तिक बोला, 'जी, यही तो कर्बला टैंक लेन है।'

'ओह !'

कहकर वह गाड़ी से उतरे। उनका दिमाग़ बिलकुल ख़राब हो गया है। लाखों लोगों की भीड़ में भाषण देकर भी जिस आदमी का कलेजा न काँपे, आज अपने ही लड़के के एक सामान्य व्यवहार से वह व्यक्ति एकदम ऐसा हतोत्साह हो गया कि हमेशा के पहचाने रास्ते को न पहचान सका।

गाड़ी से उतरकर वह सामने एक घर में जाकर सदर दरवाज़े की साँकल खटखटाने लगे।

यह युग बड़ा विचित्र युग है। पहले भी संसार में अनेक युगों का आविर्भाव हुआ था। अठारहवीं शताब्दी में भी अनेक युग-परिवर्तन हुए थे। अनेक

महापुरुषों का जन्म भी इन युगों में हुआ था। उस समय मानव संसार के सम्वन्ध में अचेत था। यह संसार माया है, यही धारणा लेकर उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया। उस समय जिन बड़े-बड़े मनीषियों ने जन्म ग्रहण किया था वे सभी कह गये थे—जीवन अनित्य है, सत्य ही केवल शाश्वत है। उसी सत्य का तुम पालन करो, तभी जीवन सुखी होगा। धन नहीं, मान नहीं, प्रसिद्धि नहीं, प्रतिष्ठा-प्रतिपत्ति कुछ नहीं, मात्र जीवन अनित्य है—इस वोध से ही शान्ति आती है।

किन्तु उन्नीसवीं सदी से ही यह धारणा वदल गयी। उस समय सभी कहने लगे—जीवन अनिवार्य है, इसी से इस जीवन का सदुपयोग करने के लिए खाओ, पियो, मौज करो। जीवन को फूँक मारकर मौज की हवा में उड़ा दो। वे और भी कहने लगे कि भोग-सुख से अपने को वंचित रखकर, उपवास या व्रत-पालन में मनुष्यत्व का कोई भी गौरव नहीं है। पृथ्वी पर जीवित रहने में वहुत सुख हैं। चारों ओर भोग के अनेक आयोजन हैं। जिधर देखो, जिधर भी नज़र डालो, रुपये के वदले सव-कुछ तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेगा। इसीलिए और भी रुपये कमाओ। अगर सीधे-सीधे रुपया न वने तो टेढ़े रास्ते से कमाओ। सत्पथ-अवलम्वन या अच्छा आचरण करने की मूर्खता मत करो। उससे जीवन का कुल स्तर निम्न से निम्नतर होता जायेगा। ऊपर के जीवन-स्तर तक उठने के सौभाग्य से चिरकाल वंचित रहोगे। इसलिए अर्थ को परमार्थ-ज्ञान के आगे वढ़ाये चलो। उससे कोई अगर तुम्हें रोके तो उसे दूर कर दो। अगर आसानी से दूर न कर सको तो उसके घर में आग लगा दो। तव देखोगे कि सौभाग्य-लक्ष्मी तुम्हारी ही अंकशायिनी होगी।

उन्नीसवीं सदी से ही यह वाणी सारी दुनिया में प्रचारित होने लगी। कलाकार, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ—सभी इस वाणी से उत्सा हित हुए, सभी को प्रेरणा मिली। सभी संसार के प्रति सचेत हो गये। वे सीख गये कि पिछले युगों में जो लिखा गया था, वह झूठ है। वे मान : लगे कि सुख सवसे अधिक सत्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं है। उस सुख में भोज्य है रुपया। वही रुपया अगर कमाना चाहते हो तो शोषण करो। पृथ्वी के मानचित्र पर जहाँ तमाम निरक्षर, शान्तिप्रिय, नासमझ लोग रहते हैं, उनका शोषण कर रुपया लाकर अपने ख़ज़ानों में भरो। अरव देश में पेट्रोल है, उस पर अधिकार करो। अफ्रीका में सोना है, इसलिए अफ्रिकन लोगों को पैरों के नीचे कुचलो। इंडिया में चाय, पटसन, नील है, उसे लूट-खसोट कर अपने देश में लाओ। पेरू में चाँदी है, उसे अपने देश ले जाकर बैंकों के वॉल्टों में भर दो।

इस तरह सारी दुनिया जब अपने क़ब्ज़े में हो गयी तो कुछ लोगों ने रातों-रात अँग्रेज़ी भाषा सीख ली। अँग्रेज़ी सीखे बिना क्लर्की करने वाले लोग कहाँ मिलेंगे! बाबू-वंश की उत्पत्ति करने के लिए ही तो तुम्हें अँग्रेज़ी सिखायी जाती है। लेकिन बीच में से काली चमड़ी के लोगों ने इन अँग्रेज़-फ्रांसीसी-जर्मन और अमेरिकी लोगों की कारस्तानी पकड़ ली। अँग्रेज़ी भाषा की किताबें पढ़कर ही सारे काली चमड़ी के मूर्ख लोग एक दिन चालाक और होशियार हो गये। समझ गये कि सफ़ेद चमड़ी के लोग होने से ही वे कोई पीर-पैग़म्बर नहीं हो गये हैं, और हम काली चमड़ी के लोग होने से परमात्मा से परित्यक्त लोग नहीं हैं। दोनों के ही शरीर का खून लाल है और दोनों का सृष्टिकर्ता एक ही ईश्वर है।

इस तरह जब हालत थी उस वक़्त—इन काली चमड़ी के लोगों के अधिकारों को लेकर गोरों-गोरों में लड़ाई शुरू हुई। गोरों-गोरों की लड़ाई एक बार 1914 के वर्ष में हुई। उसमें भी कुछ फ़ैसला नहीं हुआ। फिर लड़ाई हुई 1939 में। उस अन्तिम लड़ाई में ही गोरे दब गये। बीच में से सारी काली चमड़ी के लोग स्वतन्त्र हो गये। स्वाधीन हुआ घाना, कीन्या, नाइजीरिया, कोरिया, वियतनाम, सीलोन, बर्मा, मिस्र, लीबिया, सऊदी अरब, कुवैत, दुबई और साथ ही हमारा देश।

अब तुम स्वतन्त्र हो। तुम अपना राज़-पाट चलाओ। हम दूर से नज़र-भर रखेंगे। तुम्हें रुपयों की कमी होगी तो हम कम सूद पर रुपये उधार देंगे। उसके बदले तुम हमारे हाथ कच्चा माल बेचोगे। फिर हमारे बीच कोई झगड़ा नहीं है। और हम तुम्हारा शोषण नहीं करेंगे। तब तुम ही अपनी सम्पत्ति के पूरे मालिक होगे।

इतिहास के इस सन्धिकाल में सहसा एक और उलट-फेर हो गया काली चमड़ी के देशों में। एक अमोघ ऐतिहासिक नियम से गोरी चमड़ी की फेंकी हुई कुर्सियों पर उठकर आ बैठे देवकान्त भद्र, हरिसाधन चट्टोपाध्याय और सर्वजय बनर्जी, आदि। पहले से जो थे वे तो थे ही, गोरे चमड़ी वालों के घरों तक को उन लोगों ने क़ब्ज़े में कर लिया। शोषण तो रहा, केवल अन्तर यही था कि पहले थे गोरे रईस, अब हो गये काले, बड़े लोग। अब काले बड़े लोग ही कालों से कहने लगे, 'अब तुम्हें डर नहीं है, हम तुम्हारी ही जाति के हैं, हम तुम्हारे ही गोत्र के हैं। हम तुमको खाने-पहनने को देंगे, हम तुम्हें नौकरी देंगे। हम तुम्हारी कमी दूर करेंगे। तुम हमें वोट देकर राजा बना दो।'

हमने भी वही किया। हमने हरिसाधन चट्टोपाध्याय और देवकान्त भद्र और सर्वजय बनर्जी आदि को राजा बनाने के लिए वोट दिया।

लेकिन जो पहले था वही रहा। काले बड़े आदमी और भी वड़े-वड़े आदमी वन गये। और काले ग़रीव और भी ग़रीव वन गये।

तव कुछ लोगों के दिमाग़ में एक सवाल उठा—'इससे हमें क्या फ़ायदा हुआ ?'

सवाल एक मुँह से दूसरे मुँह तक फैलते-फैलते देश-भर में फैल गया। सव एक ही सवाल का जवाव ढूँढ़ने लगे— 'इससे हमें क्या लाभ हुआ ?'

कीन्या, घाना, कांगो, दक्षिण अफ्रीका से शुरू कर दक्षिण एशिया के वर्मा, सीलोन, पाकिस्तान, भारत में सव जगह एक ही प्रश्न प्रतिध्वनि होने लगा—'लेकिन इससे हम लोगों को क्या फ़ायदा हुआ ?'

कलकत्ता के मिर्जापुर स्ट्रीट के मेस में शायद एक दिन यही प्रश्न काफ़ी पहले उठा था। कार्लाइल के फ्रेंच रिवॉल्यूशन की धारा शायद डेढ़-दो सौ वरस पहले चलकर आ पहुँची थी इस कलकत्ता की भागीरथी में। वहकर आयी मिट्टी के उपजाऊ मैदान में पहुँचकर वह शायद सौ गुनी तेज होकर मिलना चाहती थी जन-गण-मन के वंगोपसागर की तरंगों में। और समुद्र की तरंगों की जलोच्छवास में जव सारा देश वहने चला था तो एक दिन शाम को वलरामपुर के रेल स्टेशन पर एक आदमी ट्रेन से उतरा। प्लेटफ़ार्म पर पाँव रखकर एक वार चारों ओर अच्छी तरह नज़र घुमाकर देख लिया कि वह वलराम में ही उतरा है।

और वहुत लोग वहाँ उतरे। दूसरे एक आदमी को देखकर वह आगे वढ़ आया।

'ओ मशाई, सुन रहे हैं ? वलरामपुर स्टेशन यही है ?'

आदमी को शायद थोड़ी जल्दी थी। वोला, 'हाँ।'

'हाँ' कहकर ही जल्दी-जल्दी आगे भीड़ में वढ़कर ग़ायव हो गया। इस दुनिया में सभी व्यस्त हैं। सवको ही काम की जल्दी है। जैसे किसी को भी फ़ुरसत नहीं है। थोड़ा और आगे जाने पर गेट है। गेट पार कर वाहर आते ही दोनों किनारे दूकानें हैं। दूकानों की पुरानी दीवारों पर चुनाव के पुराने पोस्टर चिपके हैं। लेकिन वे फट-वट गये हैं। कोई-कोई धूप-पानी से आधे या चौथाई वचे हैं। पोस्टरों में जिनका नाम लिखा है—वह नाम जाना हुआ है : हरिसाधन चट्टोपाध्याय। स्वदेश के पिता। लेकिन उनका घर कहाँ है ?

'ए मशाई, सुनिये !'

आदमी रुक गया।

'क्या काम है, वोलिए ?'

'यह मैं आपसे क्यों वताऊँ ? जिसके साथ मुझे काम है उसी से

वताऊँगा।'

वात शायद लगती थी कि आवाज़ ऊँची कर कही गयी थी।

'अरे, यह तो लगता है कि वड़ी मुश्किल में पड़ गया। मैं पूछता हूँ एक वात, और आप कहते हैं कुछ और। यह तो वताइये, आप हैं कौन ? कहाँ से आना हो रहा है ?'

'क्या हुआ, क्या हुआ चाचा ?'

कहते-कहते और वहुत-से वेकार लोग आकर जमा हो गये। सभी पूछनें लगे, 'क्या हुआ, चाचा ? यह क्या कह रहे हैं ?'

चाचा वोले, 'देखो न भतीजे, यह आदमी विगड़कर मारने आ रहा है ! मैं जितना ही पूछता हूँ कि आप कौन हैं, कहाँ से आ रहे हैं, उतना ही कहते हैं—मैं क्यों वताऊँ, मैं क्यों वताऊँ ?'

सभी ने मिलकर तव उस आदमी को घेर लिया, 'वताइये, आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? वलरामपुर में आपको क्या काम है ?'

वह आदमी बोला, 'यह तो देख रहा हूँ कि अजीव देश में आ गया हूँ। इस देश में देखता हूँ कि किसी को कोई काम-काज नहीं है। एक भले आदमी को घेरकर सव उसकी गरदन काटना चाहते हैं। आप लोगों में क्या किसी को अपनी व्यस्तता नहीं है ? आपके गाँव मे क्या सब मेरी तरह ही बेकार हैं ?'

कोई एक आदमी पीछे से बोल पड़ा, 'बेटा नक्सल है। पकड़कर पुलिस में दे दो।'

एक और कोने से आवाज़ आयी, 'अरे, पुलिस में नहीं, पुलिस में नहीं, अच्छी तरह धुनाई कर दो।'

आदमी बात सुनकर चिढ़ गया। चिढ़कर छाती फुलाकर खड़ा हो गया। उसके वाद दोनों हाथों से कमीज़ की आस्तीनें चढ़ाकर चिल्ला उठा, 'ख़बरदार ! किसने धुनाई करने को कहा था ? वह कहाँ है ? आगे वढ़कर आये तो साला, सामने वढ़कर आ !'

इसके वाद लंका-कांड शुरू हुआ। उस आदमी की हिम्मत देखकर और गालियाँ सुनकर कोई धैर्य न रख सका। सभी जोश में आकर उसकी ओर झपटे। 'तो ले...!'

तभी गौर की नज़र इधर पड़ी। वह दूकान छोड़, भीड़ को लाँघकर एकदम धक्कमधक्के के बीच में कूद आया। सबको हटाकर, जगह ख़ाली कर वोला, 'उसे मार क्यों रहे हो, क्या हुआ ?'

मारपीट बन्द होती देखकर बहुतों को अफ़सोस हुआ।

'गौर-दा, तुम्हें पता नहीं, तुमने सुना नहीं, तुम बीच में क्यों आ

गये ? वह नक्सल है।'

गौर ने उस बात पर ध्यान न देकर कहा, 'तुम लोग ठहरो।'

उसके बाद आदमी को बुलाकर अपनी दूकान में ले जाकर बैठाया। पूछा, 'आप कहाँ से आ रहे हैं ? कहाँ जायेंगे ?'

वह बोला, 'आपसे क्यों बताऊँ ? क्या आप चाहते हैं कि लोग मुझे गाली दें और मैं बरदाश्त कर लूँ ?'

भीड़ से बहुत लोग उस वक़्त छँट गये थे। लेकिन कुछ लोग उस समय भी तमाशबीनी करने के लिए खड़े थे।

गौर ने उनकी ओर देखकर कहा, 'अरे, तुम क्या देख रहे हो ? चाय पियोगे ?'

वे बोले, 'नहीं।'

'तो भीड़ मत लगाओ, सब बाहर जाओ।'

एक आदमी बोला, 'यह आदमी हमारा पहचाना हुआ है।'

'पहचान का है ? क्यों, आप इन्हें पहचानते हैं ?'

वे सब मुँह की ओर देखने लगे। एक तरफ़ से कोई भी लक्षण उसके न दिखायी पड़ा। दूसरी तरफ़ बहुत जोश था। बोला, 'आप हमें नहीं जानते ? हम कलकत्ता में रहते हैं। आपको वहाँ देखा है। आपका नाम एककौड़ी चौधुरी है न ?'

एककौड़ी इस बीच उछल पड़ा। फिर याद करने के लिए कहा, 'सच-मुच आप मुझे जानते हैं !'

'पहचानता नहीं ? कितने दिन तो आपको देखा है।'

'बताइये तो, कहाँ देखा है ?'

'क्यों, शेयर मार्केट में। शेयर मार्केट में आप बहुत चक्कर लगाते थे, हमने देखा था।'

एककौड़ी बोला, 'आप भी शेयर मार्केट में दाँव लगाते थे क्या ? देखा तो है कि कैसा ख़तरनाक खेल है ! भाई, शेयर मार्केट में ही मेरी ऐसी हालत हो गयी है। एकदम डुबाकर छोड़ा है। वह इंडियन आयरन, उसी साले ने मुझे बिलकुल मोरी में गिरा दिया। ओह, कैसा ख़तरनाक खेल है, रे बाबा !'

'तो अब आप क्या करते हैं ?'

एककौड़ी बोला, 'कुछ भी नहीं। एकदम दूसरे के सिर पर बैठकर खा रहा हूँ।'

'तो यहाँ क्या करने आये हो ?'

एककौड़ी बोला, 'जिसकी गरदन पर सवार होकर खाता था उसकी

खोज लेने आया हूँ, भाई ! इसी बलरामपुर में उसका मकान है। स्वदेश चटर्जी। वह मुझसे कहकर आया कि शादी की सगाई के लिए गाँव जा रहा है। उसके बाद इतने दिन हो गये और उसका पता नहीं है। वह क्या ब्याह करके मुझे भूल गया ? इसीलिए उससे मिलने उसके घर जा रहा हूँ।'

एक आदमी ने कहा, 'तो आइये न, हम आपको उसका घर दिखा दे रहे हैं। अब तक बताया क्यों नहीं ? चलिये।'

गौर के भी उस वक़्त नक़द ख़रीदार आ गये थे। वह भी बोला, 'मकान तो तुम दिखा दोगे, लेकिन उनमें से कोई भी तो घर पर नहीं है।'

एककौड़ी बोला, 'नहीं है ? कोई घर पर नहीं ? स्वदेश ? स्वदेश भी नहीं है ?'

गौर बोला, 'नहीं, छोटे बाबू तो भाग गये हैं।'

'भाग गये माने ? बहू को लेकर भाग गया ? क्या मुसीबत है ! स्वदेश ने मेरी तो अजीब मुसीबत कर दी।'

गौर बोला, 'ब्याह ही नहीं हुआ तो बहू को लेकर कैसे भागेंगे ? पक्की सगाई-अगाई सब हो गयी थी, उसके बाद अचानक ग़ायब ! बड़े बाबू भी उसे खोजते फिर रहे हैं।'

'उसके बाद ?'

गौर बोला, 'उसके बाद कुछ पता नहीं। बड़े बाबू लड़के को खोज-खोजकर परेशान हो रहे हैं।'

कहकर गाहकों को संभालने चला गया। उसके पास इन सब बेकार के कामों में बरबाद करने के लिए वक़्त नहीं है।

साथ के दो आदमी बोले, 'लेकिन एककौड़ी बाबू, आप फ़िकर न करें। हम तो हैं। आप हमारे साथ चलिये।'

तीनों आदमी दूकान के बाहर निकल आये। अनजान जगह। जीवन में कभी भी एककौड़ी ऐसी जगह नहीं आया था। यह कैसी मुसीबत का सामना हो गया ! एककौड़ी ने सदा जीवन को सहज रूप से लिया था। यह जीवन ही उसके निकट एक छोटा-मोटा शेयर मार्केट था। एक जुआ-सा। पतन जिस तरह यहाँ है, उसी तरह वहाँ भी है। उत्थान-पतन को लेकर जो दिमाग़ परेशान करते हैं वे मूर्ख हैं। जीवन में उसने जैसा ऐश्वर्य देखा है, वैसी ग़रीबी भी देखी है। लेकिन अन्त तक एककौड़ी दे-चौधुरी ने तत्व समझ लिया कि रामकृष्ण परमहंस ही एकमात्र सत्य हैं, और सब इंडियन आयरन हैं—इंडियन आयरन की तरह ही सब झूठ है !

अन्त में गौर ने जो कहा था वही सच हुआ। सचमुच किसी को स्वदेश का पता नहीं था। नन्द ने भी वही बतलाया।

एककौड़ी बोला, 'तो फिर क्या होगा, तुम चले जाओ, भाई ! तुम मेरे लिए और क्यों बेकार वक़्त बरबाद करोगे ?'

'और तुम ? तुम कलकत्ता लौट जाओगे ?'

एककौड़ी बोला, 'जाऊँगा। कलकत्ता नहीं जाऊँगा तो क्या इस बलरामपुर में पड़ा रहूँगा ?'

'तो हम भी तो कलकत्ता जायेंगे। हमारे साथ ही चलो।'

एककौड़ी बोला, 'न भाई, मुझे माफ़ करो। मेरे पास रुपये-पैसे कुछ नहीं हैं। रेल का टिकिट लेने में मेरे पास जो पैसे थे सब ख़त्म हो गये। अब मैं कंगाल हूँ।'

'तो फिर कैसे कलकत्ता जायेंगे ?'

एककौड़ी बोला, 'पैदल।'

'यह क्या ? पैदल कहीं कलकत्ता जाया जाता है ?'

एककौड़ी बोला, 'क्यों, जब रेलगाड़ी-आड़ी कुछ नहीं थी, तो लोग किस तरह काशी-वृन्दावन जाते थे ? मैं भी वैसे ही जाऊँगा।'

योगीन बोला, 'नहीं एककौड़ी-दा, वैसा नहीं होने दूंगा, तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा।'

एककौड़ी बोला, 'लेकिन तब मैं कहे देता हूँ कि टिकिट का रुपया-उपया न दे सकूँगा। मेरी जेब में एक पैसा भी नहीं है।'

योगीन बोला, 'तो क्या सोचा है कि हम टिकिट लेंगे ?'

एककौड़ी बात सुनकर ताज्जुब में पड़ गया। बोला, 'टिकिट नहीं लोगे के माने ?'

'माने टिकिट नहीं लेंगे। हम तो ज़िन्दगी में कभी टिकिट लेकर रेल पर नहीं चढ़े। सरकारी रेल है, उसका टिकिट क्यों लें ? सरकार ने हमारा ऐसा क्या उपकार किया है कि हम सरकार को पैसे देंगे ?'

एककौड़ी उसकी बात सुनकर और भी ताज्जुब में पड़ गया। बोला, 'अगर पकड़ लें तो ?'

योगीन बोला, 'पकड़ लें माने ? पकड़ चुके ! मज़ाक है ? तब चेकर बाबू को चाय़-सिगरेट क्यों पिलाता हूँ ? उसमें पैसा नहीं ख़र्च होता है ? हमारे पास से कितना इधर-उधर का लेते हैं, और हमें ही पकड़ेंगे ?'

सब सुनकर एककौड़ी ने उन दोनों को अच्छी तरह देखा। पूछा, 'तुम कलकत्ता से यहाँ क्या करने आये हो ? कुछ काम था ? शेयर मार्केट का कुछ काम था ?'

योगीन बोला, 'न दादा, शेयर मार्केट की दलाली छोड़ दी है। उस साले काम में अब कोई मज़ा नहीं रह गया। उस सब मज़े में फफूंदी लग

गयी है।'

'फिर भी सुनूँ तो, क्या काम है ?'

योगीन बोला, 'दादा, काम हमारा आराम का है। रुपये भी बहुत हैं। शेयर मार्केट की तरह धोखा-धड़ी का काम भी नहीं है। यह बँधी महीने की नौकरी है। उसके बाद सारे हिन्दुस्तान में आराम से घूमें-फिरेंगे। यह तो बलरामपुर आकर इन दो दिनों में खूब घूमा-फिरा; रेल का किराया भी न लगा। इधर बड़े आराम से कटी। यही मेरी नौकरी है।'

एककौड़ी बोला, 'हमें, भाई, इस तरह की नौकरी दिला दोगे ? मैं, भाई, ज्यादा मेहनत-वेहनत न कर सकूँगा। मुझे जो इतने दिनों से खिलाता-पिलाता था वह स्वदेश तो कहीं ग़ायब हो गया। अब मैं कहाँ रहूँ, अब कौन मुझे खाना देगा ?'

'ठीक है दादा, मैं तो हूँ, कुछ परवाह नहीं। हम तुम्हें नौकरी दिला देंगे।'

'हमें क्या करना होगा ?'

योगीन बोला, 'सिर्फ़ घूमोगे। हमारी तरह खाओ-पियोगे और हमारी तरह घूमोगे। बस, ड्यूटी ख़त्म।'

उस दिन वहीं ट्रेन में कलकत्ता आते-आते ही तय हो गया कि एककौड़ी उसके पास ही रहेगा; उसकी ही तरह नौकरी करेगा; और उसके साथ ही घूमे-फिरेगा। कलकत्ता आकर कहीं एक घर में वे एककौड़ी को ले गये। एकदम घने शहर में मकान था। लेकिन बहुत अँधेरा-अँधेरा-सा। कोई आदमी तख्त पर बैठा था। उसने एककौड़ी का नाम-धाम पूछा।

'ठिकाना ?'

योगीन ही एककौड़ी की ओर से बोला, 'उसका कोई ठिकाना नहीं है, मैनेजर साहब !'

मैनेजर साहब ने मूँछों को ऊँचा कर लिया। पता नहीं, ऐसे आदमी की शकल कैसी होगी, वही शायद देखना चाहा।

'जी, पहले यह मिर्जापुर स्ट्रीट के एक मेस में रहते थे। लेकिन वहाँ से उन लोगों ने इन्हें निकाल दिया।'

उन्होंने 'क्यों भगा दिया ? कुछ चोरी-ओरी की बात थी ?'

योगीन बोला, 'अरे नहीं हुज़ूर, जिसके रुपये पर वह खाता था वह अचानक कहीं एक दिन ग़ायब हो गया। उसके बाद से उसका और कोई ठिकाना नहीं। बहुत बड़े आदमी का बेटा है, यह पता है, सर ? शेयर मार्केट में लाखों रुपये बहाकर अब इस लाइन में आना चाहता है।'

समझ में आया कि मैनेजर साहब ज्यादा बातें करने वाले आदमी

नहीं थे। पूछा, 'यह काम तुमसे होगा तो ?'

एककौड़ी बोला, 'करना ही पड़ेगा। न करने से तो मेरा चलेगा नहीं। पहले मुझसे यही बताइये कि काम क्या है ?'

'वह तो तुमको सिखा देंगे। इनके साथ कुछ दिनों घूमो, तभी सीख लोगे। तुम पढ़े-लिखे लड़के हो, न कर पाने की कोई बात नहीं है ?'

योगीन बोला, 'तब फिर इसे मेहरबानी कर ऐडवांस दीजिये सर, नहीं तो महीने-भर खायेगा क्या ?'

सब-कुछ ठीक हो गया। रुपये भी पेशगी मिल गये। रुपये लेकर तीनों आदमी बाहर आये।

बाहर आकर एककौड़ी बोला, 'नौकरी तो हो गयी। अब रहूँगा कहाँ ?'

'और कहाँ रहोगे ? मैं जहाँ रहता हूँ वहीं रहना।'

बस, एककौड़ी दे-चौधुरी को और कोई परेशानी नहीं रही। योगीन दे के ऑफ़िस में नौकरी मिल गयी। और बिना किराये के रहने का इन्तज़ाम भी हो गया। कलकत्ता के हज़ारों-लाखों बेकारों में उस दिन एक आदमी का एक हीला हो गया। वह अब सरकार को परेशान न करेगा, असमंजस में न डालेगा और हैरान न करेगा। बंगाल की सरकार निश्चित हो गयी बेकारों की लम्बी सूची में से कम-से-कम एक नाम कट गया।

हरिसाधन चट्टोपाध्याय के जीवन में अर्थहीन नाम की कोई भी चीज़ किसी दिन न थी। थी केवल सफलता। एक के बाद मात्र एक सफलता। और सफलता एक ऐसा विष है जो मनुष्य को केवल उद्वेग ही नहीं देता, समाप्त भी कर देता है। वही जो बचपन में उन्होंने जेल काटी थी, उसके बाद से पराजय किसे कहते हैं, यह उन्होंने जाना ही नहीं। असाधारण मनोबल लेकर वह पराजय के आगे भी अपना सिर ऊँचा कर अनिवार्य को पराजित कर, जीवन-संग्राम में सिर पर सदा विजय का मुकुट पहनते आये थे। बीच-बीच में चुनाव के पहले या असेम्बली की दलबन्दी में उनकी उखड़ जाने की-सी हालत हो जाती। उन्हीं दिनों वह अपनी सत्ता तक को विसर्जित कर

अपने को इतने दिनों तक टिकाये रहे। बाहरी लोगों के सामने उनकी इज्जत बराबर बनी रही; अपने मन में भले ही जो रहा हो, क्योंकि मन के अन्दर की दीनता-हीनता तो कोई देख नहीं सकता। उनके लिए सबके सामने सिर उठाकर रखने का नाम ही है राजनीति।

उस समय भी गोविन्द आदि आकर बैठक में बैठते थे।

वे पूछते, 'छोटे बाबू की कोई ख़बर मिली, बड़े बाबू ?'

'छोटे बाबू ?'

इस तरह दिखाते कि वे जैसे उनको सब छोटी-मोटी बातों में अपना सिर खपाने का वक़्त नहीं है।

कहते, 'ओह, स्वदेश की बात कह रहे हो ? उसकी ख़बर मिलती तो तुम लोगों को पता चलता ही।'

इस बात के बाद गोविन्द आदि उनसे कुछ न पूछते। ऊपर से भी यह नहीं समझ में आता कि वे इस सबके बारे में क्या-कुछ सोचते हैं। सिर्फ़ स्वदेश ही क्यों, सारी स्थिति ही उनके चेहरे से, आँखों से एक निर्वैयक्तिक उदासी से हमेशा भरी रहती। उनकी तरह के आदमी बहुत उलझन-भरे मामलों में भी विचलित नहीं होते, यह सचाई सबको मालूम थी। याद है कि जब हरिहर घोष के लड़के कानाई ने उनके मकान के आगे जुलूस बना-कर गला फाड़कर नारे लगाये थे तो उन्होंने उधर नज़र भी उठाकर नहीं देखा।

कानाई आदि के दल ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा था :

'रास्ता घाट बना दो
नहीं तो गद्दी छोड़ दो !'

उस साल बरसात के पानी से घाट-रास्ते सब टूट गये थे। कुछ दिनों के लिए गाड़ी-घोड़ा चलाना तो क्या, पैदल आना-जाना भी असम्भव हो गया था। लेकिन बड़े बाबू से वह बात कहने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। उनके पास जाकर सभी मानो केंचुए बनकर सिमटे रहते।

लेकिन कानाई घोष दूसरी तरह का आदमी था। कहाँ से अपने दल के लोगों को लाकर एक दिन जुलूस बनाकर बड़े बाबू के घर के आगे खड़े होकर नारे लगाने लगा !

लेकिन बड़े बाबू विचलित नहीं हुए। चेहरे पर वही खुली मुसकान लेकर बाहर निकल आये।

बोले, 'कौन हो जी, तुम लोग कौन हो ?'

जुलूस का शोर रुक गया। कोई कुछ कह नहीं रहा था। सभी चुप लगा गये।

'बच्चो, तुम चुप क्यों लगा गये, जी ? तुम्हारा अगुआ कौन है ? किससे बात करूँ ?'

अचानक भीड़ में से एक आदमी लाल झंडा लेकर आगे बढ़ आया।

'ओह, तुम हो ? तुम ही इनके नेता हो ? तो तुम क्या कहना चाहते हो ? मुझसे बताओ, बेटे ! अच्छी तरह आहिस्ता-आहिस्ता, समझाकर मुझे बताओ।'

वह बोला, 'हमारे बलरामपुर में घाट-रास्ते बरसात से ख़राब हो गये हैं, कोई पैदल नहीं चल सकता। कीचड़ में फिसलकर गिरने से लोगों के हाथ-पैर टूटे जा रहे हैं, हम इसकी व्यवस्था चाहते हैं।'

'ओह, यही बात है ! इतनी-सी कहने के लिए इतनी तकलीफ़ उठाकर मेरे घर आये ? तो आओ, आओ बेटा, तुम सब मेरे घर के अन्दर चलो। पसीने से नहा गये हो। ज़रा कमरे में बैठकर पंखे की हवा खा लो।'

कहकर ज़ोर से पुकारा, 'नन्द, कहाँ गया रे, ओ नन्द !'

नन्द के आते ही बोले, 'ओ रे, जा, गौर की दूकान से दो-दो के हिसाब से गरम समोसे और चाय ले आ।'

जो अब तक नारे लगा रहे थे वे सचमुच ही शायद गरमी में चलते-चलते थक गये थे। चाय-समोसे के लालच से ज़रा रुके, उसके बाद कमरे के अन्दर आकर बैठ गये।

हरिसाधन बाबू बोले, 'तुम ही शायद इन लोगों के लीडर हो ? तो तुम्हारा नाम क्या है, बेटा ?'

लीडर बोला, 'मेरा नाम कानाई घोष है।'

'ओह, तुम हरिहर के बेटे हो। ऐसा कहो न ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। जब तुम इतने-से थे, तब देखा था। तुम अपने बाबा की गोद में चढ़कर इस कमरे में कितनी ही बार आये हो। तुम्हारे बाबा ने कितनी बार तुम्हें दिखाकर कहा था—लड़का बड़ा शैतान हो गया है। सो कहाँ, तुम तो शैतान नहीं हुए, बेटा ! तुमको तो देखकर लगता है कि तुम बड़े अच्छे लड़के हो।'

तभी चाय और समोसे आ गये थे। गरम समोसे और चाय की गंध से हवा भर गयी थी।

'और दो-दो समोसे मगाऊँ, बेटा ?'

याद है, इस तरह चालाकी से कितनी ही बार कितनी ही तरह की समस्याओं का समाधान उन्होंने किया। वह तरीक़ा इस बार न चला। बाद के दस बरसों में भी उस तौर-तरीक़े से सफलता न मिली। उसके बाद एक नयी समस्या पैदा हो जाने से समस्या दब गयी थी। हर बार वह

बहकावे की बातें सुना-सुनाकर तमाम समस्याओं को चूं-चूं का मुरब्बा बना देते थे। असली काम कभी कुछ भी न कर सके। करने की सामर्थ्य भी उनकी कम न थी। वे जानते थे कि दुनिया में कभी भी, किसी भी समस्या का स्थाई समाधान नहीं होता। समस्या कभी दबी रहती है और कभी कुछ सामयिक रूप से दूर करके वही समस्या आँखों से ओझल, लेकिन बनी रहती है।

लेकिन इस बार ही जीवन में उन्हें पहली बार इतना बड़ा आघात पहुँचा। और वह आघात आया उनके बेटे की ओर से। इसीलिए रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे बहुत दिनों पहले के पिता के दिये अभिशाप की बात याद आयी। लगा, मानो पिता अदृश्य से हँस रहे हों। कह रहे हों, 'मुझे तुमने जिस तरह कष्ट दिया, तुम्हारा बेटा तुम्हें किसी दिन ठीक वैसे ही कष्ट देगा।'

जब अकेला लगता तो बीच-बीच में घर के अन्दर ज़नाने में चले जाते। उस दिन मुक्ति से दो बातें करते। लड़की के चेहरे की ओर देखकर समझने की कोशिश की कि उसके मन में क्या गुज़र रहा है।

पिता को अचानक घर के अन्दर देखकर मुक्ति को थोड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा, 'बाबा, तुम ? मुझसे कुछ कहना है ?'

लेकिन हरिसाधन बाबू के पास कुछ कहने को न रहता। लेकिन फिर भी बोले, 'न, कुछ कहने नहीं आया।'

मुक्ति ने पूछा, 'आज रात को क्या खाओगे ? पूड़ियाँ या रोटी ?'

'क्यों, जो होगा वही खाऊँगा।'

मुक्ति बोली, 'न, बाह्मनी-दीदी पूछ रही थी ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तू क्या खायेगी ?'

मुक्ति बोली, 'तुम जो खाओगे, मैं भी वही खाऊँगी।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तुझे क्या खाना अच्छा लगता है ?'

मुक्ति ने चेहरे पर मुसकराहट लाने की कोशिश की। बोली, 'मुझे खाने में सब-कुछ अच्छा लगता है।'

बातें ज़्यादा देर तक न चलतीं। नीचे से शायद नन्द बुलाने आता। बेटी से बातें करना उन्हें अच्छा लगता, लेकिन एक ओर बेटी के प्रति उनके स्नेह का आकर्षण और दूसरी ओर उनका अपना कैरियर। ख़ुद और बड़ा होने की कोशिश, और-और बड़े नेता बनने की आकांक्षा उनकी स्वार्थपरता के साथ उनकी हृदय-वृत्ति को आघात पहुँचाती। जहाँ वह देश के नेता, जहाँ वह बड़े आदमी थे, वहाँ वह बेटी के बाप नहीं थे। वहाँ वह

एकाकी सम्राट थे। वहाँ वह सिर्फ़ हुक्म चलाने वाले प्रभु थे।

और उन्हें मालूम था कि लड़की की भी किसी दिन शादी करना होगी। समाज में रहने से वह कर्तव्य उन्हें करना ही पड़ेगा। वह न करने से उनका सामाजिक असम्मान होगा, शायद उनके नेतृत्व को भी हानि पहुँचे। इसीलिए विधु घटक जब आता तो उसे बुलाकर ओट में बड़ी बातें करते।

पूछते, 'लड़का कैसा है? तुमने खुद देखा है?'

विधु कहता, 'जी, कितनी ही बार देखा है। जैसा देखने में, वैसा ही सुनने में है। लड़के के पिता तीन भाई हैं। तीनों के तीन मकान हैं। शुरू से ही कलकत्ता में रहते आये हैं। बड़ी लड़की की शादी हुई है हाटखोला के मुकर्जियों के यहाँ; उसी लड़की के बाद यह लड़का है। पिता का पैतृक व्यवसाय था; लड़का नौकरी करता है टर्नर मॉरिसन कम्पनी में। आजकल बारह सौ रुपये महीना मिल रहा है।'

'बस, बारह सौ रुपये?'

'जी, अभी तो शुरुआत ही है। पिता ने ही साहब से कहकर लगा दिया था। बाद में उम्र के साथ और भी उन्नति होगी।'

हरिसाधन बाबू कुछ किन्तु-परन्तु करते हैं। बोले, 'बारह सौ रुपये? बारह सौ रुपये महीने में गृहस्थी चला सकेगा?'

विधु बोला, 'जी, वे लोग क्या लड़के की तनख्वाह पर निर्भर करते हैं? वह रुपया तो घाते में है। शेयर में उनका तमाम रुपया लगा है, उसी से तो वर्ष में कई हज़ार रुपये आते हैं। उस पर राजपुर की जायदाद है।'

'राजपुर कहाँ है?'

'जी, राजपुर कलकत्ता के दक्खिन में है, पच्छिम में पुँटियरी के पास। वहीं उनके पुरखों का रहना था न!'

हरिसाधन बाबू सब सुनकर सन्तुष्ट न हुए। बोले, 'न, न, विधु, यह लड़का रहने दो, तुम और कोई सम्बन्ध देखो। मेरी अकेली लड़की। मैं अच्छा दे-दिलाऊँगा। और मेरा जो कुछ है, बाद में सब उस लड़की को ही मिलेगा।'

विधु कहता, 'सब लोग छोटे बाबू की बात पूछते हैं।'

'छोटे बाबू की बात? छोटे बाबू की बात क्योंकर उठती है?'

'जी, वे तो जानना चाहते हैं कि लड़की के कितने भाई-बहन हैं। सो मैंने बताया कि एक बड़ा भाई है। वही पूछा कि बड़े भाई की शादी कहाँ हुई है?'

'तो तुमने क्या कहा?'

'जी, मैंने कहा, मैं कुछ नहीं जानता। छोटे बाबू के बारे में कुछ पूछने पर मैं लोगों को क्या जवाब दिया करूँ, वह मुझे बता दीजिये।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तुम्हारी बात मेरी समझ में कुछ नहीं आती। मेरी लड़की को बहू बनाकर लड़के वाले अपने घर ले जायेंगे, उसमें लड़की का भाई क्या करता है, भाई है या नहीं—ये सब बातें कैसे उठती हैं ? यह सब मालूम कर उन्हें क्या फ़ायदा होगा ?'

विधु बोला, 'जी, जिस घर में रिश्ता करते हैं, तो उसका वंश कैसा है, उसकी जानकारी तो लेंगे ही।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तो अगर जानकारी लेना चाहते हैं तो कह देना कि लड़की का भाई वकालत करता है।'

'वह भी कहा था। तो पूछा कि किस कोर्ट में प्रैक्टिस करता है ?'

हरिसाधन बाबू तब ख़फ़ा हो जाते। कहते, 'देखो विधु, मेरी लड़की गयी-गुजरी नहीं है। अपनी लड़की की शादी में फूल-शैया के लिए जो सामान दूँगा उसे भू-भारत में किसी ने कभी न दिया होगा। उसके बाद नक़द जितना वे चाहें दूँगा। लेकिन लड़की के भाई के बारे में अगर वह इतना अधिक जानने को उत्सुक हों, तो मैं उस घर में लड़की न दूँगा।'

विधु चुप रह जाता। वह समझ जाता कि बड़े बाबू ख़फ़ा हो गये हैं।

उसके बाद हरिसाधन बाबू कहते, 'अब तुम जाओ विधु, रात-दिन लड़की की फ़िक्र लेकर रहने से तो मेरा चलेगा नहीं। मुझे और भी काम हैं।'

कहकर वह उठ खड़े होते। विधु भी और हिम्मत करके वहाँ न रुकता। उठकर दरवाज़े की ओर चला जाता है। लेकिन हरिसाधन बाबू उसे फिर बुलाते हैं। कहते, 'विधु, सुन जाओ, एक बात सुनो !'

विधु लौटकर फिर बड़े बाबू के आगे विनम्र भाव से खड़ा हो जाता।

हरिसाधन बाबू कहते, 'देखो, अब कोई अगर लड़की के भाई की बात कभी भी पूछे तो कह देना कि भाई मर गया।'

विधु तो ताज्जुब में पड़ गया। वह बोला, 'जी...!'

हरिसाधन बाबू बोले, 'न, जी-वी कुछ नहीं, जो कहा वही तुम उनसे कह देना। अब तुम जाओ।'

विधु आश्चर्यचकित-सा वहीं खड़ा रहा, और हरिसाधन बाबू तेज़ी से चलते-चलते उससे बचकर अन्दर की ओर जनाने में घुस गये। लेकिन दरवाज़ा लाँघते ही बेटी से एकदम सामने भेंट हो गयी।

हरिसाधन बाबू चौंक पड़े। 'बोले, यह क्या मुक्ति, तू ? तू यहाँ अँधेरे

में अकेली खड़ी-खड़ी क्या कर रही है ?'

मुक्ति ने पिता से पकड़ी जाने पर भागने की कोशिश की, लेकिन हरिसाधन वावू ने जाने न दिया। पूछा, 'यहाँ खड़े-खड़े तू कर क्या रही थी ?'

फिर भी मुक्ति ने कुछ जवाव न दिया। केवल अपराधी की तरह मुँह वनाकर वहीं खड़ी रही।

हरिसाधन वावू लड़की की ठोड़ी पकड़कर मुँह उठाते ही ताज्जुव में पड़ गये।

वोले, 'तू रो रही है, वेटी ?'

पिता के हाथ से मुँह छुड़ाकर उसने भाग जाना चाहा, लेकिन भाग न सकने पर वहीं पकड़ी जाने पर शर्म से अधमरी हो मन-ही-मन धरती के फट जाने की प्रार्थना करने लगी।

हरिसाधन वावू कहने लगे, 'कुछ फ़िकर न कर वेटी, मैं क्या शौक़ से ख़फ़ा होता हूँ ? मेरा ख़फ़ा होना क्या ग़लत है, तू ही वता। जो भी सम्वन्ध आता है, सभी पूछते हैं कि लड़की का भाई क्या करता है ? अरे, लड़की के भाई की वात लेकर किसी को क्या करना है ? जिसके भाई न हो उन सव लड़कियों की क्या शादी नहीं होती ? मेरा वेटा जहन्नुम में जाये, मैं तो हूँ, मैं तो अभी तक नहीं मरा हूँ। किसकी लड़की है, असल में तो यही वड़ी वात है। लड़की के मामा का घर, देश या वंश, उसकी जानकारी कोई चाहे तो वता दूँ। लेकिन भाई कहाँ क्या करता है, उसकी कहाँ शादी हुई है, या नहीं हुई, जिसके साथ शादी हुई है, और क्या हुआ है, ये सव भेद कुरेद-कुरेदकर मालूम करने से किसी को क्या फ़ायदा ?'

फिर भी मुक्ति के मुँह से एक वात नहीं निकली। वह तव साड़ी के आँचल से आँखें पोंछ रही थी।

हरिसाधन वावू दुलार से उसे सान्त्वना देने लगे। वोले, 'छिः, वेटी, रोते नहीं हैं। रोने की क्या वात है ? तुम्हारा भाई हमको इतनी वड़ी मुसीवत में डालकर कहीं चला गया, इसलिए क्या मैं रोता हूँ ? आदमी का जीवन—माने ही दुख है। इस दुनिया में एक भी आदमी दिखा सकती हो जिसको दिखाकर कह सको कि वह खुश है ? मेरी माँ भी तो एक दिन मुझे छोड़कर चली गयी, उसके लिए क्या मैं रोता हूँ ? मैंने समझ लिया है कि इसी का नाम दुनिया है। यह दुख, विवाद, रोग, शोक, जरा, वुढ़ापा—यह सव लेकर तो हमें ज़िन्दा रहना होगा, वेटी ! ज़िन्दा रहने पर सव सहना होगा और साथ-साथ गृहस्थी भी वसानी-करनी होगी।'

उसके वाद ज़रा रुककर वेटी की पीठ पर हाथ रखकर वोले, 'चलो

बेटी, चलो, चलो खाना खा लें। गुस्से में मेरे मुँह से जाने क्या-क्या बातें निकल जाती हैं, उन सब बातों के क्या कोई मतलब होते हैं, या मैं उन्हें दिल से कहता हूँ ? उन सब बातों को सुनकर तुम झूठ-मूठ मन ख़राब मत किया करो। चलो, खा लें। आज क्या बनाया है, रोटी या पूड़ियाँ ?'

मुक्ति आँखें पोंछते-पोंछते आगे-आगे चलने लगी। और हरिसाधन बाबू चलने लगे पीछे-पीछे।

जो मनुष्य को समस्याओं से मुक्ति दे सके इतने बड़े मुक्तिदाता की शायद आज भी सृष्टि नहीं हुई। ढाई हज़ार बरस पहले तथागत बुद्ध एक दिन मनुष्य की मुक्ति की खोज में राजपाट छोड़कर अनजानी राहों पर निकल पड़े थे। उसके बाद ईसामसीह से शुरू कर शंकराचार्य, तुलसीदास, चैतन्यदेव आदि तक ने इसी उद्देश्य को लेकर अवतार लिया। किन्तु सब महापुरुषों की सब साधनाएँ यन्त्र-युग के आविर्भाव के साथ-साथ समूल नष्ट हो गयीं। तभी से मनुष्य ने मनुष्य को नौकर बना लिया। जो जुलाहा था उसने करघा चलाना छोड़ दिया। मशीन के सूत का मालिक बनकर आराम से पैर-पर-पैर रखकर बैठ गया और दूसरे जुलाहे उसके अधीन होकर उस मालिक की मशीन का सूत उपयोग में लाने लगे। इसी तरह पालवाली नौकाओं का युग समाप्त हो गया, मशीनी जहाज़ से; हस्त-लिखित पुस्तकों का युग बीत गया छापेखाने से; चिट्ठी लिखकर समाचार भेजने-पाने का युग बीत गया टेलीफ़ोन से; और उसके बाद शताब्दी का घेरा लाँघकर 1964 वर्ष की जनवरी में एक दिन ओलिम्पिक खेल जापान में शुरू हुए और साथ-ही-साथ अमेरिका के वाशिंगटन शहर के लोग अपने-अपने कमरों में बैठकर वे तसवीरें टेलीविज़न में देखने लगे।

देखते-देखते मन में आया—अब क्या ? अब किस बात की फ़िक्र है ? भगवान कुछ नहीं है, भगवान के अवतार ईसामसीह, शंकराचार्य, तुलसी-दास, चैतन्यदेव, उनकी वाणी और शब्द—रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद्, वेद इन्हें लिपिबद्ध करने वाले व्यासदेव, वाल्मीकि कोई कुछ नहीं है। अगर ईश्वर नाम से कुछ कहीं है तो वह है—यही टेक्नॉलोजी,

यही मशीनें। ये मशीनें ही इस युग में एकमात्र उपास्य देवता हैं जो हमें समस्याओं से मुक्त करेंगी। यही दूरी को निकट करेंगी और निकट को निकटतर करेंगी। इसीलिए—नमो यन्त्रः, नमो यन्त्रः, नमो यन्त्रः नमो-नमः।

और उसी दिन से आदमी की आदमी से सहानुभूति उठ गयी। सह-योगिता की भावना का लोप हो गया। समवेदना ने विदा ले ली। एक-एक आदमी बन गया हरिसाधन चट्टोपाध्याय या देवकान्त भद्र, और नहीं तो सर्वजय बनर्जी ही। यही बन गये इस युग के राजनीतिज्ञ, समाज-सेवक और विधिवेत्ता। इन्हीं के प्रभाव में सामाजिक और गृहस्थ मनुष्य डाँवा-डोल हो उठे। बंगाल के तमाम गाँवों में जितने कानाई घोष थे उन सबके घर आग में जल गये; जितने सदर स्ट्रीट के घर थे सबों में आ बैठीं संध्या घोष, आदि। और जिस तरह एक बार 1947 वर्ष के अन्त में संयुक्त परिवार तहस-नहस होना आरम्भ हो गया था, अब वह भी पूरी तौर पर नष्ट हो गया। और जो सामान्यतः सहयोग का अंश-भर मौजूद था, वह भी बीसवीं सदी के सातवें दशक में पहुँचकर समाप्त हो गया।

उस दिन सवेरे के वक़्त शहर के एक मुहल्ले में होकर एक आदमी पैदल जा रहा था। पुलिस की वर्दी पहने था। हाथ में एक छोटा डण्डा था। ज़मीन पर चलने के ढंग से लगता था मानो 'कुछ परवाह नहीं' की मनोवृत्ति हो। पैदल चले तो पैदल ही चले। सहसा किसी गली से कोई दो-एक लड़कों ने निकलकर उन्हें निशाना बनाकर पिस्तौलें चलायीं। सारा मुहल्ला उस आवाज़ की गूँज से दो बार काँपकर रुक गया। और धुआँ! सड़क धुएँ से भर गयी। सड़क पर जो दो-एक आदमी उस समय भी थे वे जिधर राह मिली भागकर ग़ायब हो गये। रास्ते के दोनों ओर के घरों की खिड़कियाँ-दरवाज़े फटाफट बन्द हो गये। दो-चार आदमी-औरतें-बुड्ढे-बुढ़ियाँ बात का पता लगाने के लिए बाहर देखते ही डर के मारे काँपने लगे और साथ-ही-साथ फिर खिड़की-दरवाज़े सब बन्द कर मानो निश्चिन्त हो गये।

सड़क पर गिरा आदमी उस समय निस्पन्द और शान्त था। और खून उसके शरीर से सड़क पर बिछी सुर्ख़ी पर भल-भल बहने लगा।

शायद किसी ने घटना की बीभत्सता की ख़बर थाने में कर दी थी। ख़बर मिलते ही भोंपू बजाते हुए पुलिस का दस्ता जीप लेकर आ पहुँचा, और इधर-उधर देखा। सब मकानों के खिड़कियाँ-दरवाज़े बन्द थे। देखते-देखते पुलिस के दस्ते ने तमाम मकानों को घेर लिया, जिससे कि कोई भाग न सके, कोई छिप न सके। तभी फ़ोटोग्राफ़र ने आकर लाश का फ़ोटो

ले लिया। उसके वाद एक वैन आकर पुलिस वाले की लाश को उठाकर ले गयी।

लेकिन इस दृश्य का अन्त यहीं नहीं हुआ। ठीक तीसरे पहर पुलिस वालों का दल मुहल्ले में आ पहुँचा। मुहल्ला सवेरे से ही सन्नाटे में था, अव नये सिरे से पुलिस के आने से और भी सन्नाटे में आ गया। उन्होंने एक-एक कर सव मकानों के सदर दरवाज़े की कुंडी खटखटाकर अन्दर रहने वालों से वातें कीं। पहले ही खून देखकर सव सहमे हुए थे। अव वे पुलिस देखकर एकदम थर-थर काँपने लगे।

'आप डर क्यों रहे हैं?'

एक सज्जन वूढ़े व्यक्ति थे। दमे के रोगी। वड़ी मेहनत से, वड़े त्याग से, जीवन-भर की खून-पसीने की कमाई से अन्तिम वय में शहर के इस भाग में मकान वनवाया था। सोचा था कि खुली हवा में और चारों ओर हरे पेड़-पौधों के दृश्य देखकर शेष जीवन शान्ति से विता देंगे। लेकिन पुलिस का ऐसा उपद्रव भी हुआ करेगा, यह सोचा भी न था।

वोले, 'आपका नाम क्या है?'

'श्री भुजंग पालित।'

'आपके घर के सामने की सड़क पर आज सवेरे एक पुलिस-अफ़सर मारा गया है, आपने देखा था?'

भुजंग वावू वोले, 'जी, मुझे दमे का ज़ोर का दौरा रहता है, मैं हमेशा विस्तर पर लेटा रहता हूँ।

'आपने देखा या नहीं, वस यही वताइये।'

'जी, मैंने कुछ नहीं देखा।'

'आपके घर में किसी ने देखा?'

'जी, मेरी पत्नी तो गठिया की वीमार है, वह उस वक़्त रसोई में थी। और मेरे तीन लड़के हैं, वे सवेरे नौकरी पर चले गये थे। उनमें से कोई घर पर नहीं था।'

'इस वारे में आपने सुना है कि किसने खून किया है?'

भुजंग वावू के दमे का ज़ोर और वढ़ गया। हाँफते-हाँफते वोले, 'मैं किसी के ऊँच-नीच में नहीं रहता। मैं भी नहीं, मेरी पत्नी और लड़के भी नहीं रहते।'

'ठीक है, आपके लड़के ऑफ़िस से आयें तो एक वार थाने पर मुझसे मिलने को कह दीजियेगा।'

कहकर मुहल्ले के दूसरे घरों में जाकर वही सवाल करने लगे। सवकी एक ही वात थी। मुहल्ले में जो इतनी वड़ी हत्या हो गयी, उसे

किसी ने नहीं देखा। किसी ने तो घटना की वात भी नहीं सुनी। और किसी को उस वक़्त बुख़ार हो आया था, किसी के पेट में दर्द था, कोई उस समय दूध लेने हलवाई की दूकान पर गया हुआ था, और कोई बाज़ार!

आख़िर को एक मकान के सामने आने पर मकान-मालिक उतरकर आये। उनसे भी जिरह हुई। उन्होंने भी न तो कुछ देखा और न कुछ सुना ही था।

पुलिस ने पूछा, 'आपके घर में और कौन है?'

सज्जन बोले, 'मेरे एक किरायेदार हैं, वे पीछे की ओर रहते हैं।'

'उन्हें ज़रा बुला तो दीजिये।'

सज्जन बोले, 'वे महिला हैं।'

पुलिस बोली, 'तो हों वे महिला, आप उन्हें बुला दीजिये।'

भले आदमी ने मकान के अन्दर जाकर एक महिला को बाहर पुलिस के आगे लाकर हाज़िर कर दिया।

पुलिस ने उनसे भी पूछा, 'आपका नाम क्या है?'

महिला बोलीं, 'संध्या घोष।'

'आप कितने दिनों से इस मुहल्ले में आयी हैं?'

'बहुत दिन हुए। लगभग एक वरस से ऊपर हो गया।'

'आपके घर में कोई आदमी है?'

'हाँ।'

'उनका नाम क्या है?'

'स्वदेश चट्टोपाध्याय।'

'वह कहाँ हैं?'

'वह एक काम से कलकत्ता गये हैं।'

पुलिस ने पूछा, 'आज सवेरे इस मकान के सामने एक पुलिस-अफ़सर का खून हो गया है, आपने सुना है?'

संध्या बोली, 'पता है।'

'पता है?'

'हाँ, पता है।'

'आपने सड़क पर मृत लाश पड़ी देखी थी?'

'हाँ, बाहर से शोरगुल सुनकर मैंने बाहर आकर देखा कि मुहल्ले के सारे घरों के लोग बाहर निकल आये हैं। और मैंने देखा कि एक पुलिस की वर्दी पहने आदमी ज़मीन पर गिरा हुआ है, और उसके बदन से खून बह रहा है।'

'उसका खून किन लोगों ने किया, आप जानती हैं?'

संध्या घोष बोली, 'जानती हूँ।'

आस-पास उस वक़्त जो लोग जिरह सुनने को आये खड़े थे वे सब अब चौंक पड़े। इतने लोगों से पुलिस ने जिरह की और किसी ने तो ऐसे जवाब नहीं दिये। इस तरह तो कोई साफ़ बात नहीं बोला।

पुलिस के दारोग़ा को भी लगा कि उन्होंने ग़लत सुना। पूछा, 'आप उन्हें जानती हैं ?'

संध्या बोली, 'बताया तो कि हाँ, जानती हूँ।'

'उन्हें आप पहचनवा सकती हैं ?'

संध्या बोली, 'नहीं।'

'क्यों ? क्यों नहीं पहचनवायेंगी ?'

संध्या बोली, 'पहचनवा देने से आप उन्हें पकड़ लेंगे, पकड़कर जेल में डाल देंगे।'

'तो आप नहीं चाहतीं कि वे पकड़े जायें ?'

'न।'

'क्यों नहीं चाहतीं ? आपको क्या नहीं मालूम कि वे समाज-विरोधी लड़के हैं ? वे देश का सत्यानाश कर रहे हैं। वे देश के बड़े-बड़े महापुरुषों की मूर्तियाँ तोड़ते हैं; वे सारे शान्तिप्रिय लोगों के घरों में गुमनाम चिट्ठियाँ भेजकर उन्हें डराते हैं ?'

संध्या बोली, 'वह भी मालूम है, लेकिन वे सब यह क्यों कर रहे हैं वह भी जानती हूँ।'

'बताइये, क्या जानती हैं ?'

संध्या बोली, 'आप लोगों की सरकार के अत्याचार के बदले में ही वे यह सब करते हैं। माँ के पेट से ही कोई समाज-विरोधी बनकर नहीं पैदा होता है। सरकार उन्हें समाज-विरोधी बनाती है।'

'आपको पता है, आप किसके सामने ये सब बातें कह रही हैं ?'

'जानती हूँ, मैं एक पुलिस-इंस्पेक्टर से ये बातें कह रही हूँ।'

'लेकिन उन स्वामी विवेकानन्द, आशुतोष मुकर्जी, विद्यासागर, महात्मा गांधी ने क्या क़सूर किया ? उनकी मूर्तियाँ तोड़कर किसको क्या फ़ायदा हुआ ? उनके आदर्शों को धूल में मिलाकर देश का क्या लाभ हो रहा है ?'

संध्या घोष में डर नाम का जैसे कुछ भी न हो। उस समय भी वह पुलिस के आगे उसी तरह सिर ऊँचा कर और छाती तानकर खड़ी थी। मुहल्ले के सभी लोग उसके बात करने की हिम्मत देखकर भौंचक्के थे। मकान-मालिक शक्तिधर बाबू को बहुत डर लगने लगा। सब गया। इस

लड़की को उसने अपने घर में किरायेदार रखा है !

वह वात के वीच में वोल पड़े। वोले, 'सर, मैं एक वात कहूँ, सर ?'

दारोग़ा वावू विगड़ गये। वोले, 'अव आप क्या कहेंगे ? कहिये, जो जो कहना है जल्दी कहिये।'

शक्तिधर वावू वोले, 'देखिये सर, कहा जाये तो मैं इस महिला को पहचानता भी नहीं। गोकि मेरी किरायेदार हैं, लेकिन, सर, विश्वास कीजिये, मेरे साथ सम्वन्ध सिर्फ़ महीने-महीने किराया लेने का ही है।'

संध्या घोष भी वोली, 'हाँ, वह ठीक ही कह रहे हैं, मैं जो कुछ कह रही हूँ वह पूरी तरह अपनी ज़िम्मेदारी पर कह रही हूँ। मेरे साथ कभी भी उनकी और कोई वात नहीं होती। वह मेरे मकान-मालिक हैं, और मैं उनकी किरायेदार-भर हूँ, और कुछ नहीं।'

दारोग़ा वावू वोले, 'लेकिन आप मेरी वातों का जवाव दीजिये। वह विवेकानन्द, आशुतोष मुकर्जी, विद्यासागर, महात्मा गांधी की मूर्तियाँ तोड़कर क्या फ़ायदा होता है, वह तो आपने वताया नहीं ?'

संध्या घोष वोली, 'आप तो एक साँस में उनके नाम गिना गये, लेकिन कलेजे पर हाथ रखकर तो वताइये, आप उनके द्वारा वताये गये आदर्शों पर चलते हैं ?'

दारोग़ा साहव कुछ जवाव देने जा ही रहे थे कि उसके पहले ही संध्या वोली, 'न, मैं कहती हूँ कि आप उनके वताये आदर्श मानकर नहीं चलते। सिर्फ़ आप ही क्यों, सरकार भी उन्हें नहीं मानती—वस, उनकी मूर्तियाँ वनवाकर ही छुटकारा पा लेती है। लेकिन फिर भी उनका नाम लेना पड़ता है। उनकी जीवनियाँ स्कूल के वच्चों को पढ़ाना होती हैं; हर पार्क में उनकी संगमरमर की मूर्तियाँ खड़ी करना होती हैं, क्योंकि उनके नाम को भुनाकर लोगों को दवाये रखने में आसानी होती है; जो कुछ क्षमता है वह अपने हाथ में रखने में मदद मिलती है।'

दारोग़ा वावू वोले, 'लेकिन पता है, आप जो वातें कह रही हैं वे क़ानून की नज़र में जुर्म हैं। पता है, मैं इसके लिए आपको गिरफ़्तार कर सकता हूँ। मुझमें वह सामर्थ्य है।'

संध्या वोली, 'तो क्या मैं कह रही हूँ कि आप गिरफ़्तार नहीं कर सकते ? आप लोग मुझ जैसे ग़रीव लड़के-लड़कियों को ही गिरफ़्तार कर सकते हैं। जिनके पास रुपये नहीं, कौड़ी नहीं, और जिनकी मदद करने वाला भी कोई नहीं, उन्हें ही। लेकिन आप लोग सभी को गिरफ़्तार नहीं कर सकेंगे, वह सामर्थ्य आपमें भी नहीं है।'

'हाँ, कर सकते हैं। हम सभी को गिरफ़्तार कर सकते हैं।'

'न, मैं कहती हूँ, आप लोग वैसा नहीं कर सकते। आप लोग वैसा करें भी तो ऊपर वालों के दबाव से उन्हें छोड़ देना पड़ेगा। और अगर वह कर सकते तो आज जिनकी हत्या हुई है उनकी हत्या न होती।'

भीड़ में से एक आदमी बोल उठा, 'तुम पुलिस से बहस क्यों कर रही हो? उनको बहुत काम हैं। इधर-उधर की बातें कहकर उनका वक़्त क्यों बेकार में बरबाद कर रही हो?'

संध्या उन भले आदमी की ओर देखकर बोली, 'आप जैसे लोगों के कारण ही तो इनके ज़ोर-जुल्म इतने बढ़ गये हैं। आप लोग विरोध भी नहीं करेंगे, और जो हिम्मत करके विरोध करे उसे भी रोकेंगे। आप लोग क्यों यहाँ खड़े अपना वक़्त बरबाद कर रहे हैं? आप लोगों को कोई काम नहीं है? आप लोग ही बताइये न, मैं उनसे कुछ ग़लत बातें कह रही हूँ? जो लोग आपके चावलों में कंकड़ मिलाते हैं, मसालों में मिलावट करते हैं, जो अधिकार और रुपयों की चोटी पर बैठकर ग़रीब लोगों के घर में आग लगा जलाकर मारते हैं, जो सदर स्ट्रीट, किड स्ट्रीट और रिपन स्ट्रीट के मकानों से औरतों का व्यापार कर रुपयों के पहाड़ खड़े कर लेते हैं, उन्हें क्या यह गिरफ्तार कर सकते हैं? वही बतायें, उन्हें गिरफ्तार कर सकते हैं? मैं कहती हूँ, नहीं कर सकते। कम-से-कम एक भी उदाहरण बता दें, सुनूँ तो!'

एक आदमी बोला, 'तुम चुप रहो दीदी, चुप रहो। देखता हूँ कि तुम्हारी वजह से हमारे मुहल्ले के सब लोगों को अन्त में पुलिस गिरफ़्तार कर लेगी।'

एक और आदमी हिम्मत कर चिल्ला उठा, 'यह जो सरकार के ख़िलाफ़ तुम शिकायत कर रही हो, तो क्या कहना चाहती हो कि सरकार ने कुछ भी अच्छा नहीं किया? सरकार क्या हम लोगों को खाने-पहनने को नहीं दे रही है? ज़मींदारों के अधिकार क्या सरकार ने नहीं छीन लिये?'

संध्या घोष बोली, 'यह बात कौन कह रहे हैं, कौन कहते हैं? वे ज़रा आगे आयें। उनकी बात का जवाब मैं उनको ही दूँगी—आगे आइये।'

कोई आगे नहीं आया। संध्या बोली, 'ज़मींदारी उठ गयी, यह ठीक है। लेकिन आप लोग कभी कलकत्ता गये हैं? जाकर देखा है, कितने चौदह-पन्द्रह मंज़िलों के मकान वहाँ खड़े हो गये हैं! अगर नहीं गये हैं तो जाकर देख आयें कि एक-एक मकान एक-एक ज़मींदारी है। उसी एक-एक मकान से वे लोग हर महीने दस-बारह लाख रुपये कमाते हैं। इसके बाद भी कहेंगे कि ज़मींदारी उठ गयी है? पार्लियामेण्ट के एक-एक मेम्बर के

वायें हाथ-दाहिने हाथ में हर महीने कितने रुपये आते हैं, पहले उसका पता लगाइये, उसके बाद कहियेगा कि देश से ज़र्मींदारी उठ गयी है।'

सहसा भीड़ में से एक आदमी बोल उठा, 'मशाई, छोड़िये, जाने दीजिये।'

पुलिस अफ़सर ने चारों ओर नज़र फेरकर देखा कि भीड़ बहुत बढ़ गयी है। पुलिस की अपेक्षा आदमियों की भीड़ ज्यादा है। उसके बाद सब-कुछ देख-भाल कर बोले, 'ठीक है, मैं फिर बाद में आऊँगा।'

कहकर भीड़ को चीरते हुए वह झटपट जीप पर जा बैठे। सिपाही लोग भी जीप पर बैठकर चले गये।

संध्या घर के अन्दर चली जा रही थी, लेकिन भुजंग बाबू ने आगे आकर पुकारा, 'ओ माँ, सुनो!'

संध्या पीछे मुड़कर खड़ी हो गयी। भुजंग बाबू बोले, 'तुमने ठीक किया माँ, खूब सुनाया, बेटों को इसी तरह की बातें सुनाने से वे ठीक होंगे। वे अव्वल दर्जे के हरामज़ादे हैं।

एक और आदमी बोला, 'अरे मशाई, मेरे बेटे को उस दिन उसी तरह ले गये, मैंने थाने जाकर पूछा कि मेरे बेटे ने क्या किया है, तो मालूम है क्या बोले—जो किया अच्छा किया है, आप में सामर्थ्य है तो आप कोर्ट में मुक़दमा करें। अदालत खुली है।'

भुजंग बाबू ने उस बात पर ध्यान न देकर संध्या की ओर देखकर कहने लगे, 'सचमुच तुम में हिम्मत है, माँ! तुम धन्य हो। मैं दमे का रोगी हूँ। मेरा तो पुलिस का नाम सुनते ही कलेजा धड़कने लगा था। तुमने हमारे मुहल्ले की इज्ज़त रख ली, माँ!'

संध्या ने उस सज्जन की ओर एक बार करुण दृष्टि से देखा। फिर घृणा से उसका शरीर सिहर उठा। और उसके बाद कहीं मुँह से कुछ अप्रिय बात न निकल जाये, इसलिए बड़ी मुश्किल से अपने को संभालकर घर के अन्दर चली गयी।

कलकत्ता के उसी सत्तर के दशक के दिन और रात सदा उस समय

स्तव्ध और गम्भीर रहते थे। लगता था कि अभी शायद किसी का खून हो गया है। अभी कोई दुर्घटना हो गयी है। ट्रामों और बसों में बैठकर बहुत-से लोग किराया नहीं देते थे। अचानक कहीं कुछ नहीं, सूने पार्क में बम के फटने से चारों दिशाएँ थर-थर काँप उठतीं। हर दीवार पर हाथ से लिखे नये-नये पोस्टर भर जाते। उसमें आगामी भविष्य की उज्जवल क्रान्ति का सुस्पष्ट इंगित रहता। अचानक किसी-किसी दिन किसी-किसी मुहल्ले में किसी विशिष्ट व्यक्ति की हत्या हो जाती। कौन खून करता है, वे गुण्डे हैं या राजनैतिक कार्यकर्ता हैं, यह समझ में नहीं आता। सिर्फ़ पोस्टर पढ़कर समझ में आता। जो लोग उन्हें लिखते वे हिंसा में विश्वास करते थे। वे बताते कि शक्ति का स्रोत मनुष्य नहीं, मनुष्य की निरन्तर क्षमाशीलता नहीं है, मनुष्य का त्याग भी नहीं—शक्ति का स्रोत एकमात्र बन्दूक की नली है। एकमात्र बन्दूक की नली ही पीड़ित मनुष्य को मुक्ति दिला सकती है।

उस दिन शाम को संध्या घोष के मकान की कुंडी खड़क उठी।

'कौन ?'

बाहर से मकान-मालिक शक्तिधर बाबू की आवाज़ आयी, 'माँ, ज़रा दरवाज़ा तो खोलो, माँ !'

संध्या ने दरवाज़ा खोला। बोली, 'आप हैं ?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'वह नहीं हैं ? वह कहाँ हैं ? स्वदेश बाबू ?'

संध्या बोली, 'वह कलकत्ता गये हैं।'

'इस वक़्त कलकत्ता ? जो हाल चल रहा है, इस वक़्त क्या इतनी देर कर बाहर रहना ठीक है ? तुम्हीं बताओ, माँ ?'

संध्या ने उस बात का जवाब न देकर पूछा, 'आप क्या कुछ कहने आये थे ?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'कहने तो आया था। लेकिन स्वदेश बाबू तो नहीं हैं। किससे कहूँ ?'

संध्या बोली, 'मुझसे ही कह सकते हैं, अगर आपको कहने में कोई आपत्ति न हो।'

'तुमसे कहूँ ? तुम कुछ बुरा तो न मानोगी ?'

'न, न, जो कहना हो मुझसे कहिये।'

शक्तिधर बाबू पहले तो मानो कुछ संकोच करने लगे। उसके बाद बोले, 'तो तुमसे साफ़ कहूँ। मैं बड़ी परेशानी में हूँ। बड़ी मुसीबत में हूँ।'

'आप मुसीबत में ? क्या मुसीबत है ?'

'मेरी मुसीबत की बात बताने से तुम समझ पाओगी या नहीं, यह ठीक नहीं मालूम। फिर भी कह रहा हूँ। मेरी मुसीबत तुम्हारे कारण है।'

'मेरे कारण आपकी मुसीबत? सो मैंने आपका क्या किया?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'मुसीबत नहीं की? तुम्हारे आने के पहले तक इस मुहल्ले में चारों ओर बड़ी शान्ति थी। मुहल्ले में कोई गड़बड़ी नहीं थी, खून-ख़राबा भी नहीं था। हमारा मुहल्ला उस समय बिलकुल स्वर्ग-सा था। जो गड़बड़ियाँ शुरू हुई वे तुम्हारे आने के बाद ही हुई। मैं पूछूँ कि तुम्हारे घर जो लोग आते हैं, वे कौन हैं? दिन नहीं, रात नहीं, बस तुम्हारे कमरे में किन लोगों का अड्डा जमा रहता है? तुम्हारी ऐसी क्या बातें होती हैं कि रात के बारह बजे तक वे समाप्त नहीं होतीं?'

संध्या बोली, 'उसमें क्या आपकी नींद में ख़लल पड़ता है?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'वह नहीं हुआ सही। तो इसलिए हमारे घर की चहारदीवारी में ये सब शर्मनाक बातें चलें, यह तो कोई भी मकान-मालिक बरदाश्त नहीं करेगा। मकान तो मेरा है। यह तो मानोगी? या वह भी नहीं मानतीं?'

'वह क्यों नहीं मानूँगी? आपका ही मकान है। मैं तो बस एक किरायेदार ही हूँ। और तो कुछ नहीं।'

शक्तिधर बाबू बोले, 'यही तो बुद्धिमती लड़की की तरह बात कह रही हो। तुम-सी बुद्धिमती लड़की के मुँह से इस तरह की बातों की ही आशा थी। अब तुमसे एक प्रार्थना है माँ, तुम तो बहुत दिन हमारे घर में रहीं। अब हमें ज़रा छुटकारा दे दो।'

'छुटकारा?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'हाँ, माँ! ठीक समझीं। तुम मकान छोड़ दो तो मेरी जान बचे।'

संध्या बोली, 'लेकिन आप तो नियमित रूप से किराया पा रहे हैं। पा रहे हैं न?'

'हाँ, किराया मैं नियमित रूप से पाता हूँ। तुम किराया नहीं देतीं, यह दोष तो तुम्हारा बड़े-से-बड़ा दुश्मन भी नहीं लगा सकेगा। लेकिन माँ, केवल नियम से किराया देते जाना ही तो नहीं होता है। यह भले गृहस्थ लोगों का मकान है, यह भी तो तुम्हें सोचना चाहिए।'

'इसके मतलब?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'यह जो स्वदेश बाबू तुम्हारे साथ एक घर में रहते हैं, लोग पूछते हैं कि वे तुम्हारे कौन हैं? मैं तो लोगों का मुँह बन्द न रख सकूँगा। लोग अगर भली-बुरी बातें कहें तो मैं क्या कर सकता हूँ?

और उसके सिवा माँ, मैं इस गन्दे मामले में पड़ना ही नहीं चाहता। ज़्यादा-से-ज़्यादा यह कि तुम मेरे घर में किरायेदार हो, तभी कहना होता है। नहीं तो मेरा क्या, बताओ न!'

संध्या बोली, 'आप जो कहना चाहते हैं साफ़ कहिये न। आप हमसे मकान छोड़ देने को कह रहे हैं, यही न! तो आपसे कह देती हूँ मालिक मशाई, कि हम यह मकान नहीं छोड़ेंगे।'

शक्तिधर बाबू बोले, 'यह क्या तुम्हारी-सी बुद्धिमती लड़की की बात हुई? मैं तो तुमसे कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं कर रहा हूँ। अच्छी तरह भलमनसी से तुमसे बातें कह रहा हूँ। लेकिन तुम अचानक इस तरह क्यों बिगड़ी जा रही हो? मैं क्या तुमसे गुस्से की बात कह रहा हूँ?'

संध्या बोली, 'न, आप मिठास से ही बातें कर रहे हैं; मैं भी मिठास से ही कहती हूँ कि मैं मकान नहीं छोड़ूँगी।'

शक्तिधर मल्लिक मानो आसमान से गिरे हों। बोले, 'नहीं छोड़ोगी माने? मकान मेरा है या तुम्हारा?'

संध्या बोली, 'मकान आपका हो सकता है, लेकिन मैं भी मकान में बिना पैसे के नहीं रहती; क़ायदे से किराया देती हूँ; रसीदें भी मेरे पास हैं। आपके कहने से ही मैं डरकर मकान छोड़ दूँगी, ऐसी बुद्धू लड़की मैं नहीं हूँ।'

शक्तिधर बाबू बोले, 'लेकिन तुम्हारी वजह से जो मेरा नुक़सान हो रहा है, वह तुम नहीं देखोगी?'

'मेरी वजह से आपका क्या नुक़सान हो रहा है?'

'तुम्हें तो मालूम है, मेरी ब्याह के क़ाबिल लड़की है। तुम लोगों के हाल-चाल देखकर उसकी शादी नहीं हो रही है। मुहल्ले के सारे लोगों को पता है कि तुम जिसके साथ रह रही हो वह तुम्हारा कोई नहीं है।'

'मैं जिस किसी के साथ भी क्यों न रहूँ, वह मेरा अपना मामला है, उससे आपका या मुहल्ले वालों का क्या आता-जाता है? मैं आप लोगों का खाती हूँ या पहनती हूँ? मैं अपने मकान के अन्दर जो चाहे करूँ, उसके लिए आपके आगे जवाबदेही करने को तैयार नहीं हूँ। आप जो चाहे कर सकते हैं, करें, मैं यह मकान नहीं छोड़ूँगी।'

'तो बताओ, यह स्वदेश बाबू तुम्हारे कौन हैं?'

'मैं अगर न बताऊँ तो आप क्या कर लेंगे?'

सहसा अन्दर से एक महिला कमरे में घुस आयीं। संध्या के सामने आकर बोलीं, 'मैं कहती हूँ, तुम्हारी इतनी हिम्मत, तुमने मेरे आदमी को इस तरह गालियाँ दीं? मेरा आदमी भलामानस है, इसलिए तुम एकदम

अकड़ गयी हो ? तुम मेरे मकान से निकल जाओ—झाड़ू मारकर भगाये विना विदा न होगी बच्चा, यही देख रही हूँ।'

संध्या बोली, 'ख़बरदार, गाली न देना !'

शक्तिधर वावू अपनी पत्नी से वोले, 'तुम अन्दर क्यों आयीं ? मैं तो समझा-वुझाकर कह रहा था...।'

शक्तिधर वावू की पत्नी अपने पति की ओर घूमकर वोलीं, 'तुम ठहरो तो, तुम्हारी तरह के निकम्मे आदमी मकान-मालिक होने से ही किरायेदार ऐसे सिर चढ़ जाते हैं। मैं होती तो इतनी देर में झाँवे से आज तुम्हारी नाक रगड़ देती।'

संध्या बोली, 'ज़रा भली ज़वान में नहीं वोल सकती हैं ?'

'ओ, वड़ी एकदम भली औरत आयी है कि उससे भली ज़वान में वात करना होगी ! जव प्रेमियों के साथ चुहल करती हो तव तो ख़याल नहीं रहता कि तुम भले आदमियों के घर में किराये पर रह रही हो ?'

संध्या बोली, 'मैं मकान न छोड़ूँगी। आप जो कर सकते हैं, करें।'

शक्तिधर वावू की पत्नी वोलीं, 'तो इतनी हिम्मत ? तुमने क्या सोचा है कि देश में कोई क़ानून नहीं है, कचहरी नहीं है ? कोर्ट, कचहरी, सिपाही कुछ नहीं है ? भलामानस मकान-मालिक पाकर जो चाहो करोगी, और आँख भी दिखाओगी ?'

शक्तिधर वावू ने देखा कि वात वहुत वढ़ गयी है। बोले, 'आः, तुम यहाँ से जाओ न ! तुम अन्दर जाओ, तुम्हें यहाँ आने को किसने कहा ? जो कहना है मैं कह रहा हूँ न।'

पत्नी तुनककर वैठ गयीं। वोलीं, 'मैं नही जाऊँगी। तुमको यह औरत गाली देगी और मैं तुम्हारी वहू होकर सोचते हो कि सुन लूँगी ? ऐसे वाप की वेटी नहीं हूँ। मैं तुम्हारी इस किरायेदार को आज घर से निकालकर ही यहाँ से जाऊँगी।'

संध्या वोली, 'ठीक है, मैं भी कहे दे रही हूँ कि मैं इस मकान से एक क़दम भी न टलूँगी। देखूँ, आप लोग क्या कर सकते हैं !'

शक्तिधर वावू की पत्नी गालों पर हाथ लगाकर बोलीं, 'अरे वाप यह कैसी तेज़ औरत है ! मैंने अभी तक तो ऐसी औरत देखी नहीं—अरे, तुम वुद्धू की तरह मुँह वाये क्या देख रहे हो, पुलिस में जाकर ख़बर नहीं दे आ सकते हो ? देश में क्या पुलिस, जज, मैजिस्ट्रेट कुछ नहीं है ? ग़रीबों के लिए क्या देश में कुछ नहीं है, सूरज-चन्दरमा सब उठ गये ?'

शक्तिधर वावू बोले, 'तुम चुप रहो, इतना शोर मत करो !'

वात सुनकर पत्नी और भी चिल्ला उठीं। बोलीं, 'मैं चिल्लाऊँगी

नहीं ? जरूर चिल्लाऊँगी। चिल्लाकर मैं मुहल्ले के लोगों को इकट्ठा कर लूँगी। आकर लोग देखें, कैसी तेज़ औरत तुमने रख रखी है। छि:, छि:, छि:, भले आदमियों की वस्ती में यह कैसी वदनामी की वात है !'

ठीक उसी वक़्त अचानक स्वदेश कमरे में चला आया।

और साथ-ही-साथ गर्म तेल की कढ़ाई में कच्ची मछली डालने से जिस तरह एक वेचैनी की हालत पैदा हो जाती है, उसी तरह की हालत उस वक़्त हो गयी।

स्वदेश वोला, 'यह क्या ? मल्लिक मशाई, आप लोग ?'

शक्तिधर वावू वोले, 'देखिये स्वदेश वावू, जव आप घर पर नहीं थे तव पुलिस आयी थी। मैं आपसे वही कहने आया हूँ कि आप यह मकान छोड़ दें। इतने दिनों तक हमारे इस मुहल्ले का वड़ा नाम था; आप लोगों के आने के वाद से ही पुलिस का यह मामला शुरू हो गया है।'

स्वदेश वोला, 'तो पुलिस से घर छोड़ने का क्या सम्वन्ध है ? फिर मैंने कोई अनुचित काम नहीं किया, कुछ भी नहीं। नियम से आपको किराया देता आया हूँ। अचानक घर क्यों छोड़ दूँ ?'

स्वदेश को देखते ही मल्लिक की पत्नी ने सिर पर घूँघट ओढ़ लिया था। घूँघट में से ही मल्लिक की पत्नी वोलीं, 'अपने घर में मैं प्रेमियों की चुहल नहीं चलने दूंगी। गृहस्थ घर में वह सव नहीं चलेगा।'

'इसके मतलव ? आप क्या कहना चाहती हैं ?'

शक्तिधर वावू ने पत्नी को ढकेलकर कहा, 'तुम औरत हो, तुम क्यों वोल रही हो ! तुम अन्दर जाओ न, कव से अन्दर जाने को कह रहा हूँ !'

उसके वाद ठेलते-ठेलते पत्नी को वाहर कर आये। उसके वाद वोले, 'देखिये स्वदेश वावू, मैं वाल-वच्चों वाला गृहस्थ आदमी हूँ, मकान किराये पर देकर खाता हूँ, ख़ामख़ाह मुझे क्यों तकलीफ़ दे रहे हैं ?'

स्वदेश वोला, 'तो आप वहाने वनाकर किराया कुछ वढ़ाना चाहते हैं, यही न ? तो वह सीधे ही कह सकते थे। मैं न हो तो पाँच रुपये और वढ़ा दूंगा। आप इतना घुमाकर क्यों कह रहे हैं ? अव तो राजी हैं ?'

शक्तिधर वावू वोले, 'देखिये, आप पाँच रुपये नहीं, दस कर दीजिये। लेकिन पता है, असल वात क्या है ? वस्ती के लोग ही मुझे कोंच रहे हैं, कहते हैं, आप लोग...माने, आप दोनों के सम्वन्ध को लेकर सभी मुझे कोंचते हैं, इसीलिए कहा था...।'

स्वदेश वोला, 'अव इसी-उसी से कुछ नहीं, रात हो रही है, आप अव जाइये। हम लोगों को भी खाना-पीना करना है।'

शक्तिधर वावू वाहर की ओर जाते-जाते वोले, 'तो वही वात रही,

स्वदेश बाबू, आप इस महीने से दस रुपये किराया बढ़ा दें।'

स्वदेश ने भी 'हाँ' 'हाँ' कर शक्तिधर बाबू के चले जाने के साथ-ही-साथ दरवाज़े में कुंडी लगा दी। उसके बाद संध्या की ओर देखकर कहा, 'दोपहर को क्या हुआ था? तुम्हारे पास पुलिस आयी थी? क्यों?'

संध्या बोली, 'सिर्फ़ मेरे पास नहीं, सबके ही घरों में पुलिस गयी थी। बस्ती के एक पुलिस वाले का किसी ने खून कर दिया था, मुझसे पूछा था कि मैंने खूनी को देखा या नहीं? मैंने कहा कि मैंने देखा था कि किसने खून किया, लेकिन बताऊँगी नहीं। लड़कों को नौकरी नहीं मिलती; बी० ए०, एम० ए० पास कर बैठे है तो खून नहीं करेंगे? अच्छा किया। हज़ारों बार खून करेंगे। यह बात कहते ही पुलिस मुझ पर बिगड़ गयी।'

'उसके बाद?'

'उसके बाद क्या? वे चले गये, फिर आयेंगे।'

स्वदेश बोला, 'तुम्हें वे सब बातें उनसे कहने की क्या जरूरत थी? तुम उन सब झमेलों में क्यों पड़ती हो?'

संध्या बोली, 'तुम क्या समझते हो कि मैं वे सब बातें भूल सकती हूँ? ज़िन्दगी में किसी भी दिन भूलूँगी? मेरी तरह कितनी लड़कियों की बरबादी उन लोगों ने की, उसकी क्या कोई सीमा है? तुम्हारा क्या? तुमको तो मेरी तरह भुगतना नहीं पड़ा, तभी यह बात कह रहे हो।'

स्वदेश बोला, 'वे बातें तो पुरानी पड़ चुकीं। इतने दिनों बाद फिर उसको लेकर दिमाग़ क्यों ख़राब कर रही हो? अब तो तुम-हम एक साथ आराम से हैं।'

संध्या बोली, 'तुम यह बात कह रहे हो? लेकिन मैं ही क्या फिर वे सब बातें याद करना चाहती हूँ? लेकिन जब भी अकेली रहती हूँ तब फिर वह सब याद आ जाता है। सच कह रही हूँ, मैं किसी तरह भी उन बातों को भूल नहीं सकती। बताओ, मैं क्या करूँ?'

'अब हमने नया जीवन शुरू किया है। यह मत सोचो कि अतीत हमारे जीवन से बिलकुल साफ़ हो गया है। मत सोचो कि जब मैं तुम्हारे पास हूँ तो तुम्हें चिन्ता करने के लिए कुछ नहीं है। तुम और मैं—हम दोनों एक हैं।'

संध्या बोली, 'तुम जब मेरे निकट रहते हो, तो वही सोचती हूँ, लेकिन तुम नहीं रहते, तो बस डर होता है कि...।'

'किस बात का डर?'

संध्या बोली, 'मैं तो ऐसी गाय हूँ जिसका घर जल रहा हो। लाल धुआँ देखकर ही काँप उठती हूँ। सोचती हूँ कि फिर कोई हमारा यह घर

न जला दे।'

स्वदेश बोला, 'छिः, ऐसे नहीं डरना चाहिए। देखो, मैं किसी दिन तुमको छोड़कर कहीं न जाऊँगा।'

संध्या बोली, 'पता है, सब मुझसे एक बात पूछते हैं ?'

'क्या ? कौन-सी बात ?'

'बताऊँगी।'

'बताओ न। तुम्हें डर किस बात का ? मुहल्ले के लोग क्या कहते हैं, उसे लेकर क्यों तुम अपने दिमाग़ को परेशान रखती हो ? तुम्हारे निकट मुहल्ले के लोग बड़े हैं या मैं बड़ा हूँ ?'

संध्या बोली, 'देखो, तुमने मुझ पर जो उपकार किया है उसे मुझसे ज़्यादा और कौन जानता है ? तुम अगर मुझे लेकर यहाँ न चले आते तो तुम कितने आराम से रह सकते थे, यह क्या मैं नहीं जानती ? तुम कितने बड़े आदमी हो, सच, और मैं तुम्हारी तुलना में हूँ ही क्या ?'

स्वदेश बोला, 'छोड़ो, ये बातें अब छोड़ो !' कहकर स्वदेश ने उसे अपने निकट खींच लिया।

संध्या बोली, 'तुमने तो मेरे लिए जयन्ती को भी छोड़ दिया।'

'फिर वही बातें।'

'इन सब बातों के सिवा मैं और क्या कहूँ ? तुम्हारे सिवा मेरा और कौन है जिसके बारे में मैं सोचूँ ! बस, यही लगता है कि मैं अगर तुम्हारे जीवन में न आती तो तुम जयन्ती से ब्याह करके कितने आराम से रहते ! यह सवेरे से रात तक तुम कितनी मेहनत करते हो ! बताओ, यह सब किसके लिए, मेरी ही ख़ातिर न !'

स्वदेश बोला, 'कहता हूँ कि ये बातें-पचड़े छोड़ो।'

संध्या बोली, 'तो कहो कि तुम मुझे कभी छोड़कर नहीं जाओगे ?'

स्वदेश बोला, 'वह भी क्या कहना पड़ेगा ? कलेजे पर कान लगाये हो और मन की बात नहीं सुन रही हो ?'

२

बहुत-सी रातों को संध्या की नींद अचानक टूट जाती। लगता, जैसे कोई

कमरे के बाहर से खटखटा रहा है। कौन ?

कमरे के एक ओर एक तख्त पर स्वदेश सो रहा है। संध्या ने उसी ओर एक बार नज़र डालकर देखा। दिन-भर एक काम के लिए पागल की तरह आदमी घूमता-फिरता है। एक बार बिस्तर पर पड़ते ही उसे होश नहीं रहता। संध्या के लिए इस आदमी ने कितनी तकलीफ़ उठायी है! और बलरामपुर में कितने सुख में जीवन बिता सकता था!

धीरे-धीरे संध्या ने दरवाज़ा खोला। अँधेरे में जो खड़ा था वह थोड़ा आगे आया।

'संध्या-दी !'

'क्या रे, वरुण ?'

वरुण बोला, 'मेरे साथ तीर्थं भी है। आज दोपहर पुलिस तुम्हारे पास आयी थी ?'

'हाँ, तुम लोगों के पास ख़बर गयी थी ?'

तीर्थ बोला, 'कुछ नया कहा था ? किसी को पकड़ा ?'

संध्या बोली, 'नहीं, मैंने भी कुछ नहीं बताया।'

उसके बाद बोली, 'ज़रा आहिस्ता बोलो, उधर की क्या ख़बर है ?'

वरुण बोला, 'सब ठीक है। हम लोग वहाँ से आ रहे हैं। परसों सब साफ़ हो जायेगा। हम लोगों को बहुत तंग किया था।'

'तुम लोगों को और रुपयों की ज़रूरत है ?'

'मिल जाते तो अच्छा होता।'

'तो ठहरो...।' कहकर संध्या कमरे में चली गयी। अँधेरे में धीरे-धीरे चाभी घुमाकर एक ट्रंक का ढक्कन खोला।

लेकिन तभी स्वदेश जाग गया। बोला, क्या हुआ ? तुम सोयीं नहीं ?'

संध्या बोली, 'न, वरुण आदि आये हैं, कुछ रुपये चाहते हैं।'

स्वदेश उठा। उसके बाद पास आकर बोला, 'लेकिन अभी उसी दिन तो तुमने रुपये दिये थे। वह रुपये इसी बीच ख़त्म हो गये ?'

'तीस रुपये ही तो दिये थे, वह ख़त्म न हो जायेंगे ? उनका भी तो चलना चाहिए। इंजीनियरिंग पास करने बैठे हैं, उनका कैसे चलेगा, बताओ ? उनकी भी तो हमारी ही-सी हालत है। उनके भी तो माँ-बाप ने घर से भगा दिया है।'

उसके बाद ज़रा रुककर बोली, 'तुम्हें कुछ बुरा तो नहीं लग रहा है ?'

स्वदेश बोला, 'तुम्हारे जितने गहने थे सभी तो एक-एक कर निकल गये हैं। इसके बाद कैसे चलेगा ? अब तो घर का किराया भी दस रुपये

महीने बढ़ गया है।'

संध्या बोली, 'तुमने ही तो किराया बढ़ा दिया है। मैं तो इस बुड्ढे को एक पैसा भी नहीं देना चाहती।'

'तो किराया बढ़ाये बिना क्या हम इस घर में रह सकते थे? इतने कम किराये में तुम्हें और कहाँ मकान मिल जाता? उनको भी तो घर चलाना है। सो इतने दिनों तक तो तुम्हारे गहने बेचकर चला। अब क्या करोगी?'

संध्या कान का एक झुमका लेकर बाहर वरुण के पास आयी। वरुण आदि भी उस समय ओट में खड़े थे। संध्या बोली, 'यह ले, यह कान का झुमका ले जा, कहीं बेचकर रुपये ले लेना।'

झुमका लेकर दोनों जा ही रहे थे, लेकिन कुछ याद आ जाने पर जाते-जाते लौट पड़े। बोले, 'संध्या-दी, दिल्ली से हम लोगों को पकड़ने के लिए और भी सी० आर० पी० की पुलिस आ रही है। अगर तुम्हारे पास बहुत दिनों तक न आ सकें तो तुम कुछ फ़िकर न करना। अब हमें कुछ दिनों के लिए छिपके रहना पड़ेगा।'

कहकर दोनों ने अचानक झुककर संध्या के पैरों को छूकर हाथ सिर से लगाये। संध्या के मुँह से कोई भी आशीर्वाद न निकला। सिर्फ़ बोली, 'भाई, तुम लोग ज़रा सावधान रहना।'

वे चुपचाप चले गये। फिर क्षण-भर भी वहाँ न रुके। उनके ग़ायब होने के बाद संध्या ने दरवाज़ा फिर बन्द कर लिया। उसके बाद अन्दर आते ही स्वदेश ने पूछा, 'यह यहाँ कहाँ से आया?'

संध्या सहसा चौंक पड़ी। ट्रंक के तले में जिस चीज़ को उसने बड़ी सावधानी से छिपा रखा था उसे स्वदेश ने देख लिया था।

'यह तुम्हारे पास किसने रखा है?'

संध्या ने स्वदेश के हाथ से रिवॉल्वर फट से छीन लिया। बोली, 'तुम सब चीज़ों को क्यों हाथ लगाते हो?'

कहकर फिर उसे सन्दूक के कपड़ों नें छिपाकर ढक्कन बन्द कर दिया।

स्वदेश बोला, 'सच बताना संध्या, वह कब से तुम्हारे पास है? मुझे तो अब तक पता न था।'

संध्या बोली, 'तुम कोई फ़िकर न करो। कहा नहीं जा सकता, कब उसका काम पड़ जाये!'

'लेकिन तुमने उसे अपने पास रख लिया है, अगर पुलिस किसी दिन घर की तलाशी ले तो?'

संध्या बोली, 'ले तो ले। लेकिन उसके पहले उसकी ख़ासी आवभगत करके उन्हें तलाशी लेने दूँगी!'

स्वदेश बोला, 'लेकिन संध्या, तुम क्यों इन लोगों में अपने को लपेटती हो। हम तो आराम से ही हैं। हमारे दुख के दिन तो वीत ही गये। अब मन में इतना गुस्सा बनाये रखने से क्या फ़ायदा ?

संध्या बोली, 'तुम बार-बार ऐसा क्यों कहते हो ? हमारा अपना सुख हो, क्या यही बड़ी बात है ? और अगर सुख की ही बात कहते हो तो चारों ओर के आदमी क्या सुख में हैं, यह सोचकर क्या आदमी मन में सुखी रह सकता है ? तुम तो दिन-भर बाहर-ही-बाहर रहते हो, लेकिन उस वरुण और उस तीर्थ की बात तो ज़रा सोचो। उनकी तरह के कितने लड़के हमारे पास आते हैं, यह मालूम है ? उन्होंने कितनी मुसीबतों से लिखना-पढ़ना सीखा, अगर वहीं जान सकते! एक-एक ने परीक्षाएँ दी हैं, और बरस के बाद बरस उनकी परीक्षाओं का कुछ फल ही नहीं मिला। उनके प्रोफ़ेसर, वाइस-चांसलर, माँ-बाप से लेकर सभी लोग उन्हें दुरदुराते हैं; स्कूल-कॉलेज से भी उनके मास्टर लोग उन्हें भगा देते हैं। तब वे लोग कहाँ जायें, बता सकते हो ? हमारे पड़ोस के मकान की एक लड़की का कितने दिनों से ब्याह नहीं हो रहा था। कल वह घर से भाग गयी। पता है ?'

'भाग गयी ? कहाँ ?'

'कहाँ भाग गयी, क्या मालूम ? शायद मेरी ही तरह सदर स्ट्रीट के किसी फ़्लैट में चली गयी हो। उसके माँ-बाप की जान बची। एक और घटना सुनोगे ? हमारे दो-मंज़िले पर उस दिन सुना कि घर में मछली नहीं आयी, इसीलिए छोटा-सा लड़का रो रहा था। कह रहा था—मुझे मछली दो। बिना मछली के मैं भात नहीं खाऊँगा। यह सुनकर उसकी माँ ने कहा—क्यों, अभी पिछले महीने तो मछली खायी थी। इसी बीच फिर मछली कहाँ से लाऊँ ?—तो समझो, बाहर यह भी उजले कपड़े पहनकर और सब लोगों की तरह घूमते हैं। लेकिन भीतर उनकी क्या हालत है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। मैं जब सदर स्ट्रीट में रहती थी तो सोचती थी कि शायद मुझ-सा दुखी और कोई नहीं है। लेकिन इस बस्ती में आने के बाद से जितना ही देखती हूँ उतनी ही मुझे अपने ऊपर घृणा होने लगती है। ये लोग अपने को आदमी कहकर बुलाते हैं, लेकिन सरकार इन्हें जानवर समझती है। इसीलिए इनके साथ वह बिलकुल जानवर की तरह व्यवहार करती है—क्या वरुण आदि शौक़ से घर-बार छोड़कर इस तरह वैरागी बने घूमते हैं ?'

स्वदेश बोला, 'तुम रहने दो। इतना सब लेकर सोच मत किया करो। उस सब को जितना सोचोगी उतना ही तुम्हारे दिमाग़ की उलझनें बढ़ेंगी।'

अचानक कहीं दूर पर धाँय-धाँय की आवाज़ हुई। लगा—बहुत-से लोगों की अस्पष्ट, कातर चिल्लाहट सुनायी दी।

संध्या बोली, लग नहीं रहा है कि पुलिस की गोली है?'

स्वदेश बोला, 'वह कुछ नहीं...।'

'कुछ नहीं माने? वरुण और तीर्थ, वे मेरे पास से कुछ देर पहले ही गये हैं। उन्हें तो कुछ नहीं हो गया?'

स्वदेश बोला, 'कह रहा हूँ कि इन बातों को लेकर तुम मत सोचो। कितनी रात बीत गयी, यह ध्यान है? अब सो जाओ, अगर कुछ हुआ है तो कल सवेरे ही पता चल जायेगा। सवेरे ही मुझे फिर निकलना है। सो जाओ।'

संध्या बोली, 'तुम मुझसे सोने को कह रहे हो, लेकिन बताओ कि मुझे कैसे नींद आयेगी? मेरे दिमाग़ में तो हमेशा वही बातें चक्कर काटती रहती हैं।'

स्वदेश ने संध्या को जबरदस्ती बिस्तर पर लिटा दिया। उसके बाद कमरे की रोशनी बुझाकर बोला, 'रानी, तुम अब सो जाओ—सो जाओ—उन सब बातों के बारे में मत सोचो।'

संध्या शायद दिन-भर की मेहनत से बड़ी थकी थी। वह बिस्तर पर लेटने के कुछ देर बाद ही सो गयी।

स्वदेश भी अपने तख्त पर लेटा हुआ था। लेकिन कुछ देर बाद ही धीरे-धीरे फिर बिस्तर छोड़कर उठा। उसके बाद दबे पाँव संध्या के आँचल से उसने चाभियों का गुच्छा खोल लिया। उसके बाद जब अच्छी तरह समझ लिया कि संध्या सचमुच ही सो चुकी है तो धीरे-धीरे पैर दबा-दबाकर सन्दूक की ओर बढ़ गया। चारों ओर अँधेरा था। अच्छी तरह कुछ दिखायी नहीं पड़ता था। अन्दाज़ से ही सब समझ लेना था।

स्वदेश ने फिर एक वार ग़ौर से संध्या की ओर देखा। जितना अनुमान कर सकता था उससे समझ में आया कि संध्या को कुछ भी ख़बर नहीं लगी। उसके आँचल से जो चाभियों का गुच्छा उसने खोल लिया है उसकी भी टोह पाने का मौक़ा उसे नहीं मिला।

उसके अपने मन में ही संध्या के लिए अजीव-सी ममता होने लगी। वेचारी! जीवन में एक दिन के लिए भी शान्ति नहीं मिली। छुटपन से ही सिर्फ़ तरह-तरह से तरह-तरह के लोगों के ज़ुल्म सहती आयी है। इसीलिए सवके ऊपर ही उसको इतना क्रोध है और वे लड़के जव आते हैं तो किस तरह से अपने सगों की तरह उनसे वातें करती है। वे भी संध्या की तरह ही अन्य मनुष्यों के निकट अवांछित हैं। सम्भव है, अपने माँ-वाप के निकट भी उन्हें कोई प्यार-दुलार नहीं मिला। जो रुपया नहीं कमा सकते, वे आज के युग में भी सभी से अवांछित हैं।

सन्दूक के ताले के छेद में चाभी डालकर जहाँ तक सम्भव हो सका आहिस्ता-आहिस्ता उसे घुमा दिया। न, चाभी की कोई आवाज़ नहीं हुई। उसके वाद धीरे-धीरे ढक्कन खोला। सन्दूक के अन्दर भी घना अँधेरा था। फिर भी कड़ी चीज़ हाथ में लगेगी ही। स्वदेश ने अन्दर कपड़ों की गड्डी में हाथ डाला। एकदम सवसे नीचे की ओर रिवॉल्वर था। आश्चर्य, इतने दिनों दोनों एक साथ एक ही मकान के एक ही कमरे में हैं, फिर भी स्वदेश को इसके अस्तित्व की ख़वर तक न लगी। स्वदेश से भी वात छिपा कर रखी थी। कहाँ से उसने इसका इन्तज़ाम किया, यह किसे पता? शायद उन लोगों ने ही लाकर उसे दिया है। इसका प्रयोजन संध्या से अधिक शायद उन्हें ही हो। सो हो, फिर भी यह घर में रखना ठीक नहीं है। जिस तरह का ज़माना है उससे किसी भी दिन पुलिस आकर कमरे की तलाशी ले सकती है। तव? तव क्या होगा?

रिवॉल्वर को हाथ में लेकर उसने उसे जल्दी से अपने वैग में रख लिया। कल सवेरे कलकत्ता जाते वक़्त साथ में ले ही जाना होगा। उसके वाद और किसी को पता नहीं चलेगा। कलकत्ता में सड़क पर किसी चाय की दूकान में वह उसे रख आयेगा, या उससे भी अच्छा हो अगर हावड़ा पुल पर से वह सीधे उसे गंगा में फेंक दे। विना किसी आवाज़ के चीज़ एकदम सवकी आँखों से हमेशा के लिए ओझल हो जायेगी। फिर विलकुल वेफ़िकर! फिर कहीं कोई डर न होगा। संध्या अगर पूछे ही तो कह देगा कि उसे नहीं मालूम।

उसके वाद वैग को यथास्थान रखकर फिर वह अपने विस्तर पर आकर लेट गया।

बलरामपुर के शम्भुसाधन चट्टोपाध्याय को सदा दंभ बना रहा। दंभ यह था कि यह जो चाटुर्ज्या-वंश है उसने किसी के आगे सिर नहीं झुकाया। थे गाँव के आदमी। गाँव के आदमी रहने पर भी गाँव में उन्होंने किसी के आगे सिर नीचा नहीं किया। किसी के घर ब्याह में, श्राद्ध में, अन्नप्राशन में पत्तल पर नहीं खाया। उनकी रियाआ का अन्त नहीं था। वे केवल वहाँ जाकर उन दिनों खड़े हो जाते। कुछ देर खड़े रहकर सबसे कुशल-क्षेम पूछते। आयोजन-अनुष्ठान की बड़ी बारीकी से जानकारी लेते। उसके बाद अपना आभिजात्य और अहंकार लेकर फिर घर लौट आते।

यही चाटुर्ज्या मशाई की हमेशा की रीति और नीति थी।

लेकिन बेटे हरिसाधन ने वह अहंकार, वह आभिजात्य धूल में मिलाकर पैरों से छितरा दिया था। बेटा प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में घुसा और चाटुर्ज्या-वंश की सारी मर्यादा उनकी आँखों के सामने ही डूब गयी। तभी से हरिसाधन चट्टोपाध्याय राजनीति के लिए मोची, हाड़ी, डोम, मछुआरों, मछली वालों के साथ मिलने-जुलने लगे। तभी से चाटुज्जे-वंश की जात चली गयी!

बाप की गालियाँ हरिसाधन बाबू स्वार्थ के लिए ही बरदाश्त करते थे। अन्तिम वयस में वह बेटे को शाप दे गये थे—मुझे जिस तरह तूने तकलीफ़ पहुँचायी है, तेरा बेटा ठीक इसी तरह तुझे भी कष्ट देगा।

शाम से ही वह सोच रहे थे। गोविन्द आदि आये थे, वह उनसे ज्यादा बातें न कर पाए। बहुत देर बैठकर वे चले गये थे। जाते वक़्त बोले थे, 'तो आज चलें, मालिक!'

हरिसाधन बाबू ने अन्यमनस्क भाव से कहा था, 'हाँ, जाओ।'

नन्द ने आकर बुलाया, 'बड़े बाबू, रात हो गयी। खाना देने को कहूँ?'

हरिसाधन बाबू अनमने थे। बोले, 'दीदी ने खा लिया?'

नन्द ने कहा, 'नहीं हुज़ूर, दीदी तो बैठी आपकी राह देख रही हैं।'

हाथ में पकड़ा हुआ काग़ज़ का टुकड़ा उन्होंने फिर खोला। खोलकर देखा। उसमें लिखा था—तेरह नम्बर नस्कर बाग़ान लेन, तेलनिपाड़ा, नसी कॉलनी, पूर्व पुटियारी।

बहुत देर तक मन-ही-मन यह पता दुहराया। कहाँ है पूर्व पुटियारी,

कहाँ नयी कॉलनी, कहाँ तेलनिपाड़ा और कहाँ तेरह नम्बर नस्कर बागान लेन, उन्हें कुछ भी नहीं मालूम। ज़िन्दगी में कभी इस ओर नहीं गये थे। जीवन में कभी भी उन्हें अपनी ग़रज़ से उधर न जाना पड़ा। पार्टी के काम से वह बहुत जगह गये थे, सभाएँ की थीं, सभाओं में भाषण दिये थे, फूलों के हार गले में पहने थे। लोग उनको बहुत जगह ले गये। अख़बार के लोग अकसर पूछते, 'तेल, चावल, दाल, मसाले के दाम क्यों बढ़ रहे है ?'

वह बँधा-बँधाया उत्तर देते, 'जमाख़ोरों और चोर-बाज़ारियों की वजह से।'

वे कहते, 'तो उन सब जमाख़ोरों और चोर-बाज़ारियों को गिरफ़्तार कर जेल में क्यों नहीं डाल दिया जाता ?'

उस बात के जवाब में भी वह बँधी बातें दोहराते, 'आप लोग इस काम में हमारे साथ सहयोग कीजिये। आप लोग खोजकर उन सब समाज-विरोधियों का पता निकालिये। देखिये हम उनको कड़े-से-कड़ा दंड देते हैं या नहीं।'

लेकिन अख़बार वाले लोग तो छोड़ने वाले नहीं थे। वे लौटकर सवाल करते, 'हम ही अगर पकड़ेंगे तो आपके दारोग़ा, पुलिस, फ़ौज, सिपाही—सब किसलिए हैं ? उन्हें मुस्तैद रखने के लिए तो हम बहुत-सा टैक्स देते हैं।'

लेकिन सारे सवालों के जवाब हरिसाधन बाबू के होंठों पर ही तैयार रहते। वह कहते, 'हम महात्मा गांधी के अनुयायी हैं; अहिंसा में विश्वास करते हैं, हम अगर उनको जेल में भर दें तो आप सब लोग अख़बार में सुर्ख़ी छापेंगे—पुलिस-राज्य के स्थायी प्रबन्ध से जन-गण का विनाश। और पब्लिक भी उस समय जुलूसों में नारे लगायेगी—पुलिस के बल पर राज्य—नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।'

'तो बहुत ज़रूरी चीज़ों के दाम भी क्या कभी कम न होंगे ?'

तब हरिसाधन बाबू कहते, 'कम होने का एकमात्र उपाय समाजवादी प्रजातन्त्र है।'

'इस बात के मतलब तो आज भी कोई समझ नहीं सकता।'

हरिसाधन बाबू तब अपनी पार्टी के अन्तिम अस्त्र को छोड़ते। कहते, 'हम जनसाधारण के दुख-कष्ट कम करने के लिए एक कमीशन बैठायेंगे। उसकी रिपोर्ट पाने पर हम साथ-ही-साथ सारे समाज-विरोधी तत्वों की ख़बर लेंगे।'

हरिसाधन बाबू जहाँ भी जाते वहीं बँधी-बँधायी बातें कहते थे। लेकिन अब लोगों को उनकी बातों से विश्वास उठता जा रहा था। कमीशन की धोखा-धड़ी से अब लोग वाक़िफ़ हो गये थे। अब दूसरा रास्ता देखना

पड़ेगा। एक बार अमूल्य दादा को हरिसाधन बाबू ने ओट में पाकर पूछा था, 'दादा, अब मुझसे तो चलता नहीं, लोगों की बातों का क्या जवाब दूं, समझ में नहीं आता।'

अमूल्य-दा ने पूछा, 'क्या बातें ?'

'लोग पूछते हैं कि चीज़ों के दाम क्यों बढ़ रहे हैं ?'

अमूल्य दादा बोले, 'कह दो कि हमारा भारतवर्ष समाजवादी प्रजातन्त्र का देश है। यह न तो रूस है, न चीन। इस देश में मूल्य कम होने में वक़्त लगेगा।'

'वह भी कहता हूँ, फिर भी वे नहीं समझते। अख़बार वाले तो जो मन में आता है वही कहकर हम लोगों को गालियाँ देते हैं।'

'तो एक काम करो। कह दो कि खाद्य के मूल्य की वृद्धि के सम्बन्ध में एक कमीशन बैठाया जा रहा है।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'लेकिन कमीशन तो किसी-न-किसी दिन रिपोर्ट देगा। तब ? तब उनसे क्या कहूँगा ? और फिर चुनाव आयेगा, तब क्या कहकर उन्हें चुप करवाऊँगा ?'

'अरे, वह क्या एक दिन का काम है ? उतने दिनों में आदमी सब भूल जायेगा। और पॉलिटिक्स में कल की बात कभी नहीं सोचते। आज का दिन बीतने से ही काम चल जाता है। और उसके सिवा क्या कहा जा सकता है कि कल क्या होगा ? हो सकता है, कहीं लड़ाई छिड़ जाये। वियतनाम, या ईजिप्ट, या इस्राइल या पाकिस्तान में युद्ध छिड़ जाने पर उसकी ही दुहाई देंगे। ख़त्म हुआ झगड़ा !'

ये सब करते इतने दिन बीते। जिन्दगी-भर पार्टी के काम में खून-पसीना एक किया हो—ऐसे बहुतेरे लोग हैं। हज़ारों दरख़ास्तें करने पर भी बस के एक रूट का परमिट नहीं मिलता, पार्टी को बीस हज़ार रुपया चन्दा देते ही, बात-की-बात में, अनायास बस के किसी रूट का परमिट मिल जाता है !

उस समय वह छोटे थे। अमूल्य दादा से पूछा था, 'अमूल्य-दा, आपने घूस लिया है ?'

अमूल्य-दा ने कहा था, 'अरे, मैं देखता हूँ तुम अभी भी बच्चे हो। इतने दिनों बाद यह भी नहीं पता कि राजनीति किसे कहते हैं ? यह क्या घूस है ? यह तो चन्दा है। इसी को तो कहते हैं राजनीति।'

इसके बाद हरिसाधन बाबू को और कुछ सिखाना नहीं पड़ा। उन्होंने खुद ही सब सीख लिया था। किस तरह बस की परमिटें दी जाती हैं, किस तरह पार्टी की सालाना कान्फ्रेंस के वक़्त लाखों रुपये बाँस और

पांडाल या ट्यूबवेल के ठेके देकर लेने होते हैं, वह भी सीख लिया। अख़बारों में कोई बुराई छपे, उसे किस तरह दबाया जाता है, वह क़ायदा भी अच्छी तरह जान-समझ लिया।

ये सारी अतीत की बातें हैं। किन्तु वह होने पर भी पिता का उस समय का अभिशाप इस तरह फलेगा, यह किसने सोचा था? विधु घटक से उन्होंने कह दिया, 'मेरी एक ही लड़की है, उसके ब्याह में लड़के वाले जो चाहेंगे मैं वही दूँगा। यह तुम उनसे कह देना।'

विधु ने कहा था, 'जी, मुकर्जी मालिक ने कहा था कि लड़के को एक नयी मोटर-गाड़ी देना अच्छा रहेगा। डॉक्टरी कॉल-वॉल में जाना पड़ता है न!'

हरिसाधन बाबू बोले थे, 'वह भी दूँगा। गाड़ी तो मामूली चीज़ है। विलायती, अमेरिका की बनी गाड़ी अगर समधी साहब चाहें तो वह भी दे सकता हूँ।'

सिर्फ़ गाड़ी? ऐसा कोई दुर्लभ ऐश्वर्य नहीं है जो वह दामाद को न दे सकें। भगवान की दया से उन्हें धन की कमी नहीं है। जीवन में उन्होंने देश की जितनी सेवा की, लक्ष्मी ने भी उन पर उतनी ही कृपा की! वह होने पर भी लड़के की बदनामी के कारण उनकी बेटी की शादी नहीं हो रही है।

कार्तिक गाड़ी चला रहा था। हरिसाधन बाबू ने पूछा, 'तू ठीक से पहचान तो लेगा?'

कार्तिक बोला, 'हाँ, मैंने रास्ता मालूम कर लिया है।'

कार्तिक सब पहचानता है। आज पच्चीस बरसों से उनकी गाड़ी चला रहा है। कार्तिक और नन्द ने उन्हें जिस तरह समझ लिया है और कोई उन्हें उस तरह नहीं समझता। उनके दोष भी वे जानते हैं, उनके गुण भी जानते हैं। उनकी हर बात का पालन करना ही होगा। बड़ी मुश्किल से जगह मिल गयी। उन्होंने लाल-बाज़ार थाने में कह दिया था। जिस तरह से भी हो उनके बेटे को तलाश करना ही होगा।

उन्होंने उन लोगों को स्वदेश की एक तसवीर भी दी थी। सो स्वदेश को तलाश करने में कई महीने लग गये थे। जब भी उधर जाते एक बार बेटे की बात कह आते। पूछते, 'मेरा लड़का मिला?'

एक दिन उन लोगों ने ही ख़बर दी कि वह मिल गया है।

'वह कहाँ है?'

उसका पता लिख दिया। पूछा, 'वहाँ अकेला रहता है, या कोई

पागल-आगल साथ है ?'

'एक लड़की साथ में है।'

'लड़की ?'

'हाँ, एक जवान लड़की। उस मकान को दोनों ने मिलकर किराये पर ले रखा है।'

'तो बता सकते हैं कि मेरा बेटा वहाँ क्या काम करता है ? माने उनका चलता किस तरह है ?'

'यह नहीं मालूम। आपका लड़का सवेरे आठ के बीच निकल जाता है। शायद कोई दलाली-अलाली का काम करता है। एक दिन पुलिस के आदमी ने पीछा किया था। उसने आपके लड़के को अलीपुर कोर्ट में घुसते देखा। शायद वह कोर्ट में प्रैक्टिस करता है। लेकिन एक दूसरे दिन फिर पीछे-पीछे जाकर देखा कि वह नेशनल लाइब्रेरी में घुस गया।'

'क्या वकीलों की तरह काला कोट-ओट पहनता है ?'

'न, न, यों ही सीधा-सादा मामूली पैंट-शर्ट पहनकर ही निकलता है।'

'कब घर लौटता है ?'

'लौटने में रात हो जाती है। और बस्ती के लोगों से पता लगाने पर मालूम हुआ है कि जल्दी ही उस लड़की के साथ उसकी शादी होने वाली है।'

इतनी ही ख़बर काफ़ी थी। इतनी ही ख़बर पाकर उन्होंने अपना रास्ता निश्चित कर लिया। तो जो लोग कहते हैं वह ठीक ही है। उसके बाद क्या करेंगे, वह अपने मन में उन्होंने बहुत-कुछ सोच-विचार कर लिया। लेकिन वही एक रास्ता उनके लिए है। पहले दिन जो सोचा था उसी को मन-ही-मन पक्का कर लिया। लड़के के लिए उनकी लड़की की शादी न हो, यह अन्याय है।

उस समय बारह भी नहीं बजे थे। गाड़ी आकर ठीक मकान के सामने खड़ी हो गयी।

कार्तिक बोला, 'यही मकान है, हुजूर !'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तू ज़रा अन्दर तो जा कार्तिक, अन्दर जाकर ज़रा पूछ आ कि इस मकान में स्वदेश नाम से कोई किराये पर रहता है या नहीं—और कुछ न कहना...।'

कार्तिक अन्दर चला गया, और गाड़ी पर अकेले बैठे रहे हरिसाधन बाबू। स्वदेश का इस वक़्त घर न रहना ही अच्छा था। उसके न रहने पर लड़की से सब बात समझाकर कही जायेगी।

कार्तिक कुछ देर बाद ही लौट आया। बोला, 'छोटे बाबू घर में नहीं

हैं हुज़ूर, अन्दर एक औरत है।'

'ठीक है, इस पड़ोस की सँकरी गली से ही तो रास्ता है?'

'जी हाँ।'

हरिसाधन वाबू कंधे की तह की हुई चादर ठीक कर पोर्टफ़ोलियो हाथ में लेकर गाड़ी से उतरे। उसके बाद गली में से अन्दर घुसकर एक दरवाज़े के आगे जाते ही देखते हैं कि एक लड़की खड़ी है।

लड़की ने पूछा, 'आप किसे चाहते हैं? वह तो घर पर नहीं हैं।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'मैं तुमसे ही दो बातें कहने आया हूँ बेटी, मैं स्वदेश का पिता हूँ।'

'ओ, तो आप अन्दर आइये।'

कहकर संध्या अन्दर लौट आयी। हरिसाधन वाबू भी पीछे-पीछे कमरे में घुसकर एक तख़्त पर बैठ गये। आँखों-ही-आँखों से कमरे के चारों ओर देखा। ग़रीबी की तसवीर स्पष्ट होकर उनकी आँखों में आ चुकी थी।

संध्या बोली, 'कहिये, क्या बात है?'

'मैं तुम्हें पहचान न सका, बेटी! मैं तुम्हारे निकट एक प्रार्थना लेकर आया हूँ। इस बुड्ढे की बात क्या तुम मानोगी, माँ? अगर रखो तो कहूँ।'

'कह तो रही हूँ, कहिये, आपको क्या कहना है?'

हरिसाधन बाबू कहने लगे, 'मैं बड़ी उम्मीदें लेकर, बहुत दूर से आ रहा हूँ। मैं आज बड़ी मुसीबत में हूँ। कह सकती हो कि और कोई चारा न रहने से ही तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मेरी लड़की की उमर की हो। इसीलिए तुमसे सब खोलकर कहा जा सकता है। बात यह है कि यह स्वदेश मेरा एकमात्र बेटा है, और उसके बाद एक विवाह योग्य लड़की है—उसके विवाह की बातचीत चल रही है। तुम शायद जानती हो बेटी, कि आजकल लड़की की शादी करना कितना मुश्किल है। नगद रुपये तो दहेज़ में देना ही पड़ेंगे, सिर्फ़ वही नहीं, उसके बाद और भी झंझटें हैं। लड़की का स्वभाव-चरित्र, उसके रूप-गुण, उसकी पढ़ाई-लिखाई, सिलाई-कढ़ाई की लम्बी फ़हरिस्त की परीक्षा देना होती है। उस पर वंश-परिचय, आत्मीय, कुटुम्ब-कुल का वर्णन—सब-कुछ देख-दाखकर तब ब्याह होगा।'

संध्या चुप रही। वह ये सारी बातें मन लगाकर सुनने लगी। समझ में आ गया कि वह संध्या को नहीं पहचान सके।

हरिसाधन बाबू फिर कहने लगे, 'तो बहुत जगह मेरी लड़की के सम्बन्ध की बातें चलीं। अच्छे-अच्छे लड़कों का पता हमारा घटक लाया, कोई इंजीनियर, और कोई डॉक्टर था। कोई नौकरी में तीन हज़ार रुपये पाता था। देखने-सुनने में अच्छा, स्वास्थ्य, वंश—सब तरफ़ से मुझे पसन्द

था। उसके बाद मेरी लड़की भी बहुत पसन्द की गयी। उसके सिवा मैं तो दहेज़ देने में क़दम पीछे नहीं रखूँगा। लेकिन मुश्किल हुई मेरे लड़के को लेकर।'

'आपके लड़के को लेकर? क्यों?'

'सब एक ही बात पूछते हैं। सभी कहते हैं कि आपका लड़का घर छोड़कर क्यों चला गया? उसके बाद बात किस तरह चारों ओर फैल गयी कि मेरे लड़के ने एक वेश्या से विवाह कर अलग घर-बार बसाया है। सो लोगों की बातों पर विश्वास करने वाला आदमी मैं नहीं हूँ। मैं खुद वह देखने आया हूँ कि बात सच है या झूठ? तुम अपने मुँह से सिर्फ़ यह बताओ बेटी, कि लोग जो कहते हैं वह सच नहीं है। तुम्हारे अपने मुँह से मैं बात सुन जाऊँ, बताओ।'

संध्या का सारा बदन ग़ुस्से से काँप रहा था। लेकिन मुँह से उसने कुछ व्यक्त न होने दिया।

सिर्फ़ यही बोली, 'मैं क्या कहूँ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'तुम्हें जो मालूम हो वही बताओ। तुम्हारे मुँह से मैं सच बात ही सुनना चाहता हूँ।'

संध्या बोली, 'आपने जो सुना है वह सच है।'

'कह क्या रही हो, बेटी? सब सच है?'

'हाँ, सभी सच है।'

बात सुनकर हरिसाधन बाबू बड़ी देर तक स्तब्ध हो रहे। उसके बाद बोले, 'तो मेरा क्या होगा? मेरी बेटी का ब्याह क्या नहीं होगा? मेरे पत्नी नहीं है, मेरा एकमात्र बेटा था, उसे भी तुमने मुझसे छीन लिया। रह गयी केवल एक बेटी, उसका जीवन भी अगर इस तरह नष्ट हो जायेगा तो मैं कैसे ज़िन्दा रहूँगा?'

संध्या चुप किये हुए है, यह देखकर हरिसाधन बाबू फिर कहने लगे, 'बेटी, तुम्हें देखकर लगता है कि तुम बुद्धिमती हो। तुम भी एक लड़की हो। लड़की होकर किसी और लड़की का दुख ज़रूर समझोगी। और तुम जानती हो कि औरत के जीवन में बाप-माँ-भाई कोई कुछ नहीं होता, पति ही उसका सब-कुछ होता है। तुमको स्वयं पति मिला है—तुम्हारे कारण अगर और एक लड़की को पति न मिले तो उसकी हालत कैसी होगी, यह तुम्हीं सोचो।'

'आपने ग़लत समझा है, हम लोगों का तो अभी भी ब्याह नहीं हुआ है।'

'शादी नहीं हुई, यह अच्छी बात है। तुम्हारी शादी आज नहीं हुई है,

न हो, कल होगी। लेकिन मेरी बेटी ? उससे शादी करने को कौन तैयार होगा ? उसका सगा भाई एक दूसरी औरत के साथ पति बनकर रहता है, यह जानने के बाद उसकी शादी कैसे होगी ? बोलो, जवाब दो।'

संध्या बोली, 'उनके घर आने पर मैं आपकी ये सब बातें उनसे कह दूंगी।

हरिसाधन बाबू बोले, 'न, न, न, ये सारी बातें तुम उससे ज़रा भी न बताना। मैं जो आज तुम्हारे पास आया हूँ वह भी स्वदेश को न बताना। वह घर-छोड़, वंश-छोड़ लड़का है। जो बेटा अपने बाप के सुख-दुख की बात न सोचे, वह अपनी बहन की बात क्या सोचेगा ? तुम क्या पागल हो गयी हो ! कभी ये सब बातें न बताना। वह यहाँ नहीं है, अच्छा ही हुआ। तुम अकेली हो, इसीलिए तुमसे इतनी बातें कह गया। सब बातें तो सुन लीं। अब जो अच्छा हो, तुम वही करो।'

संध्या बोली, 'तो आप मुझसे क्या करने को कह रहे हैं, बताइये ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'बेटी, तुम सब कर सकती हो। तुम जो कर सकोगी वह और कोई न कर सकेगा। मुझे इस मुसीबत से एकमात्र तुम ही बचा सकती हो। केवल मैं ही नहीं, मेरी लड़की को भी तुम बचा सकती हो।'

'बता दीजिये, मैं किस तरह बचा सकूँगी ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'बेटी, तुम मेरे बेटे स्वदेश को छोड़ दो, जिससे कि कोई यह न कह सके कि स्वदेश ने अजात-कुजात की लड़की से शादी कर ली है या उसके साथ रह रहा है। तुम अगर उसे छोड़ दो तो वह फिर मेरे पास लौट आयेगा। लौटने को विवश होगा।'

'लेकिन आप क्या सोचते हैं कि आपके लड़के को मैंने रोक रखा है ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'मैं जो कहता हूँ सो कहता हूँ, लेकिन लोग तो वही कहते हैं। लोग तो वही बदनामी करते हैं। और उसी बदनामी को लेकर ही तो मेरी बेटी की शादी नहीं हो रही है।'

'आपके लड़के को मैं छोड़ दूं तो आपका लड़का क्या आपके पास फिर लौट ज़ायेगा ?'

हरिसाधन बाबू बोले, 'वह मेरे पास लौटे या न लौटे, मेरी जो बदनामी हो रही है वह तो बन्द हो जायेगी।'

'आप ठीक कह रहे हैं कि उससे मुक्ति का ब्याह हो जायेगा ?'

हरिसाधन बाबू संध्या के मुँह से मुक्ति का नाम सुनकर अवाक् रह गये। बोल पड़े, 'मुक्ति का नाम तुमने कैसे जाना ? क्या स्वदेश ने तुम्हें बताया ?'

'नहीं, मुक्ति को मैं जानती हूँ, मुक्ति भी मुझे पहचानती है। हम एक साथ एक ही स्कूल में पढ़ते थे।'

हरिसाधन बाबू अभी तक बैठे थे, अब उठ खड़े हुए। पूछा, 'उसके माने ? तुम क्या बलरामपुर की लड़की हो ? अगर तुम बलरामपुर की लड़की हो तो तुम्हारे बाबा का क्या नाम है ?'

संध्या बोली, 'कानाई घोष।'

हरिसाधन बाबू के कंधे से तह लगी हुई खद्दर की चादर झप् से लड़की के ऊपर गिर गयी।

'तुम कानाई घोष की लड़की हो ? तुम्हारे दादा का नाम क्या हरिहर घोष था ? तुम क्या बलरामपुर के पश्चिम पाड़ा में रहती थीं ?'

'हाँ, आपने जिनका मकान जला दिया वही कानाई घोष। सोचा था कि सबको जला मारकर आप निश्चिन्त हो जायेंगे। लेकिन भाग्य ने मुझे जिन्दा रखा। और आज आप मेरे पास आये हैं मुझसे दया की भीख माँगने। आपने क्या सोचा है कि मैं आप पर दया दिखाकर आपके बेटे को छोड़ दूँगी ? आप निकल जाइये, दयाकर आप यहाँ से निकल जाइये।'

हरिसाधन बाबू उस समय भी हतबुद्धि-से खड़े रहे। मानो उन्होंने अपनी आँखों के आगे भूत देखा हो। वही छोटी लड़की, जो अन्त तक खोजे नहीं मिली, जिसे लेकर असेम्बली में प्रश्न भी उठे थे, यह है वह लड़की ? कानाई घोष जब जेल में था तो उन्होंने इस लड़की के लिए ही अपनी जेब से इसके स्कूल की फ़ीस जुटायी थी ! इसी ने इतने दिनों में उसका बदला लिया ?

हरिसाधन बाबू बोले, 'बेटी, मैं ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ, मुझे नहीं मालूम था कि तुम अभी जिन्दा हो। तुम्हारे लिए मैंने विधान-सभा में कितनी लड़ाई की, पुलिस-कमिश्नर के साथ कितना झगड़ा किया !'

संध्या गरज उठी, 'आप मेरे कमरे में से निकलेंगे या नहीं, पहले यह बताइये ? आप अभी निकल जायें।'

हरिसाधन बाबू फिर भी निकल नहीं रहे हैं, यह देखकर संध्या फिर बोल उठी, 'आप नहीं निकलेंगे ?'

कहकर पीछे घूम अपने कमरे के कोने में रखे ट्रंक को संध्या ने खोल डाला। ट्रंक के अन्दर कपड़े-लत्ते रखे थे। उसमें हाथ डाल दिया। अपना वही रिवॉल्वर खोज निकालने की कोशिश करने लगी। लेकिन वह गया कहाँ ? कहाँ गया ?

पीछे से हरिसाधन बाबू कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे कि लड़की इस

तरह क्या तलाश रही है ?

'वेटी, तुम क्या खोज रही हो ?'

संध्या वोली, 'आप अभी भी गये नहीं ? कह रही हूँ, आप निकल जाइये ।'

हरिसाधन वावू भी आसानी से डरने वाले नहीं थे। राजनीति के अखाड़े के आदमी ! उनके जीवन में इससे ज़्यादा डराने वाली घटनाएँ हो चुकी हैं। वोले, 'वेटी, तुम इतना उत्तेजित क्यों हो रही हो ? तुम तो मुक्ति को जानती हो, किसी ज़माने में मुक्ति से तुम्हें कितना प्यार था ! वह भी तुम्हें कितना चाहती थी ! तुम्हारे घर में आग लगने की ख़वर जव मिली, तो उतनी रात में ख़वर सुनकर वह भी मेरे साथ जाना चाहती थी। लेकिन मैंने ही उसे जाने नहीं दिया। तुम्हारा घर जल गया, यह सुनकर कितना रोयी कि क्या वताऊँ !'

संध्या वोली, 'मैं वह सव कोई वात सुनना नहीं चाहती। आप मेरे मकान से अभी निकल जाइये ।'

हरिसाधन वावू वोले, 'वेटी, तुम सोच रही हो कि स्वदेश को छोड़ देने से तुम्हारा कैसे निर्वाह होगा ? सो मैं उसका भी इन्तज़ाम सोचकर आया हूँ ।'

कहकर एक गड्डी नोट संध्या की ओर वढ़ा दिये। वोले, 'यह लो, इसमें दस हज़ार रुपये हैं, और दस हज़ार भी अगर काफ़ी न हों तो और भी दस हज़ार लो। वीस हज़ार रुपये तुम्हारे अकेले के लिए ज़िन्दगी-भर को काफ़ी हैं। मैं तुम्हारा कोई नुक़सान नहीं करना चाहता। जिस तरह भी हो तुम मेरे स्वदेश को लौटा दो, वेटी ! अपने वंश की मर्यादा की तुमसे मैंने भीख माँगी है, और कुछ नहीं।'

उसके वाद थोड़ा रुककर फिर वैग में हाथ डाला। फिर कुछ नोट निकालकर वोले, 'और अगर सोचो कि वीस हज़ार रुपये तुम्हें काफ़ी न होंगे तो मैं और रुपये दे सकता हूँ। देश के लोगों के आशीर्वाद से मेरे पास रुपयों की कमी नहीं है। यह लो, न हो तो और दस हज़ार ले लो। इसके मतलव पूरे तीस हज़ार हुए। तीस हज़ार में तुम न चला सकोगी ?'

कहकर तीस हज़ार रुपयों के नोट संध्या की ओर वढ़ा दिये। वोले, 'और वादा करता हूँ कि अगर तुम्हें जरूरत हो तो और भी जितने रुपये तुम चाहोगी मुझे ख़वर देते ही मैं तुम्हें भेज दूंगा। सिर्फ़ ख़वर पहुँचने में जो देरी लगे। साथ-ही-साथ मैं खुद आकर तुम्हें रुपये दे जाऊँगा। और अगर इस वीच मर जाऊँ तो तुम्हारे नाम से मैं पचास हज़ार रुपये वसीयित करके छोड़ जाऊँगा। यह भी मैं तुमसे वादा किये जा रहा हूँ। मैं व्राह्मण

हूँ, मेरी वात पर तुम विश्वास कर सकती हो, वेटी ! जीवन में कभी मैंने किसी से वादा-ख़िलाफ़ी नहीं की है, तुमसे ही क्यों करूँगा ?'

उसके वाद कुछ याद आया। लगा, जैसे संध्या उनकी वातों पर कुछ नरम हो गयी हैं।

हिम्मत पाकर वह संध्या की ओर और थोड़ा वढ़ गये। हाथ के नोट उस वक़्त भी संध्या की ओर वढ़ाये हुए थे। वोले, 'कितनी मुसीवत में पड़कर तुम्हारे पास आया हूँ यह तुम निश्चय ही समझ रही हो वेटी, मेरी इतने दिनों की मान-प्रतिष्ठा-प्रभाव टूटने लगा है। इस हालत में तुम्हीं एकमात्र मुझे बचा सकती हो, इसीलिए आज मैं तुम्हारे पास आया हूँ। लो वेटी, रुपये ले लो।'

सहसा संध्या एक वात कर वैठी। हरिसाधन वावू के हाथ से नोट झपाक् से छीनकर हाथों की पूरी ताक़त से फ़र्श पर छितराकर फेंक दिये। वोली, 'आप मुझे रुपये दिखा रहे हैं ? इतने रुपये आपके पास हो गये हैं ? आपको रुपये का इतना दंभ है ?'

हरिसाधन वावू अटक-अटककर वोलने लगे, 'मुझ पर तुम्हारा इतना गुस्सा क्यों है, यह समझता हूँ। पर रुपयों ने क्या दोष किया है, वेटी ? रुपयों पर तुम्हें इतना गुस्सा क्यों है ? रुपया तो लक्ष्मी होता है। रुपये पर क्या ऐसा गुस्सा किया जाता है ?'

'आप क्या समझकर मुझे रुपये दिखा रहे हैं ? रुपयों के लिए क्या मैंने आपके लड़के को छीन लिया है ?'

'न, न, मैं वह क्यों कहूँगा ? तुम मुझे ग़लत क्यों समझ रही हो, वेटी ? तो इसलिए क्या रुपया संसार में तुच्छ चीज़ है ?'

'हाँ, तुच्छ चीज़ है। आपके लिए रुपये तुच्छ चीज़ नहीं हो सकते हैं, लेकिन दुनिया नें सभी आपकी तरह रुपयों के भूखे, कंगाल नहीं हैं। आप अगर सोच रहे हों कि रुपये पाकर मैं सव भूल जाऊँगी तो आप भूल कर रहे हैं। इन रुपयों पर मैं पेशाव करती हूँ। यह देखिये।'

कहकर फ़र्श पर पड़े हुए रुपयों पर संध्या पटापट डण्डे मारने लगी।

हरिसाधन वावू उससे भी निरुत्साहित नहीं हुए। वोले, 'कर क्या रही हो वेटी, क्या कर रही हो ? छिः, छिः, रुपये लक्ष्मी होते हैं।'

कहकर रुपये फिर वटोरने की कोशिश करने लगे। कहने लगे, 'इस तरह तुमने रुपयों का अपमान किया, वेटी ! यह क्या अच्छा काम हुआ ? येह लो वेटी, रुपयों को अपने उस वक्स में उठाकर रख दो। वहुत मेहनत से, सिर से पैर तक का पसीना वहाकर, कमाया हुआ मेरा रुपया है, तुम

अपने पास रख लो।'

संध्या बोली, 'आप दया करके मेरे सामने से चले जाइये।'

'तो बेटी, तुमने वादा किया न?'

संध्या उस समय तख्त पर तकिये में सिर छिपाये थी।

हरिसाधन बाबू ने हिम्मत करके फिर कहा, 'तो तुमने वादा किया न, बेटी?'

संध्या उसी तरह मुँह ढके रही। एक बात भी उसके मुँह से न निकली।

हरिसाधन बाबू इसके बाद फिर न रुके। रुपये ठीक वैसे ही तख्त के नीचे, फ़र्श पर पड़े रहे। वह चुपचाप कमरे से निकल आये।

स्वदेश और दिनों की तरह ही रात को घर आ रहा था। पूर्व पुटियारी आने में उसे हर रोज मोमिनपुर में बस में चढ़ना होता था। उस दिन ज़रा देर हो गयी थी। चारों ओर देख-देखकर उसे लगा कि क्या दिन, क्या रात—कलकत्ता शहर जैसे आदमियों की भीड़ से दिन-पर-दिन भारी-भरकम होता जा रहा है। कहीं ज़रा भी व्यवधान नहीं; कहीं ज़रा भी शिथिलता नहीं। सिर्फ़ भागमभाग। जिस तरह हो सके सबको पीछे छोड़ आगे की ओर लक्ष्य रखकर केवल भागना-भर है।

स्वदेश को मोड़ के सिरे पर आकर थोड़ा विश्राम कर पाने पर जैसे चैन मिला। इतने लोग कहाँ से कलकत्ता में आते हैं और किस आकर्षण से आते हैं! फिर रात में कहाँ जाकर सिर छिपाकर आश्रय लेते हैं! स्वदेश को लगा कि वह जैसे मनुष्य-समाज का कोई नहीं है। असल में जैसे वह आदमी ही न हो। चारों ओर के अनगिनत कीड़ों में वह भी जैसे छोटा-मोटा कीड़ा हो। फिर कीड़ों में भी ज़्यादा के बहुत-से हाथ-पैर हों जिससे वे बहुत जल्दी भाग सकें। बहुत-से कीड़ों के पंख भी हैं। ज़रूरत होने पर वे मिट्टी की धरती छोड़कर कुछ देर के लिए उड़ भी सकते हैं। स्वदेश अगर उड़ सकता तो अच्छा होता। कम-से-कम और कुछ न हो तो इसी मनुष्य की नीचता, हीनता से थोड़ा ऊँचा उठकर थोड़ा निश्चिन्त होता।

फ्रांस के लेखक रूसो की तरह वह भी बीच-बीच में बहुत बेचैन हो जाता। लेकिन इन कीड़ों की दुनिया में एक आदमी बनकर जन्म लेने का उसका क्या मतलब था?

एक दिन सहसा एक सज्जन ने आकर रूसो से एक सवाल किया था। ज्याँ ज़ाक रूसो। फ्रांस का प्रसिद्ध चिन्तक। 'द सोशल काँट्रैक्ट' पुस्तक का लेखक। जिस पुस्तक के चलते फ्रांस में 1789 में क्रान्ति हो गयी थी।

'अच्छा बताइये तो मिस्टर रूसो, आपसे एक बात पूछ रहा हूँ। आप जवाब देंगे?'

रूसो ने पूछा, 'क्या?'

'अच्छा, बता सकते हैं कि आज तक पृथ्वी पर विज्ञान और साहित्य की जो इतनी उन्नति हुई है, उससे मनुष्य को क्या लाभ हुआ है?'

इस एक प्रश्न ने ही रूसो का सम्पूर्ण जीवन बदल दिया था। इस प्रश्न के साथ-ही-साथ रूसो का सारा जीवन आमूल बदल गया। इस पृथ्वी का एक नया रूप उनकी आँखों के आगे प्रगट हुआ। वह अपनी वही प्रसिद्ध पुस्तक 'द सोशल काँट्रैक्ट' लिखने बैठ गये। और उसी पुस्तक से प्रेरणा लेकर एक दिन 1789 वर्ष में फ्रांस के लोगों के देश में विद्रोह की आग भड़क उठी।

लेकिन स्वदेश क्या करे? मनुष्य की मुक्ति के लिए वह क्या कर सकता है? क्या एक किताब लिखे? सामर्थ्य होती तो एक बम फेंककर इस गन्दे शहर को ही वह उड़ा देता। या उस हाईकोर्ट को ही वह तोड़-फोड़कर चूर-चूर कर सकता था।

यथार्थ में सबको सब-कुछ करने की क्षमता नहीं रहती। सामान्य मनुष्य सिर्फ़ मन-ही-मन भुनभुनाता रहा है। बस-ट्राम में, रास्ते-घाट पर सभी सबके साथ ओछी बातों पर झगड़ा करते रहते हैं। वही संध्या के छोटे भाइयों का दल। वरुण और तीर्थ आदि केवल मूर्तियाँ तोड़ते हैं। वह भी तो एक प्रकार का असन्तोष है। अपने अन्तर से बाहर का और अपने विश्वास के साथ यथार्थ का असन्तुलन रहता है।

संध्या ने घर से निकलते समय कह दिया था, 'आज ज़रा जल्दी आना, यहाँ के लोग कहते हैं कि आज फिर इस बस्ती में पुलिस आयेगी। तुम्हारे घर पर रहने से अच्छा रहेगा।'

स्वदेश ने पूछा था, 'तुम्हें क्या नयी बस्ती होने से डर लगता है?'

'डर मुझे नहीं लगता। उलटी बात है, अब वे लोग ही मुझसे डरते हैं। मेरे आने के बाद से ही उनकी बस्ती में गड़बड़ी शुरू हुई है। पहले यह सब नहीं था।'

स्वदेश बोला, 'उन्हें पता नहीं कि दुनिया में जहाँ भी विश्वास और यथार्थ में असन्तुलन है वहीं इस तरह की गड़बड़ी हुई है। वह फ्रांस कहो, रूस कहो, या अमेरिका ही कहो—सभी जगह वह हुआ है। हमने बेकार ही क़ानून पढ़ा है। कभी-कभी मेरे मन में क्या होता है, पता है संध्या? लगता है, हमारा पूरा पीनल कोड ही एक बड़ा धोखा है।'

स्वदेश बात घर पर कह ज़रूर आया, पर अपने मन की बात से उसके व्यवहार का ज़रा भी मेल नहीं है। यह जो चारों ओर बसों-ट्रामों में ऐसी धक्कमपेल भीड़ है, यह देखकर हर रोज़ विद्रोह करने की तबीयत होती। मन में उठता कि इन ट्रामों-बसों को पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दे। लेकिन यह तो वह कर नहीं सकता। इंडियन पीनल कोड ने उसे इतना डरपोक बना दिया है! और कितने ही आजकल के सभ्य मध्य-वित्त समाज के लोगों की तरह वह हर दिन लटकते-लटकते ही घर से आता और घर लौट जाता। वह यह सब क्यों बरदाश्त करता है?

सामने ही कुछ गोलमाल शुरू हुआ। एक बस के अन्दर झगड़ा हुआ। समझ में नहीं आया कि झगड़ा किस कारण था।

स्वदेश आगे आया। कुछ मामूली-सी बातचीत से एकदम हाथापाई हो गयी। यह प्रायः हर जगह ही होता। आजकल आदमी, लगता है, बहुत ही तुनक-मिज़ाज हो गया है। घर में अशान्ति। लड़के की नौकरी नहीं है; लड़की की शादी नहीं हो रही है; उसकी सारी प्रतिक्रिया बाहरी दुनिया में आकर नंगा नाच नचाती। कहीं कोई कुछ नहीं है। विश्वास करने योग्य, आश्रय लेने योग्य एक खूँटी भी कहीं नहीं मिलती। इसलिए जो भी नज़दीक हो उसे गालियाँ दो, उसी को मारो, तोड़कर, पीसकर मिट्टी में मिला दो।

अन्त में सड़क पर की सारी बत्तियाँ फटाफट बुझ गयीं। उसके बाद शुरू हुई बम की आवाज़। आसपास कहीं पर ज़ोर की आवाज़ से बम फटा। जिसे जिधर मिला भागने लगा।

स्वदेश एक जगह पर ही स्थिर होकर खड़ा था। कोई भागते-भागते निकट आकर कह गया, 'भाग जाइये मशाई, भाग जाइये!'

क्यों भागूँ? मैंने क्या किया है? मैं क़ानून जानता हूँ। कोई ग़लत काम न करने से कोई किसी को पकड़ नहीं सकेगा। क़ानून में यह बात लिखी है। क़ानून के बिना तो देश नहीं चलेगा। क़ानून का विधान अलंघ्य है। मैं जब तक क़ानून मानूँगा तब तक कोई मुझे गिरफ़्तार नहीं कर सकता। और ग़लती से गिरफ़्तार करने पर भी फिर मुझे छोड़ देना पड़ेगा।

सहसा अँधेरे में एक गाड़ी आकर रुकी। धप-धप कर गाड़ी से कोई तारकोल के रास्ते पर उतर पड़ा। तभी एक ट्राम में आग लग गयी।

स्वदेश को कार्लाइल की किताब की याद आयी। ठीक इसी तरह किसी दिन पेरिस शहर में भी आग लगी थी। उस पूर्व दिशा के अंधकार में जो बड़ी भारी सेण्ट्रल जेल है, उसी तरह के पेरिस के एक जेलख़ाने में भी उस दिन किसी ने आग लगा दी थी।

एक आदमी ने सामने आकर स्वदेश का हाथ ज़ोर से पकड़ लिया।

स्वदेश ने ग़ौर से देखा कि एक पुलिस-कांस्टेबिल है। स्वदेश को पकड़ कर चिल्ला उठा, 'साले को पकड़ लिया।'

साथ-ही-साथ वर्दी पहने एक आदमी आगे आया। हुक्म दिया, 'गाड़ी में डाल दो।'

जैसे सब-कुछ क्षण-भर में हो गया हो। स्वदेश बोला, 'मुझे क्यों पकड़ा है?'

लेकिन कौन किसकी बात सुनता है? डण्डा मारते-मारते उसे गाड़ी में बन्द कर दिया। उसने देखा कि उसमें और भी बहुत-से आदमी हैं। सबको पुलिस ने पकड़ लिया था। स्वदेश चिल्ला उठा, 'मुझे क्यों पकड़ा है? मैंने क्या किया है?'

गाड़ी के अन्दर के दूसरे लोगों का भी वही एक सवाल था। सबका एक ही सवाल था कि उन्हें क्यों पकड़ा गया है? लेकिन वे कोई भी विरोध में बोल नहीं रहे थे। लाचार, बेबस आसामी की तरह स्तब्ध होकर सब एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। सफ़ेद वर्दी पहने सार्जेन्ट के ड्राइवर के पास आकर बैठते ही गाड़ी का इंजन एक भयंकर आवाज़ कर स्टार्ट हुआ। कुछ दूर जाते ही गाड़ी जलती रोशनी की सड़क पर जब पहुँची तो सब साफ़ दिखायी दिया। स्वदेश को लगा जैसे वह भी फ्रांस देश के रूसो की तरह दुनिया को नयी दृष्टि से देख रहा है। अँग्रेज नहीं हैं, लेकिन उसे लगा वे अँग्रेज मानो अभी भी हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट अभी भी इस देश पर राज कर रही है। उन दिनों भारतवासियों को ब्रिटिश सरकार बन्दी बनाकर रखती थी। अभी भी वैसा ही है। अब 'मीसा' है। वही उस जमाने में जिस तरह काँग्रेस के वालंटियरों को पकड़ ले जाकर जेल के अन्दर डाल दिया जाता था, अब भी उसी तरह है। अन्तर यही है कि पकड़ने वालों की चमड़ी अब काली है। उन दिनों गोरे कालों को पकड़ते थे, और अब काले ही कालों को पकड़ते हैं। सड़क पर खड़े होकर बचपन में स्वदेश इन्हीं गाड़ियों को ग़ौर से देखता; अब और लोग उन्हें देख रहे हैं। स्वदेश को याद आया कि वे ही पुरानी बातें अब भी नयी हो गयी हैं। असल में

गवर्नमेंट के माने ही यही होते हैं। कुछ लोग अधिक लोगों का शोषण करते हैं। चाहे जो पार्टी गवर्नमेंट वनाये, मुट्ठी-भर कुछ लोग ही हमेशा के लिए असंख्य आदमियों के विरुद्ध षड्यन्त्र करेंगे। 'सरकार का मतलव ही वहुत-से लोगों के शोषण के लिए थोड़े-से लोगों का षड्यन्त्र है—चाहे उसका कुछ भी रूप हो'—वहुत समय पहले कही फ्रांसीसी विद्वान की यह वात सच हो गयी।

थाने में घुसते ही पुलिस ने सवको ठेलकर एक कमरे में वन्द कर दिया। किसे पता, कव तक उसी तरह वहाँ रहना पड़ेगा ? थाने के वड़े वावू के न आने तक सवको ही लगता है कि उसी हालत में रहना होगा। अँधेरा कमरा। न तो खिड़की है और न वैठने के लिए वेंच। न एक पंखा है। वहीं तुम ठुँसकर रहो। वहीं तुम साँस रोके ज़िन्दा रहो। इसके वाद जव वड़े वावू का वक़्त होगा तव तुम्हारी पुकार होगी, और तव तुम्हारा फ़ैसला होगा। उसके पहले नहीं।

अँधेरे में ही नज़दीक से आदमी वोल उठा, 'दादा, आप ?'

स्वदेश को लगा कि शायद किसी जान-पहचान के आदमी ने अँधेरे में भी उसे पहचान लिया है। पूछा, 'आप मुझे पहचानते हैं, अँधेरे में मैं आपको ठीक से नहीं देख पा रहा हूँ।'

'नहीं, पहचान नहीं रहा हूँ, पर ज़रा धुँधला-सा दिखायी दे रहा है। आपको तो ठीक हम लोगों की तरह नहीं लगता, मैं ऑफ़िस से आ रहा हूँ। मैं साउथ ईस्टर्न रेल में काम करता हूँ।'

स्वदेश वोला, 'आपको क्यों पकड़ लिया ?'

'मैं वस में था। मशाई, यह कंडक्टर वड़े वदमाश हैं। टिकिट के लिए सवारियों का अपमान करने लगा।'

स्वदेश वोला, 'कंडक्टर लोगों का कोई दोष नहीं है, दोष हमारा ही है। हम सभी वदमाश हैं।'

'ऐसी वात क्यों कहते हैं ? आपने क्या क़सूर किया ? आपको किसलिए पकड़ा ?'

स्वदेश वोला, 'मैं अन्याय सहन करता हूँ, वही मेरा अपराध है। उसी अपराध के हम अपराधी हैं। आप, हम, गवर्नमेंट—सभी अगर अन्याय को न वरदाश्त करते तो इस देश की शकल ही दूसरी होती।'

वह सज्जन उसकी वात शायद कुछ समझ न पाये। दूसरे प्रसंग पर चले गये। वोले, 'कितने दिनों इस तरह हमें रहना पड़ेगा, वताइये तो दादा ? अव नहीं रहा जाता। घर पर सभी अव क्या सोचते होंगे, वतायें तो ?'

कहते-कहते सज्जन ने रोने का-सा, उपक्रम किया। बोले, 'और मशाई, जीवन में काँग्रेस को कभी वोट न दूँगा। यह कान पकड़ता हूँ।'

स्वदेश हँसने लगा। अँधेरा होने से लड़का उसकी हँसी देख न सका। बोला, 'फ्रांस के लोग भी यही सोचते थे।'

'मतलब ?'

'दुनिया के सारे देशों के सब लोग यही सोचते हैं। राजा की हत्या कर फ्रांस के लोगों ने सोचा कि हमेशा के लिए मुसीबत टली। उसके बाद जब नेपोलियन उस देश के सिर पर आ बैठा, तब भी जो पहले था फिर वही हुआ। फिर नेपोलियन को भी उन लोगों ने मार डाला। इसी से तो कहा कि हम ही बदमाश हो गये हैं। हम ही अपने सबसे बड़े दुश्मन बन गये हैं।'

इसके बाद शायद दूसरा प्रसंग उठता, लेकिन उसके पहले ही सबकी पुकार हुई। बड़े बाबू आ गये थे। उनका चाय पीना हो गया था। एक-एक कर सबकी पुकार हुई और एक-एक कर सभी कोठरी से डर के मारे काँपते-काँपते निकलने लगे। उसके बाद स्वदेश की पुकार हुई।

'क्या करते हो ?'

'कोर्ट जाता हूँ।'

'हूँ, बम फेंकने वालों के दल में क्यों जाना हुआ ?'

'आप क्या कह रहे हैं ?'

'जो कह रहा हूँ सुनायी नहीं देता ? बहरे हो क्या ? बैग में क्या है ?'

'काग़ज़-पत्तर।'

सहसा बड़े बाबू ने हुंकार लगायी, 'ड्यूटी !'

ड्यूटी से आकर सलाम कर खड़े होते ही बड़े बाबू बोले, 'बैग की तलाशी लो।'

मालिक के हुक्म से बैग लेकर तलाशी लेने में अन्दर हाथ डालते ही ड्यूटी चौंक पड़ा। बोला, 'हुजूर, यह रिवॉल्वर...!'

'रिवॉल्वर !' सारा थाना क्षण-भर में जैसे चौंक पड़ा। इतना बड़ा एक सांघातिक पक्का सबूत जेब में लेकर भला आदमी बनकर यहाँ आया है ! कहाँ, शकल देखकर तो कुछ समझ में नहीं आता। बड़े बाबू खड़े हो गये। मानो एक सशस्त्र क्रान्ति साकार होकर उसके सामने खड़ी हो ! स्वदेश बोला, 'देखिए...।'

और देखिए। तब पुलिस नहीं, सरकार ही उसे देखेगी। देखने के लिए किसी को अब अनुरोध भी न करना होगा, उसके लिए अर्जी भी नहीं

पेश करना होगी। आदमी की इतनी वड़ी स्पर्धा कि हथियार बैग में लेकर घूमता है। वड़े वाबू ने चिल्लाकर किसी को वुलाया। उनके आते ही वड़े वाबू ने उन्हें क्या निर्देश दिया, कौन जाने? साथ-ही-साथ आदमी को घेरकर दो राइफल वाले कांस्टेविल खड़े हो गये। और उसी तरह उसे लेकर जाली से घिरी एकान्त कोठरी में वन्द कर दिया। वहुत होशियार, सव वहुत होशियार रहना। जो आदमी वहुतेरी हत्याएँ करके इतने दिनों तक फ़रार था वह अव न भाग सकेगा। अव से दुनिया में शान्ति रहेगी। हमारे पैरों के नीचे की धरती पर शान्ति है, और हमारे सिरों के ऊपर भगवान हैं, अव किसी को कोई डर नहीं है। अव जो जेलख़ाने के वाहर हैं वे जितनी चाहें घूस लें, जितना चाहे मीठी वातें कहकर आदमी को धोखा दें, जितना चाहे आदमी को मारने के रुपयों से मौज करते घूमें, जो मन चाहे करें, कोई रोकने वाला नहीं है। तुम अपने भाई-भतीजों को परमिट दो, लाइसेंस दो; दल के गुण्डों को सरकारी नौकरी देकर अपना आसन पक्का कर लो, और देश के वाहर वैंकों में रुपया जमा करो, कोई कुछ न कहेगा। जो कहने वाले लोग हैं उन्हें हमने जेलख़ाने की चहार-दीवारी में हथकड़ियाँ लगाकर रख दिया है। दुनिया में पूरी तरह अमन है और स्वर्ग में परमात्मा विराजते हैं!

उसके वाद पुटियारी के तेरह नम्बर तेलनिपाड़ा लेन के किराये के मकान के छोटे-से कमरे में धीरे-धीरे अंधकार उतर आया। संध्या का मानसिक आकाश भी सवेरे से और अधिक अँधेरा दिखायी पड़ने लगा। वह मुक्ति! वह मुक्ति, वह जयन्ती। वलरामपुर के वे छुटपन के दिन। मुक्ति के मकान में वह आमड़े का पेड़। वह नन्द-दा। वह...।

सोचते-सोचते कहीं वहुत दूर कई युग पहले के अतीत में पहुँचकर वह खो गयी। और वह आग! सहसा रात में नींद टूट गयी। और संध्या, भाग, भाग जल्दी, भाग चल। घर में आग लग गयी है, रे। आँखों में धुआँ लगने से आँखें जल रही है, छत के वाँस फट-फटकर फट रहे हैं। उधर रास्ता वन्द हैं, इधर से आ। घर-भर की छत उस वक़्त धाँय-धाँय कर

जल रही थी और एक ओर झूल रही थी। किसी भी तरफ़ से निकलने की राह नहीं थी। सहसा एक वार जलती छत सबके सिर पर टूट पड़ी। और उसकी आँखों के आगे पिता-माता-वावा साथ-ही-साथ उसके नीचे दव गये। और उनकी चीखों से उसमें फिर रुकने की हिम्मत न हुई। आग को हटा, जलता वाँस पार कर वह भागती-भागती अँधेरे आकाश के नीचे आ खड़ी हुई। वह भी एक मिनट के लिए। उसके वाद किस ओर से भागकर किस ओर भागी जा रही है, इसका भी उसे ध्यान नहीं रहा।

आश्चर्य है! मनुष्य ऐसा निर्लज्ज भी हो सकता है? उसी मुक्ति के पिता आज उसके ही पास आये थे। आकर उसे रुपया देकर वस में करना चाहते थे। कहते थे, रुपया लो और मेरे लड़के को छोड़ दो।

तेलनिपाड़ा का किराये का मकान। वस्ती में भी सन्नाटा है। किसी ओर से किसी की आवाज नहीं सुनायी दे रही है। आदमी भी सव ऑफ़िस या काम-काज से चले गये हैं। केवल औरतें अपने-अपने घरों में हैं। जव शाम होगी तव फिर लोग अपने-अपने घरों को लौटेंगे। स्वदेश जव घर आयेगा तो उसे बुलाकर पूछेगा, 'यह क्या, तुम्हारा चेहरा ऐसा गम्भीर क्यों दिखायी दे रहा है?'

संध्या कहेगी, 'पता है, आज तुम्हारे वावा आये थे।'

वात सुनकर स्वदेश को ताज्जुब होगा। कहेगा, 'क्यों? वावा को इस मकान का पता किस तरह लगा?'

संध्या कहेगी, 'पता लगाने में मुश्किल क्या है? तुम्हारे पिता एम० एल० ए० हैं। जरूर पुलिस को ख़वर दी होगी, तभी पता मिल गया।'

'वह क्या कहने आये थे?'

'यह देखो न, पता नहीं यह तीस हैं या चालीस, कितने हज़ार रुपये मुझे दे गये हैं—मैंने गिने भी नहीं।'

'चालीस हज़ार रुपये! वावा तुम्हें दे गये? किसलिए?'

'जिससे कि मैं तुम्हें छोड़ दूं।'

'यह क्या? घूस?'

संध्या कहेगी, 'हाँ, एक तरह से घूस ही कह सकते हो।'

स्वदेश पूछेगा, 'तो तुमने रुपये ले लिये?'

संध्या कहेगी, 'न लेती तो क्या करती? तुम्हारे कारण मुक्ति की शादी नहीं हो रही है, तुम्हारी वहन मुक्ति की। उसकी शादी तुम्हारी ही वजह से नहीं हो रही है।

'यह क्या? मेरी वजह से मेरी वहन की शादी नहीं हो रही है? यह वात वावा कह गये हैं? क्यों, मैंने ऐसा क्या किया है?'

संध्या जवाव में कहेगी, 'तुम मुझ-सी एक वेश्या से शादी करने जा रहे हो, यह ख़बर सबके पास पहुँच चुकी है। जो भी सम्बन्ध करने आता है, वही कहता है कि जिस लड़की का सगा भाई बाज़ारू वेश्या से शादी कर सकता है उसे कोई भी लड़के का वाप अपने घर में वहू बनाकर नहीं लाना चाहता।'

स्वदेश सम्भवतः कहेगा, 'और यह वात सुनते ही तुम भूल गयीं ? भूलकर हाथ फैलाकर रुपये ले लिये ? तुम्हें वह रुपये लेते शर्म नहीं आयी ? तुमने वावा के आगे अपने को इतना छोटा कर लिया ? और तुमने सिर्फ़ अपने को ही छोटा नहीं किया, उसके साथ मुझको भी इतना छोटा कर दिया ? छिः !'

स्वदेश के उस समय के चेहरे की कल्पना करने पर संध्या का कलेजा फाड़कर रोना आने को हुआ। लेकिन वह क्या कर सकती थी ? वह कहाँ जाये ? किसके पास जाकर खड़ी होगी ? इस समय स्वदेश के सिवा उसका कौन है ?

लेकिन नहीं, संध्या ने सिर ऊपर किया। अपनी हालत के साथ वह मुक्ति की हालत की तुलना करके देखने लगी। संध्या तो समाज से वहिष्कृत व्यक्ति है। उसका वह कुल भी गया, यह कुल भी नहीं है। अतीत था नहीं, वर्तमान भी नहीं, भविष्य भी न रहेगा। लेकिन उसके कारण मुक्ति क्यों कष्ट पाये ? यह सही है कि मुक्ति उसकी कोई नहीं है। मुक्ति के सुख के साथ उसके जीवन का कोई सम्वन्ध नहीं। फिर भी वह लड़की है। किसी दिन उसके साथ एक ही स्कूल, एक ही क्लास में वह पढ़ती थी। कितने ही दिन उसके घर के आँगन में एक साथ खेली है। उसका भी तो एक मूल्य है। और प्रतिशोध ? वह प्रतिशोध लेने वाली कौन है ? आज जो वह यहाँ सहायता और सम्बलहीन होकर जीवन-यापन कर रही है, यह किसके प्रतिशोध का फल है ? यह क्या मुक्ति के पिता का है ? या इस समाज-व्यवस्था का ? जिस समाज-व्यवस्था में एक व्यक्ति कुछ काम किये विना राजा की स्थिति में जीवन विताता है, और एक व्यक्ति सुबह से शाम तक परिश्रम करके भी एक वक़्त के भरपेट भोजन की व्यवस्था नहीं कर सकता ?

अगर स्वदेश घर लौटकर संध्या को न देखे तो ? उस समय स्वदेश क्या करेगा, इसी वात की कल्पना संध्या करने लगी। स्वदेश क्या कुछ सन्देह करेगा ? वह क्यों सन्देह करेगा ? सोचेगा—हो सकता है, संध्या आस-पास कहीं गयी है। हो सकता है, इस कमरे में वैठकर बहुत देर तक उसकी राह देखे। उसके वाद रात अधिक होगी; धीरे-धीरे रात और भी

गहरी होगी। और भी गहरी। अकेले कमरे में बैठे-बैठे अन्त में शायद धैर्य खो बैठे। क्या थाने जाकर ख़बर देगा? या वह सोचेगा कि पुलिस आकर उसे गिरफ़्तार कर ले गयी है?

उसके बाद?

उसके बाद संध्या क्या कहेगी, यह उसकी समझ में न आया। अगर कोई आकर इस हालत में उसे सलाह देता! कोई ऐसा होता जिसके साथ वह मन की बातें कह सकती तो उसे कुछ शान्ति मिलती। नहीं, नहीं, उसका अपना कहने को आज कोई नहीं है। संध्या और न सोच सकी। वह अपने तख्त पर चित लेट गयी।

'संध्या-दी!'

संध्या हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। क्या तीर्थ आदि आये हैं? उसका कलेजा काँपने लगा। इस समय तो वे आते नहीं हैं। झटपट दरवाज़ा खोलकर देखा कि जो सोचा था वही है। बोली, 'क्यों रे तू? तू इस वक़्त?'

'संध्या दीदी, तुमको बुलाने आया हूँ, वरुण की हत्या हो गयी है।'

'यह क्या? क्यों? कैसे खून हुआ? उसने क्या किया था? किसने मारा?'

तीर्थ बोला, 'पुलिस ने।'

'पुलिस ने उसे किस तरह पकड़ लिया?'

तीर्थ बोला, 'हम बीरभूम गये थे। वहाँ छिपकर अपनी पार्टी के दोस्तों को खोजते घूम रहे थे। कोई नहीं मिला। सुना कि वे कहीं भाग गये थे। मुलाक़ात नहीं हुई।'

'उसके बाद?'

'उस दिन हम लोगों ने दो दिनों तक कुछ नहीं खाया।'

'क्यों, खाना क्यों नहीं हुआ? तुम लोगों को उस दिन जो सोने का झुमका दिया था उसे नहीं बेचा?'

तीर्थ बोला, 'नहीं, बाद में काम आयेगा इसलिए उसे रख दिया है।'

संध्या बोली, 'लेकिन खाये बिना तुम जिन्दा कैसे रहोगे? इतनी भाग-दौड़ करते हो, बिना खाये कितने दिनों जियोगे? मेरे पास तो और गहने हैं, ज़रूरत होने पर तुम्हें दे दूँगी।'

तीर्थ की आँखें डबडबा आयीं। बोला, 'लगता है और ज्यादा दिनों भाग-दौड़ नहीं कर सकेंगे। वरुण चला गया, इस बस्ती में मैं अकेला रह गया।'

संध्या बोली, 'अकेले क्यों कहता है ? मैं जो हूँ । मैं तो तेरे साथ हमेशा हूँ ।'

तीर्थ बोला, 'संध्या-दी, यह नहीं सोचा था कि वरुण इस तरह से धोखा देगा । मुझसे बराबर कहता आया कि वह मुझे छोड़कर कभी नहीं जायेगा । और हावड़ा स्टेशन के पास आकर जब हम खाने की दूकान के सामने बैठे कचौड़ी खा रहे थे तभी एक भिखारी ने आकर खाने को माँगा । वरुण को कैसी दया आयी कि वह पिघले मन से खुद कचौड़ियाँ न खाकर उसी को देने गया । साथ-ही-साथ उसने पिस्तौल निकाली ।'

'भिखारी के पास पिस्तौल कहाँ से आयी ?'

तीर्थ बोला, 'असल में वह आदमी भिखारी नहीं था, संध्या दीदी ! हमारा बहुत देर से पीछा कर रहा था । मैं पहचानकर, ज्यों ही चिल्लाकर वरुण को सावधान करूँ कि साथ-ही-साथ जासूस समझ गया । समझकर गोली चला दी । मैं किसी तरह भाग आया, लेकिन दूर से वरुण को गिरते देखा ।'

'उसके बाद ?'

तीर्थ बोला, 'उसके बाद सीधा वहाँ से तुम्हारे पास आया हूँ ।'

'कुछ खाया है ?'

तीर्थ बोला, 'नहीं, खाना मेरे भाग्य में नहीं रहा ।'

संध्या बोली, 'ठहर, मेरे घर में जो कुछ है तुझे दे रही हूँ ।'

कहकर अन्दर रसोईघर की ओर चली गयी । उसके बाद एक रक़ाबी में खाना लाकर तीर्थ के आगे रख दिया ।

तीर्थ बोला, 'मैं खा लूँगा तो तुम लोग क्या खाओगे ?'

संध्या बोली, 'हमारी बात तू न सोच । तू तो खा ।'

कहकर एक गिलास में पानी देकर बोली, 'तू खा, मैं आ रही हूँ ।'

कहकर फिर अन्दर चली गयी । जब वह निकलकर आयी तो देखा कि तीर्थ का खाना हो गया है । तीर्थ संध्या दीदी की ओर देखकर अवाक हो गया । इसी बीच साड़ी बदल ली थी ।

पूछा, 'तुम क्या कहीं जाओगी, संध्या दीदी ?'

संध्या बोली, 'हाँ, तेरे साथ ही जाऊँगी ।'

'मेरे साथ ? कहाँ ?'

संध्या बोली, 'जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी ।'

तीर्थ हतप्रभ हो गया । पूछा, 'और स्वदेश-दा ?'

'तेरे स्वदेश-दा यहीं रहेंगे । मैं तेरे दादा को और कितने दिनों तक देखूँगी ? मुझे अपने को भी तो देखना होगा । तुम लोग मेरा भार तो

उठा सकोगे ?'

'हम ? हमें कौन देखेगा, इसका तो ठीक नहीं है, हम तुम्हें देखेंगे ?'

संध्या बोली, 'तुम लोग अपने को इतना छोटा क्यों समझते हो ? अपने को छोटा समझने-सा छोटा काम दुनिया में और नहीं, मालूम है ?'

'लेकिन हम लोगों की तो कोई रहने की जगह नहीं। तुमको ले जाकर कहाँ रखेंगे ?'

'क्यों, तुम लोग जहाँ रहते हो वहीं। तुम लोग जिस तरह रहते हो, मैं उसी तरह रहूँगी। जीवन तो बस एक है, एक जीवन इस तरह और नष्ट न करूँगी, यह सोचा है। सोचा है कि दुनिया में अगर जीना है तो छिपकली की तरह नहीं जीऊँगी, जीना है तो शेर की तरह ही जीऊँगी।'

सहसा इस बीच तीर्थ को दिखायी पड़ गया कि तख़्त के नीचे गड्डी-की-गड्डी नोट पड़े हैं। एक नहीं, दो नहीं, अनगिनत।

'इतने रुपये किसके हैं, संध्या-दी ? यह क्या, यह तो बहुत-से रुपये हैं ! इतने रुपये यहाँ इस तरह क्यों पड़े हैं ?'

रुपयों की बात संध्या भूल गयी थी। कब हरिसाधन बाबू आये थे, कब चले गये, क्या कह गये—कुछ याद नहीं था। पूरी शाम केवल स्वदेश की बात ही उसने एकाग्रचित होकर सोची थी। लेकिन नहीं, अब वह स्वदेश की बात न सोचेगी। स्वदेश दुनियादार आदमी है। स्वदेश की गृहस्थी है, घर है, पिता हैं, और सगी बहन भी है। उसे संध्या क्यों अपने उजाड़ जीवन के घेरे में बाँध रखेगी ? संध्या के लिए स्वदेश क्यों भुगते ? वह सुखी हो, गृहस्थ बने, समाज का एक गण्यमान्य व्यक्ति बने, वही अच्छा है।

इस बीच तीर्थ ने नोटों को बटोरकर गिन डाला। बोला, 'इतने रुपये तुम्हारे फेंके पड़े हैं, और तुम्हें होश नहीं है, संध्या-दी ?'

कहकर रुपये संध्या के हाथों में देने गया, लेकिन संध्या ने उन्हें हाथ बढ़ाकर न लिया। बोली, 'इन्हें अपने पास ही रहने दे, चल।'

बाहर शाम हो रही थी। सम्भव है, अभी स्वदेश आ जायेगा। उसके पहले चले जाना चाहिए। एक दिन बहुत समय पहले जलता मकान छोड़कर वह जिधर पैर ले चले उसी रास्ते पर निकल पड़ी थी। उस दिन उसके आगे कहीं किसी भी आश्रय का भरोसा नहीं था। आज वह वैसी नहीं है। सदर स्ट्रीट के मकान से निकलकर आते वक़्त भी उसके सामने क़िसी भी आश्रय का लक्ष्य नहीं था। सम्भव है, उसके लिए उसके विधाता का यही विधान हो। वह हो, लेकिन फिर भी मन में कम-से-कम एक सान्त्वना तो है कि वह एक व्यक्ति का उपकार कर सकी है। स्वदेश को

त्याग कर उसने मुक्ति की भावी जीवन-यात्रा को सम्भव और बाधाहीन कर दिया है।

सिर पर घूँघट काढ़कर संध्या खुले आकाश के नीचे आ खड़ी हुई। उसके बाद अचानक क्या याद आया कि तीर्थ से बोली, 'अपने रुपये में से मुझे चालीस रुपये तो दे।'

चालीस रुपये लेकर फिर वह कमरे में घुसी। उसके बाद तख्त के ऊपर कुछ रुपये रखकर एक चिट्ठी लिखकर रख दी। चिट्ठी में लिख दिया, 'शक्तिधर बाबू, आपका इस महीने का किराया रख गयी हूँ। इति। संध्या।' उसके बाद सोचा, स्वदेश को भी एक चिट्ठी लिखकर रख जायेगी। लिखा, 'तुम फ़िक्र मत मरो, मैं तुमको मुक्ति दे गयी हूँ ! कहाँ चली, वह मैं खुद नहीं जानती। क्यों चली गयी, वह किसी दिन भी जानने की इच्छा न करना। तुम गृहस्थ बनाकर सुखी रहोगे, यह कामना लेकर चली जा रही हूँ।'

लेकिन नहीं, लिखने से क्या होगा ! लिखने से सम्भव है उसे और तकलीफ़ हो। उसने उसका बहुत उपकार किया है। बहुत कष्ट के दिनों में संध्या के लिए वह अपना सर्वस्व छोड़कर इस राह पर उतर आया था। लेकिन अब और नहीं, सारे बन्धनों से मैं तुम्हें मुक्ति दे गयी। अब मैं तुम्हारे जीवन से लोप हुई जा रही हूँ। तुम सुखी होओ...।

तीर्थ उस समय भी बाहर अकेला प्रतीक्षा कर रहा था। संध्या पास आकर बोली, 'चलो।'

उधर स्वदेश जेलख़ाने में अँधेरी कोठरी में उस समय चुपचाप दीवार से टिककर बैठा था। बहुत देर से अँधेरा हो गया था। लेकिन अभी भी किसी ने रोशनी नहीं जलायी। मन-ही-मन सोच रहा था, संध्या शायद अभी तक उसके लिए अकेले बैठी-बैठी राह देख रही होगी। उसे पता भी न चलेगा कि स्वदेश कहाँ आकर फँस गया है। कितने दिनों तक उसे यहाँ रहना पड़ेगा, इसे वह खुद भी नहीं जानता। उसी तरह क्या उसके विधाता को भी पता है ?

सहसा कहीं से टन्-टन् कर घंटा बजने की आवाज़ हुई। स्वदेश गिनने लगा। एक-एक बार कर छः बार बजा। तब क्या घड़ी में शाम के छः बजे हैं, या सवेरे के छः हैं ?

कब एक दिन हुगली ज़िले के एक फलते-फूलते हुए गाँव में स्वदेश का जन्म हुआ था। सृष्टि के देवता ने क्या इतना हिसाब कर इस विश्व की रचना की है! या किसी अदृष्ट या किसी निरर्थक कल्पना के वश इस विश्व-ब्रह्मांड की सृष्टि हुई है? उस दिन चराचर वाष्प-कुंडली से घिरा था। उसी वाष्प-कुंडली के घूमने से कब कहीं से एक भूखंड कक्ष से अलग हो गया, और अनादिकाल के लिए आवर्तन का धर्म लेकर कक्षमार्ग की परिक्रमा के साथ काल-क्रम से सृष्टि हुई जीव की—धँसी जड़ों की और तरुलता, विटपों की। यह कितने प्रकाश-वर्ष पहले की बात है! तभी से कितने लोग आकर अपने वंश-धरों की बढ़ती कर गये। आगे भी समस्याएँ थीं; उनके साथ और कितनी ही समस्याएँ जुड़-जुड़कर अब बीसवीं सदी के मध्य चरण तक पृथ्वी नाम का यह जड़-पिण्ड आ पहुँचा है। मानव के साथ-साथ कितने अमानुष भी उत्पन्न हुए हैं। अमानुषों की भीड़ में मानव का अस्तित्व जब मुसीबत में पड़ गया सो ठीक उसी समय स्वदेश का जन्म हुआ। छुटपन से ही उसने समझ लिया था कि जीवन का कोई विकल्प नहीं है। या तो जीवन हो या मृत्यु। और भी समझ लिया था कि कुछ मूल्य चुकाये बिना कुछ मिलता नहीं है; और भी समझ लिया था कि अपने को देने से सबको पाया जा सकता है।

मुक्ति की शादी हो जाने के बाद हरिसाधन बाबू अपनी बैठक में बैठे थे। बहुत-सी तूफ़ानी झपेटों को दूर कर वे अन्त में लड़की की शादी इतने अच्छे पात्र से कर सके थे, उसी से थोड़ी शान्ति मिल रही थी। ख़र्चा बहुत हुआ था। वह हो, ख़र्च की उन्हें चिन्ता नहीं। इतने दिनों से वह देश-सेवा करते आये थे, वह देश ही उन्हें इतना रुपया देता आया था। और जितने दिनों वह देश-सेवा करेंगे उतने दिनों देश उन्हें रुपये देता रहेगा। उधर से कोई ख़तरा नहीं है। समधी साहब बड़े भले आदमी हैं।

समधी साहब ने कहा था, 'समधी साहब, मैं पात्री का विचार करूँगा। पात्री का भाई क्या करता है, उसे सोचने की मुझे क्या जरूरत है? और आजकल के कितने लड़कों या बापों की मनपसन्द की कोई बात होती है? ज़माना ही ऐसा आ गया है। बाप का ही क्या दोष है, और लड़कों का ही क्या दोष है?'

हरिसाधन बाबू ने कहा था, 'पता है, मुझे कितना शौक़ था कि लड़के को वकालत पढ़ाऊँगा ! खुद वकालत नहीं पढ़ी थी, उसके लिए मेरे मन में बड़ा दुख था। सोचा था कि लड़के के माध्यम से अपनी वह कामना और खुशी पूरी करूँगा। लेकिन भगवान असन्तुष्ट हों तो आदमी क्या कर सकता है ? यही देखिए न, लड़के को कितनी किताबें ख़रीद दी थीं। अपने पुराने साथी सर्वजय आजकल सबसे बड़े क्रिमिनल वकील हैं। उनके पास जूनियरी करने को लड़के को रखा था।'

समधी साहब बोले थे, 'आप भगवान को मानते हैं, इसीलिए इतना बड़ा आघात सह सके।'

उसके बाद बैठक की चारों दीवारों में रखी क़ानून की किताबों की ओर देखने लगे। ठसी हुई, सोने के पानी से नाम लिखी वे सब चमड़े में बँधी जिल्दें थीं। किताबों की दूकानों में जितनी अच्छी-अच्छी किताबें थीं उन सभी को उन्होंने लड़के को ख़रीद दिया था। लड़का यह तो न कह सके कि उसके लिए रुपये ख़रचने के मामले में कंजूसी की है।

ववे अन्दर के कमरे में गये। आज उनके आस-पास कोई नहीं है। किसी दिन पत्नी थी; वह बहुत दिन हुए चल बसी। लड़का तो रहने पर भी नहीं था। बाक़ी रही लड़की। वह भी चली गयी। अब वह अकेले हैं। आज वह सार्थक हैं। उनका जीवन सार्थक है। फिर भी एक चीज़ एक काँटे की तरह उनके मन में चुभती है। उनका स्वदेश। लेकिन वह तो उन्हें पहले ही मालूम था। उनके पिता ही तो उन्हें मरने के पहले अभिशाप दे गये थे। स्वदेश उन्हें तकलीफ़ देगा, वह पहले ही समझ गये थे।

सहसा स्वदेश को देखकर वह चौंक पड़े।

'कौन ? तुम कौन हो ?'

स्वदेश बोला, 'मैं स्वदेश हूँ।'

'तुम आये हो ? अच्छा ही किया। मुझे मालूम था कि तुम आओगे। सो अचानक तुम्हारी बात मेरे मन में आयी !'

स्वदेश की आँखें छलछला रही थीं। दुख में या अभिमान में, या आत्म-खेद में—समझ में नहीं आया। स्वदेश बोला, 'आप मुझे माफ़ करें।'

हरिसाधन बाबू का मन द्रवित हो गया। बोले, 'तुम बैठो, बैठो ! मेरे इस बिस्तर पर बैठो। क्षमा मैंने तुम्हें पहले ही कर दिया। सो अब तो समझ गये, मैंने तुम्हारा भला ही चाहा था।'

स्वदेश चुप रहा। कोई बात न बोला।

हरिसाधन बाबू फिर बोलने लगे, 'अच्छा ही हुआ कि तुम लौट आये।

अब तो समझ में आ गया कि जो किताबों में पढ़ा था वह सब झूठ है! जीवन और किताब एक चीज़ नहीं हैं। वह 'फ्रेंच रिवॉल्यूशन' पढ़कर तुम्हारा दिमाग़ बिगड़ गया था, इसीलिए मेरी बातें तुम्हें उस वक़्त ख़राब लगी थीं। असल में जिस तरह तुम्हारे बाप, पितामह जीवन बिता गये हैं वही आदर्श है, भारतवर्ष का वही सनातन आदर्श है।'

फिर ज़रा मुसकराकर बोले, 'कुछ खाया है?'

स्वदेश बोला, 'नहीं।'

'कुछ भी नहीं खाया?'

स्वदेश बोला, 'नहीं।'

'क्यों, शायद तुम्हारे पास रुपये-पैसे कुछ नहीं थे। देखा न, रुपये-पैसे भी तुच्छ चीज़ नहीं हैं। वह रामकृष्ण परमहंस! संसार में जीवित रहने के लिए मनुष्य के लिए असल में रुपये-पैसे से बढ़कर दुनिया में कोई चीज़ बड़ी नहीं है। अँधेरा घर कोई नहीं, कम-से-कम यह तो समझ गये? अभी तुम थके हो, पहले कुछ खा लो।'

कहकर नन्द को बुलाया।

पुकारने पर भी उनके गले से शब्द नहीं निकल रहे थे। फिर पुकारा, 'नन्द!'

लेकिन जी-जान से कोशिश करने पर भी गले से शब्द न निकले। सहसा नींद टूट गयी। उन्होंने चारों ओर देखा। अँधेरा कमरा, कहीं कोई न था। वह एक कमरे में बिस्तर पर लेटे-लेटे पसीने में नहा गये।

दिन किस तरह कहाँ से कट जाते हैं, समझ में नहीं आता। कब एक दिन बलरामपुर में पश्चिम पाड़ा के एक तालाब के किनारे एक छप्पर के घर में मिट्टी के फ़र्श पर संध्या का जन्म हुआ था। उसके बाद कभी खाकर, कभी बिना खाये वह बड़ी हुई। जन्म से ज्ञान होने के बाद ही उसने समझ लिया था कि वे ग़रीब लोग हैं। स्कूल की दूसरी लड़कियों में वह भी एक थीं। अन्तर था सिर्फ़ मुक्ति का साथ। मुक्ति का फ्रॉक, मुक्ति के जूते, मुक्ति का मकान—उन सबसे अलग थे। मुक्ति का चेहरा संध्या की माँ

की तरह न था। संध्या की माँ अपने हाथों से खाना बनाती, और मुक्ति का खाना बनाने के लिए आदमी तैनात था। मुक्ति के मकान से मुक्ति के लिए दूध आता। नौकरानी स्कूल के टिफ़िन के घंटे के वक़्त एक काँसे के गिलास में दूध लेकर आती। मुक्ति पीना न चाहती। नौकरानी ज़बरदस्ती मुक्ति को वह पूरा गिलास-भर दूध पिलाकर ही छोड़ती। आज वह मुक्ति कहाँ कैसे है, किसे पता ! संभव है, उसका ब्याह हो गया हो। शायद वह पति की गाड़ी पर चढ़ी घूम रही हो। सम्भव है, उसका जीवन बहुत सुखी हो। हो सकता है, उसके बाल-बच्चे हो गये हों।

यह ज़रूर है कि संध्या को ये सब बातें सोचने का वक़्त नहीं रहता। फिर भी नींद के पहले कुछ-कुछ याद हो जाता।

तीर्थ पूछता, 'तुम हमेशा ऐसा क्या सोचती रहती हो, संध्या-दी ?'

संध्या कहती, 'क्या सोचती हूँ ? सोचती हूँ तेरी बात।'

सवेरे से शाम तक जैसे चरखी की तरह उसे घूमते रहना पड़ता। तीर्थ ने फ़ैक्टरी में एक काम लिया है। फ़ैक्टरी में लोहे-लक्कड़ की चीज़ें बनती थीं। कभी पचास पौंड रेल, कभी नब्बे पौंड रेल, और कभी एक सौ बीस पौंड रेल। वह रेलें भारत सरकार मोल लेती। बड़ी दूर से कारख़ाने की घड़घड़ाहट सुनायी पड़ती। संध्या घर में बैठी-बैठी सुनती। शाम को साइरन बजते ही संध्या समझ जाती कि कारख़ाने में छुट्टी हो गयी है। तीर्थ ने और भी बहुत-से लड़कों को कारख़ाने में लगवा दिया है। लेकिन पक्की नौकरी किसी को नहीं मिली है। सवेरा होते-न-होते दफ़्तर के सदर दरवाज़े के आगे जाकर खड़ा होना पड़ता। कुछ-न-कुछ कैज़्युअल लोग रोज़ ही लिये जाते। मियाद एक दिन की रहती। किसी ने छुट्टी ली तो एक भाड़े का मज़दूर ले लिया। उन्हें कामकाज जानने की ज़रूरत नहीं थी। मज़दूर के लिए क्या कामकाज जानने की ज़रूरत होती है ! ठेला ढकेलना पड़ता, नहीं तो जूट के थैलों को सुतली से सीना पड़ता। उसके लिए डिग्री-डिप्लोमा की क्या ज़रूरत है ?

सन्तोष ही उनमें सबसे ग़रीब लड़का था। सवेरे से जाकर किसी-किसी दिन घंटे-भर में ही लौट आता।

संध्या कहती, 'क्यों रे, काम नहीं मिला ?'

सन्तोष कहता, 'न, कोई बीमार नहीं था, किसी ने छुट्टी भी नहीं ली थी।'

अर्थात उस दिन के आठ रुपये मारे गये। कहने को उस तीर्थ के रुपयों से ही कुल छः-सात लोगों का चल जाता। और बाक़ी जिनको उस दिन काम मिल जाता उस दिन आठ रुपयों का ऊपरी फ़ायदा रहता।

आश्चर्य है, कहाँ से सब लड़के जमा हो गये थे ! इतने लड़के देश में बेकार हैं ! उनकी तरह हज़ारों-लाखों लड़के हैं। उनका नाममात्र का घर रहने पर भी घर नहीं कहा जा सकता। बाप-माँ-भाई-बहन रहने पर भी बाप-माँ-भाई-बहन—कोई नहीं है।

जिस दिन दो-चार लोगों को काम नहीं मिलता उस दिन संध्या सबको छोड़कर कहीं चली जाती। जाते वक़्त कह जाती, 'आज मुझे आने में देर होगी, पता है ! रसोई-असोई सब रखे जा रही हूँ। मैं लौटकर खाऊँगी।'

कहकर संध्या दीदी चली जातीं। उसके बाद किसी-किसी दिन बहुत रात गये लौटतीं। तीर्थ, सन्तोष, व्रज, समीर आदि सभी खाने-आने से निबटकर दीदी के लिए बैठे रहते। बस्ती स्टेशन के पास ही थी। बहुत कुछ आधी बस्ती की तरह थी। सभी लोग अपने-अपने काम में व्यस्त रहते। उसके बाद सो जाते। लेकिन तीर्थ आदि उत्सुकता से दीदी के लिए सड़क की ओर देखते रहते।

उस दिन कोई आकर दरवाज़े की कुंडी खटखटाने लगा।

उसी समय तीर्थ फ़ैक्टरी से लौटा था। बोला, 'कौन ?'

दरवाज़ा खोलकर सभी ने देखा कि दो अनजान आदमी हैं।

'आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ? किससे मिलना है ?'

दोनों आदमी बोले, 'आप लोग तो इस सामने वाली फ़ैक्टरी में काम करते हैं ?'

'हाँ।'

'आपकी दीदी कहाँ हैं ? वे घर पर नहीं हैं ?'

'वे कलकत्ता गयी हैं।'

'कलकत्ता में क्या करने ?'

तीर्थ बोला, 'आप लोग इतनी बातें क्यों पूछ रहे हैं ? कौन हैं आप ? वे कलकत्ता क्या करने गयी हैं, यह आप क्यों जानना चाहते हैं ?'

दोनों चिढ़ गये। बोले, 'आप इतने ख़फ़ा क्यों हो रहे हैं ?'

तीर्थ बोला, 'ख़फ़ा न होऊँगा ? दीदी की जहाँ तबीयत हो जायें उसके लिए आप लोगों के आगे जवाबदेही करना पड़ेगी ?'

वे लोग और कुछ न बोले। मुँह-तोड़ जवाब पाकर धीरे-धीरे चले गये। तीर्थ ने साथ-ही-साथ दरवाज़ा बन्द कर दिया। उसके बाद अन्दर जाकर फिर बैठ गया। बहुत रात को जब अन्तिम ट्रेन स्टेशन पर आकर छूट गयी तो फिर दरवाज़ा खड़का। तीर्थ ने अन्दर से पुकारा, 'कौन ?'

बाहर से दीदी की आवाज़ सुनायी दी। बोली, 'मैं हूँ रे, मैं। दरवाज़ा खोल।'

अन्दर आकर संध्या ने सब सुना। बोली, 'ठीक किया। मैं कहाँ जाती हूँ, यह जानने की उन्हें क्या ज़रूरत है? अब से जो पूछे उसे तू यही कहना। लगता है कि हम पर वे लोग नज़र रख रहे हैं। तुम कुछ फ़िक्र मत करना, तुम जिस तरह चला रहे हो वैसे ही चलाते रहना।'

कहकर और कुछ न बोली। लेकिन उस दिन से संध्या और भी साव-धान हो गयी।

उस दिन प्लेटफ़ार्म पर एक लड़के ने सामने आकर हाथ फैलाया, 'एक दस पैसा दो, माँ...!'

संध्या ने बैग से दस पैसे निकालकर दिये। लड़के के मुँह पर हँसी छा गयी। हँसकर बोला, 'बहुत दिन बाद आज भात खाऊँगा, माँ!'

कहकर लड़का चला ही जा रहा था कि संध्या ने बुलाया, 'खोका, सुन, सुन।'

लड़का लौट आया। संध्या ने पूछा, 'दस पैसे के भात में तेरा पेट भर जायेगा?'

लड़का बहुत खुश हुआ। बोला, 'और दूसरे लोगों से माँग लूँगा। सबसे माँगने पर हो जायेगा।'

'अगर और कोई न दे तो?'

'नहीं देंगे तो कल भात खाऊँगा। नहीं तो परसों।'

'भात ख़रीदने में कितने पैसे लगेंगे?'

लड़का बोला, 'आठ आने।'

संध्या ने बैग से एक रुपया निकाला, 'यह एक रुपया ले। दो दिन भात ख़रीदकर खा लेना।'

लड़का रुपया पाकर भौंचक्का रह गया। इसके पहले किसी ने उसे एक रुपया नहीं दिया था। उछलता-कूदता भीड़ में खो गया।

ट्रेन आते ही संध्या उस पर चढ़ गयी। एक-एक स्टेशन पर आकर ट्रेन रुकती और कहीं से हड्डियों का ढाँचा बने लड़के-लड़कियाँ खिड़कियों के पास भीख माँगने जमा हो जाते। एक दिन एक करुण दृश्य देखा था। स्टेशन पर आदमियों की भीड़ भरी हुई थी। उसी के एक-एक कोने में एक-एक घर बसा है। एक लड़की चित होकर दोनों पैर फैलाये लेटी थी। यह लड़की कौन है? कहाँ से आयी है? आँखें बन्द। छाती पर सैंकड़ों जगह से फटा ब्लाउज़ था। आधा खुला। सारे शरीर पर, पैरों पर, घुटनों पर, जाँघों पर मक्खियाँ भनभना रही थीं। नज़दीक ही एक छोटा-सा बच्चा माँ का दूध पीने की कोशिश कर रहा है, लेकिन उसे वह मिल नहीं रहा है। लगता है कि शरीर में उतनी ताक़त नहीं है।

उनके ही दल में से ही एक औरत जो सामने से जा रही है उसकी ओर हाथ फैला देती है। कहती है, 'तुम में से कोई दस पैसे नहीं दे सकते हो ? ज़हर ख़रीदने में भी तो पैसे लगते हैं। ज़हर ख़रीदने को भी कोई पैसे न देगा तो मैं क्या करूँ ?'

संध्या के मन में कुछ आया। औरत के आगे जाकर खड़ी हो गयी। उसके हाथ में एक अठन्नी रख दी। औरत मानो एकदम कृतार्थ हो गयी। बोली, 'तुम भाग्यवती हो, माँ ! एक सौ बरस की लम्बी उमर हो तुम्हें।'

संध्या बोली, 'एक सौ बरस ज़िन्दा नहीं रहना चाहती। इतने दिन तक किसे दुख न होगा ?'

औरत बोली, 'तुम ठीक कहती हो माँ, लेकिन कलकत्ता शहर में इतने बड़े-बड़े आदमी हैं, लेकिन तुम्हारी तरह कोई एक आदमी दिखायी नहीं पड़ा।'

संध्या बोली, 'तो इस तरह भीख माँगकर क्यों मर रही हो ? भीख माँगने पर क्या यहाँ कोई देगा ? तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारा घर-द्वार नहीं है, तुम्हारे मित्र नहीं हैं। तुम्हारे भगवान नहीं है। तुम्हारी सरकार तक नहीं है। ग़रीबों का कोई नहीं होता। यह तुम्हें नहीं मालूम है ?'

औरत बोली, 'तो माँ बता सकती हो कि हम क्या करें ? हम क्या इसी तरह मर जायेंगे ?'

संध्या बोली, 'तुम छीन-झपटकर नहीं खा सकती हो ? तुम लूटकर नहीं खा सकती हो ? यही तो मिठाई की दूकान में रसगुल्ले-सन्देश एक-पर-एक सजे रखे हैं, तुम दूकान तोड़कर लूट नहीं कर सकती हो ? तुम आदमी हो या गाय-भेड़ ? भगवान ने क्या भीख माँगने के लिए हाथ दिये हैं ? उन हाथों से कुछ और करने को क्या भगवान ने मना कर दिया है ?'

बातों को सुनकर औरत केवल रोने लगी।

तभी एक पुलिस-कांस्टेबिल आकर डाँटने लगा, 'भागो, भागो, यहाँ से सब भागो। भाग जाओ।'

उसके वाद से पूरे कलकत्ता में, सारे वंगाल में मानो अराजकता फैल गयी। कहाँ से कौन उन्हें अस्त्र दे रहा है, कौन उन्हें चलाता है, कोई भी उसे जान नहीं पाता। धीरे-धीरे सरकार का ध्यान इधर गया। ये लोग कहाँ से आकर सब-कुछ व्यवस्थित चीज़ों को उलटे-पलटे जा रहे हैं। शाम के वाद रास्ते पर निकलने में डर लगता था। कलकत्ता के आदमियों ने दुर्भिक्ष देखा था; लड़ाई देखी थी; दंगा-खून-ख़रावा देखे थे; देश के बँट-वारे के वाद विस्थापित लोगों को ख़ाली हाथों वेसहारा हालत में एक कपड़े में पद्मा के उस पार से इस पार आते देखा था। लेकिन ऐसी अराज-कता किसी ने पहले कभी नहीं देखी थी।

हर दीवार पर पोस्टर लगे रहते थे : 'चीन के चेयरमैन हमारे चेयर-मैन !'

और भी पोस्टर लगते थे : 'वन्दूक की नली ही शक्ति का एकमात्र स्रोत है !'

सवेरे नींद से उठकर लोग हाथ में थैला लेकर वाज़ार की राह पर दोनों ओर की दीवारों पर पोस्टरों पर लिखा पढ़ते और चौंक जाते। सोचते कि यह पार्टी कौन है? इन सारी वातों के अर्थ क्या हैं? किसने यह सव लिखा है? उनका नाम क्या है? राजभवन के विशाल कम्पाउंड में स्वतन्त्रता का वार्षिक उत्सव होता है। क़तार वाँधकर गाड़ियों का झुंड जाकर अन्दर घुसता। दुनिया के सारे देशों के कान्सुलेट-ऑफ़िसों से साहव, मेमसाहव लोग एक-एक कर गाड़ी से उतरते और उसी वाग़ीचे में जमा हो जाते। हरे क़ालीन विछे वग़ीचे पर रंगीन तितलियों की तरह फुर्-फुर् कर रूपवान और रूपसियों का दल घूमता-फिरता। वहाँ आज भारतवर्ष के सुपवित्र स्वतन्त्रता-दिवस का उत्सव है! वहुत-से शहीदों का खून देकर ख़रीदी थी स्वतन्त्रता! वाग़ीचे के लॉन में शहर के ऊँचे समाज की तितलियाँ किलकिल कर रही हैं। विलायत से उधार ली हुई चमक-दमक देखकर आँखों को धोखा हो जाता। लेकिन फिर भी वर्ष की यह संध्या यद्यपि बड़ी पावन, लेकिन वहुत विषादपूर्ण है। इसी दिन उन लोगों की याद करो जिन्हें अँग्रेज़ों ने फाँसी के तख्ते पर लटका दिया, जो अँग्रेज़ों की गोलियों से भून दिये गये। उनकी याद में ही आज क़ीमती-क़ीमती सिगरटें, क़ीमती चाय, कॉफ़ी, केक, पेस्ट्री, पैरीज़ का आयोजन है! लम्वी मेज़ पर खाने से भरी प्लेटें सजी हुई हैं—यह सव-कुछ तो उन लोगों की स्मृति में ही है!

सहसा पश्चिम दिशा के वड़े राजभवन के दो-मंजिले पर वालकनी में वैंड वज उठता है :

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता...।

साथ-ही-साथ सब अटेंशन की हालत में खड़े हो जाते। अब गप्प करने या बातें करने का अवसर नहीं था। अब सब लोग चुप रहो। लाटसाहब आ रहे हैं। उनके आगे-पीछे ए-डि-काँग हैं। सफ़ेद, कड़ी इस्तरी की हुई वर्दी पहने उनकी देह है। वह प्रेज़िडेंट के प्रतिनिधि, ईश्वर के प्रतिनिधि हैं! उन पर श्रद्धा करो, उनकी भक्ति करो। वह ही हमारी देश-माता के प्रतीक हैं। वह ही भारत की आत्मा के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं।

उस समय भी बैंड बज रहा था :

पंजाब, सिन्धु, गुजरात, मराठा,
द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा
उच्छल जलधि तरंग...।

सहसा बैंड रुक गया। लेकिन बैंड बजना रुक कर भी बैंड के स्वर उस समय भी बग़ीचे के क्रोटन के पौधे-पौधे में गूँजने लगे। वे स्वर याद दिला देते थे कि आज उन शहीदों को मत भूलो जिन्होंने यह स्वाधीनता हमें-आपको ला दी है। वे शहीद हैं—खुदीराम नहीं, भगतसिंह नहीं; बटुकेश्वर दत्त नहीं; देशबन्धु नहीं; नेताजी सुभाष नहीं। शहीद हैं सिर्फ़ जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और महात्मा गांधी!

'अरे मिसेज़ भट, कल रोटरी क्लब में नहीं दिखायी दीं?'

'बताइये तो कैसे जाती? मैं अभी कल ही तो बैंकाक से लौटी हूँ!'

उत्सव के आरम्भ में दो सामान्य रूप से परिचित निमन्त्रितों की संयोग से मुलाक़ात हो गयी। समाज में ऊँची सीढ़ी पर चढ़ने का यह एक विशेष पुरस्कार है। वह पुरस्कार जब हम दोनों को मिला तो हम स्वाभाविकतया घनिष्ठ हो गये। हमारे साथ और भी बहुतों को निमन्त्रण मिला है। यह देवकान्त भद्र आये हैं। आये हैं बड़े क्रिमिनल क़ानून-दाँ सर्वजय बनर्जी, और, और वह जो उधर लाटसाहब के साथ खड़े बातें कर रहे हैं वह देश-वरेण्य नेता हरिसाधन चट्टोपाध्याय...।

और तभी कहीं से मानो बहुत दूर से कोई बोल पड़ा, 'तुम दस पैसे भी नहीं दे सकते? विष ख़रीदने में भी तो पैसे लगते हैं। विष ख़रीदने का पैसा भी कोई न देगा। तो मैं क्या करूँ?'

कलकत्ता के राह-घाट पर, आकाश में, हवा में, अन्तरिक्ष में उस समय

इस बात ने तीव्र से तीव्रतर होकर सबके मनों को झनझना दिया। लेकिन होशियार, राजभवन के पहरेदारो—पुलिस से घिरे बाग़ीचे में वह बात न पहुँचे। अगर किसी भी दरार से ये बातें हमारे माननीय अतिथियों के कान में सुन पड़ें तो मुसीबत हो जायेगी! कान्सुलेट-ऑफ़िस के विदेशी अतिथि देश-विदेश में भारत की बुराई फैलायेंगे। अपने होम-डिस्पैच में लिख भेजेंगे कि भारत ग़रीब देश है; उसके पास देश के आदमियों को खिलाने तक को खाद्य नहीं है। अगर किसी दरार से वह करुण रुदन का शब्द अन्दर पहुँच जाये तो हमारी इतनी कामना का ऐसा आयोजन—यह चाय, यह कॉफ़ी, यह कोल्ड ड्रिंक, यह केक-पेस्ट्री, स्नैक्स—सब-कुछ उनकी जीभ को बेस्वाद लगेगा, सारा कुछ उन्हें तीता लगेगा।

और ठीक तभी कलकत्ता शहर की एक गली के काफ़ी अन्दर के मकान में अंधकार काला होकर उतर रहा था। एक सस्ते पुराने तख्त पर कई लोग गम्भीर मन से बातचीत कर रहे हैं। वह एक दूसरी ही दुनिया है, दूसरा ही दृश्य है; दूसरा ही प्रसंग है। कहाँ किसने ज़ुल्म किया है; कहाँ-कौन अत्याचार कर रहा है; कहाँ कौन मनुष्य की प्रतारणा करता है—उसी की सूची तैयार हो रही है। उन सब समाज-विरोधियों को खोज निकालो, उन सब अत्याचारियों का पता लगाओ, उन सारे धोखेबाज़ों का नाम लिख रखो। उन सबकी सूची तैयार करो। फ्रांसीसी विद्रोह के पहले भी क्रान्तिकारियों ने बिलकुल इसी तरह की सूचियाँ बना ली थीं। इसी तरह ही उन्होंने उस दिन देशद्रोहियों से प्रतिशोध लिया था जिससे कि कोई विस्मृति के अतल में डूब न जाये। वक़्त आते ही उन्हें मलियामेट करना होगा।

प्रभुदयाल दोसानिया।

इसने क्या किया?

मिलावटी दवाइयाँ बेचकर आम लोगों की हत्या की।

खाते में नाम लिखा गया। इसके बाद का नाम?

कुलप्रदीपसिंह।

इसने क्या किया?

इम्पोर्ट लाइसेंस-होल्डर है। विदेशी माल सस्ते में इम्पोर्ट करता है और खूब दाम बढ़ाकर लोगों का शोषण करता है।

इस तरह बहुतेरे लोगों के नाम एक-एक कर खाते में लिखे गये।

शशीपद मुकर्जी।

इसने क्या किया?

इम्पोर्ट लाइसेंस-होल्डर है। विदेशी माल मँगा कर बाज़ार में ब्लैक

करता है।

खाते में उसका नाम भी लिख लिया गया।

एक कोने से एक आदमी बोला : देवकान्त भद्र।

इसने क्या किया ?

लड़कियों को बहकाकर किराये पर चलाता था।

ठीक है, इसका नाम भी लिखो।

अचानक कमरे की उत्तर दिशा से किसी स्त्री की आवाज़ आयी : हरिसाधन चट्टोपाध्याय।

इसने क्या किया ?

चुनाव के पहले विरोधी दल के प्रत्याशी के मकान में आग लगाकर सबको जलाकर मार डाला।

और उधर फिर बैंड बजने लगा। सपत्नीक लाटसाहब बाग़ीचे से राजभवन के अन्तःपुर की ओर चले गये। तितलियाँ फिर उड़ती-उड़ती अपनी गाड़ियों पर आ बैठीं। फिर मिसेज़ भट, मिस्टर हम्फ्रीज़, मिस आहूजा, मिस्टर तलवलकर—जिसे जिधर जाना था उड़ते-उड़ते चले गये। पावन स्वतंत्रता-दिवस के अनुष्ठान का अन्त हुआ। आकाश में, वायुमण्डल में, अन्तरिक्ष में बैंड के स्वरों की गूँज लहराने लगी :

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता...।

बाहर रास्ते पर वह महिला उस समय भी सबकी ओर हाथ बढ़ा रही है : 'तुम दस पैसे भी नहीं दे सकते हो ? ज़हर ख़रीने के लिए भी तो पैसे चाहिए, बाबा ! तो मैं क्या करूँ ? एक कटार दे दो, रेत-रेत कर गला काट डालूँ।'

लेकिन बैंड के बाजों के सुरों की गूँज उस समय भी उनके मन में घूम रही थी—बाजों की उस आवाज़ में महिला का वह करुण-रुदन गहरे में डूब गया ! वह किसी के कानों तक नहीं पहुँचा।

वेड़ापोता में वड़े भारी पांडाल के नीचे सभा हो रही है।

सभापति वने हैं हरिसाधन चट्टोपाध्याय। वेड़ापोता के लोगों का भाग्य अच्छा है कि ऐसे एक देश-प्रेमी व्यक्ति ने सभापतित्व करना स्वीकार किया है। श्रीयुत् चट्टोपाध्याय तो बहुत व्यस्त व्यक्ति हैं। उन्हें देश-भर की समस्याओं के वारे में निरन्तर सोचना पड़ता है। उन्होंने सभा की तैयारी करने वालों से कहा था, 'मुझे तुम लोग क्यों बुला रहे हो, मैं क्या समय दे सकूँगा ?'

तैयारी करने वालों ने वहुत-वहुत अनुरोध किया। कहा था, 'नहीं सर, आपके गये विना नहीं चलेगा। यहाँ की सारी पब्लिक आपको ही चाहती है। आपके सभापति वनने से हमारे वहुत-से टिकिट विक जायेंगे।'

तभी सभापति वनने पर हरिसाधन वावू राज़ी हुए थे।

सो वही सभा उस वक़्त चल रही थी। केवल भाषण नहीं—भाषण तो उपलक्ष्य था। लक्ष्य था गाना-वजाना। गाने-वजाने के लिए ही टिकिटों की विक्री थी। ज़वरदस्ती सवको टिकिट वेचे गये थे। सवके घर-घर जाकर टिकिट ख़रीदने के लिए दवाव डाला गया था। वस्ती के क्लव का मामला था। वेड़ापोता-संस्कृति-संघ के लड़के वड़े संस्कृति-भक्त थे। साल में दो-तीन वार वे इसी तरह सांस्कृतिक अनुष्ठान करते। उससे कुछ चन्दा हो जाता। वही चन्दा लेकर वे वड़े-वड़े गवैयों के घर जाकर धरना देते। वड़े-वड़े गायक-गायिकाओं के नाम उनकी कलाकर-सूची में रहते। गायक-गायिकाओं को रुपये देकर भी वहुत-सा रुपया उनके पास वचा रहता। वे रुपये जव समाप्त हो जाते तो फिर कोई-न-कोई कुछ उपलक्ष्य वनाकर चन्दा जमा करने के लिए फिर सांस्कृतिक अनुष्ठान किया जाता। कभी सार्वजनीन दुर्गा-पूजा, कभी काली-पूजा के उपलक्ष्य में गुणी-जनों का सम्मान। कभी और कोई वात न वने तो रवीन्द्र-नज़रुल संध्या होती। और कोई भी कुछ उपलक्ष्य न मिलने पर सार्वजनीन शीतला-पूजा होती और उसके साथ होता दरिद्र-नारायण का भोजन। वस्ती के लोगों की तवीयत हो या न हो, उनको चन्दा तो देना ही पड़ता। न देने का कोई चारा नहीं था, इसीलिए वे चन्दा देते।

उन कुछ दिनों संस्कृति-संघ के लड़कों के कामों का अन्त न रहता। कौन सभापति होगा, कौन प्रधान अतिथि होगा—इस पर ही कुछ दिनों तक वहस चलती। किसी मंत्री के भी आने से अनुष्ठान की मर्यादा वढ़ जाती। लेकिन हमेशा तो मंत्री पकड़ में नहीं आते थे। तव एम० एल० ए० या किसी कवि को ही निमन्त्रित किया जाता। किसी साहित्यिक या कवि का मिलना ज़्यादा मुश्किल न होता। वे वहुत सस्ते भी रहते। एक वार दस

पैसे का एक पोस्टकार्ड लिखने से ही वे आकर कुछ देर भाषण देकर चले जाते। खाने के नाम पर बहुत हुआ तो एक कप चाय, और साथ उनके आने-जाने का किराया देना होता।

इस वार एक नामी वड़े आदमी मिल गये ! हरिसाधन चट्टोपाध्याय। अव कोई फ़िकर की बात नहीं है। वेड़ापोता में अच्छा रास्ता नहीं है। पीने के पानी का इन्तज़ाम नहीं है। हरिसाधन चट्टोपाध्याय के आने से उनकी नज़र में यह डाल देना होगा। यही मौक़ा है। यह सुयोग फिर नहीं आ सकता। और क्या सिर्फ़ यही ? यहाँ के लड़कों को लिखने-पढ़ने के लिए स्कूलों-कॉलेजों में जगह क्यों नहीं मिलती; लिखने-पढ़ने के लिए जो कलकत्ता पढ़ने जाते हैं उनके लिए वस का अच्छा इन्तज़ाम क्यों नहीं है ? और जव वे परीक्षा देते हैं तो परीक्षा-फल ठीक वक़्त से क्यों नहीं निकलता ? इस हानि की पूर्ति कौन करेगा ?

वेड़ापोता के लोगों की और भी वहुत-सी शिकायतें हैं। केवल वेड़ापोता के लोगों की ही नहीं, पूरे देश के लोगों की ये सारी शिकायतें हैं। इस्पात और कोयला हमारे देश में ही होता है, किन्तु पूरे देश के लोग उसे एक ही दाम पर ख़रीद सकते हैं। लेकिन कपास ? कपास के व्यापार में उलटा नियम क्यों है ? हम एक भाव पर तेल ख़रीदेंगे, लेकिन गुजरात के लोग उसके आधे भाव पर तेल ख़रीदने की सुविधा क्यों पाते हैं ? जवाहरलाल नेहरू ने वंगाली किसानों से केवल सन उगाने को कहा था। कहा था : 'तुम अपनी मिट्टी में सन उत्पन्न करो, उससे हमारे देश में विदेशी मुद्रा आयेगी। और उसके वदले मैं तुम्हें पंजाब से चावल ले दूँगा।'

लेकिन कहाँ क्या है ? हमने जवाहरलाल नेहरू की वात सुनकर ग़लती की। हम अपनी धरती में सन क्यों पैदा करें और सारा देश उस सन की विक्री से प्राप्त विदेशी मुद्रा की सुविधा का भोग करे ? और चावल-गेहूँ ख़रीदने जाने में हमें क्यों ज्यादा दाम देने पड़ें ? क्यों कंकड़-मिले चावल पंजाव से ख़रीदें ? तव उसके वदले में सन न उत्पन्न कर हम अव से अपनी ज़मीन में केवल धान ही उत्पन्न करेंगे।

भारत तो सव मिलाकर एक देश है। उसी देश के एक अंचल से दूसरे अंचल में चीज़ों का जाना दोष नहीं है। देना-लेना करके ही तो देश चलेगा। कोई भी आत्मनिर्भर नहीं है। इसमें न लज्जा है, न संकोच। लेकिन भारत में मात्र एक स्थान पर सन की खेती हो—और वह भी इस वंगाल में। लेकिन सन का वीज महाराष्ट्र से क्यों ख़रीदना पड़ेगा ? यहाँ आजकल गेहूँ की खेती खूब हो रही है। लेकिन बीज के लिए पंजाब-हरियाणा की ओर मुँह पसारे रहो। यह कैसे होगा ? और उसके सिवा

इतनी मुसीवत और किसी राष्ट्र को सहना पड़ती है ? इस देश पर होकर इसे एकाकार कर गये हैं अकाल, दंगे, विश्वयुद्ध, देश का बँटवारा और उसके वाद उस पार के बंगला देश के मुक्ति-संग्राम का झंझट ! यह सव किसे सहना पड़ा ?

क्लव के लड़कों-वूढ़ों के यही सवाल थे ।

एक ने कहा, 'यह सवाल तुम लोग पूछोगे, समझे ?'

एक दूसरे ने कहा, 'एक वात और है; पंजावी रिफ़्यूजियों को ज़मीन-जायदाद सव दिये गये और वंगाली विस्थापितों के वक़्त सिर्फ़ हर व्यक्ति को ख़ैरात और भत्ता—यह भेद क्यों ? क्यों, वंगाली क्या इस देश के नहीं हैं ? वे क्या टैक्स-वैक्स नहीं देते ?'

एक वयस्क वोले, 'तुम इतने उत्तेजित क्यों होते हो, जी ? लोग गाना सुनने आयेंगे, गाना सुनकर चले जायेंगे । उन सव झगड़ों में तुम लोग क्यों पड़ रहे हो ?'

एक वोले, 'वात जव उठती है तो कहते हैं ! देश में जितना इस्पात तैयार होता है, उसका एक-तिहाई वंगाल में तैयार होता है, पता है ? और हम ही पिछड़े रहेंगे ? हमारे इस पश्चिम-वंग को वे लोग पिछड़ा हुआ क्यों कहें ? किसने हमें पिछड़ा रखा है, इसका जवाव हरिसाधन वावू को देना पड़ेगा ।'

वयस्क आदमी बोला, 'न, देख रहा हूँ कि तुम लोग कोई-न-कोई गड़-वड़ किये विना नहीं मानोगे । इस तरह करने से इसके वाद वेड़ापोता में कोई सभापति वनने न आयेगा । यह तो तुम्हारी राजनैतिक सभा नहीं है, यह है सांस्कृतिक सभा; यहाँ ये सव सवाल उठाना अनुचित होगा ।'

क्लव के सभापति ने अन्त में टिप्पणी की, 'यही मेरी राय है । कोई भी राजनैतिक सवाल यहाँ नहीं उठाया जाना चाहिए । अगर वही करना हो तो पदाधिकारियों की सूची से मेरा नाम तुम लोग काट दो ।'

एक जूनियर मेम्वर बोले, 'हम लोग इतने डरपोक हैं, इसीलिए तो हम बंगालियों का कुछ नहीं होता ।'

लेकिन नहीं, अन्त में निश्चय यही हुआ कि कोई भी राजनैतिक आलोचना नहीं होगी । हरिसाधन वावू वहुत व्यस्त व्यक्ति हैं । वह अपने काम का नुक़सान कर, कृपा करके हमारे यहाँ आने को तैयार हो गये—यही हमारे लिए सौभाग्य की वात है । उनका किसी तरह असम्मान करना ठीक न होगा । उनका असम्मान करके, उन्हें ख़फ़ा कर हमारा कोई लाभ न होगा । उनके द्वारा अगर यहाँ की सड़क वनवानी है; उनके द्वारा अगर यहाँ कुछ ट्यूववेल लगवाने हैं तो उनकी ख़ातिर करने की नीति ही अच्छी

है। जिसके हाथ में सरकार है उसे ख़फ़ा नहीं करना चाहिए। पानी में रह कर क्या कभी मगर से बैर अच्छा है?

सो हरिसाधन वाबू ठीक समय से आये। इन सब कामों में उनकी जानकारी वहुत है। लोग वेसुरा गाना-वजाना ही सुनते हैं। नाममात्र की एक फूल-माला गले में डालकर उन्हें कुछ भाषण करना होता है। और वह भाषण भी हवाई भाषण रहता है। यह सब उनको पता था। बंगाल के लिए उन्होंने क्या किया, कितना त्याग किया, उसके वाद सरकार के अन्दर जाकर उन्होंने सामान्य मेहनतकश आदमी के लिए उपकार के क्या-क्या कार्य किये, यह उन्हें रटा रहता। उस पार से करोड़ों लोग वेघर होकर इस देश में आये, उन्हें ज़मीन देने की व्यवस्था हुई; उन्हें नौकरी देने के लिए असेम्वली में उन्होंने क्या भाषण दिया था, उस समय के चीफ़-मिनिस्टर के साथ यह लेकर उन्होंने कितना झगड़ा किया था—यह सब उन्हें याद है। भाषण देते-देते वह कब कहाँ कितना हाथ उठायेंगे कितनी वार मुट्ठी बाँधेंगे—यह भी उन्हें मालूम है। क्या बात कहने से जनता तालियाँ पीटती है—इस कला में वह दक्ष हैं। कहाँ पर आवाज ऊँची करना होगी; कहाँ नीची करना होगी—यह विद्या राजनीति शुरू करने से पहले ही उन्होंने सीख ली थी। उन्हें मालूम है कि लेक्चर का अर्थ ही धोखा है। फिर भी उस धोखे को ही सचाई का रूप पहराना एक कला, एक चातुर्य है। उसी कला में उन्होंने इतने सालों में अपने को अभ्यस्त कर लिया है। साधारणतः इस कला के प्रयोग में उनसे कभी ग़लती नहीं होती। थोड़ा-सा जवाहरलाल नेहरू से सीखा था और कुछ सीखा था गांधीजी से। लेक्चर की कला में दोनों ही बड़े कलाकार थे। किन्तु हरिसाधन बाबू ने दोनों से ही अच्छे-अच्छे गुण सीखकर जगह-जगह बहुत अच्छा फल पाया था। असल में तो लेक्चर चीज़ ही ऐसी कला है जिससे लोग धोखे को पकड़ न सकें। ज़रूरत होने पर जिस प्रकार मुट्ठी बाँधना होगी वैसी ही नम्रता भी दिखानी पड़ेगी। और सबसे मुश्किल जो चीज़ है वह है रोना। पहले-पहल सार्वजनिक रूप से रोना उनसे नहीं हो पाता था। एक बार बर्दवान जाकर ग़रीबों के दुख पर वह ऐसा राये थे कि सारी मीटिंग के आदमी तीन मिनट तक तालियाँ बजाते रहे।

चारों ओर हज़ारों लोग उद्बोधन संगीत सुन रहे हैं। वह चुप होकर एकाग्र मन से वैठे हैं। क्या भाषण देंगे; उसी का मन-ही-मन अभ्यास कर रहे हैं। जैसे श्रोता होते हैं उनके अनुकूल ही वह भाषण देते हैं। किसान-मजदूरों में एक तरह से, मध्यवित्त समाज में दूसरी तरह से। और विशिष्ट लोगों में

विशेष प्रकार का भाषण देते। जिस तरह प्रेस क्लब में या चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स की सभा में, उसी तरह रोटरी क्लब में दूसरी तरह।

पहले ही वह बोलेंगे : इस अनुष्ठान में उपस्थित भाइयो और बहनो !

साथ-ही-साथ तालियाँ बजेंगी। वे दस सेकेंड के लिए चुप रहेंगे ! उसके बाद तालियों की आवाज़ रुकते ही फिर शुरू कर देंगे...।

सहसा क्लब के एक अधिकारी ने आकर कान में कहा, 'सर, आप क्या भाषण देते ही चले जायेंगे ?'

'क्यों ?'

'नहीं, ज़रा जलपान का प्रबन्ध है न ? इसीलिए...।'

हरिसाधन बाबू बोले, 'न, न, यह सब प्रबन्ध मत करो। मैं बेवक़्त कुछ नहीं खाता। मेरे घर पर दो रोटियाँ ढकी रखी होंगी। मैं घर जाकर वही खाऊँगा। तुम लोग यहाँ के ग़रीब लड़के-लड़कियों को वह सब खिला दो। और उसके सिवा यहाँ से फिर मुझे कलकत्ता में एक दूसरी मीटिंग में जाना है; वे लोग इस वक़्त मेरा वहाँ इन्तज़ार कर रहे हैं...।'

बात समाप्त होने के पहले ही उधर उद्‌बोधन संगीत समाप्त हो गया। गाने समाप्त होते ही सभापति का चुनाव। एक पदाधिकारी ने माइक्रोफ़ोन पर घोषणा की, 'इस बार देश-वरेण्य नेता, महान देशसेवक श्रीयुत हरिसाधन चट्टोपाध्याय अपना सुविचारित अभिभाषण देंगे।'

एक छोटी-सी लड़की ने आकर उनके गले में एक फूलों की माला पहना दी। उन्होंने सिर झुकाया। उसके बाद माला गले से उतार आगे मेज़ पर रख दी।

वह खड़े हुए। सारी सभा निस्तब्ध शान्त थी।

उन्होंने विनय, गम्भीर वाणी में आरम्भ किया, 'इस अनुष्ठान में उपस्थित भाइयो और बहनो...!'

कहना शुरू करने के साथ ही ज़ोरों की तालियों की आवाज़ आयी। नियम के अनुसार वह दस सेकेंड के लिए चुप रहे। यही नियम था। सभी जगह इस तरह होता था। उसके बाद ही तालियाँ रुक जायेंगी। वह अब अपना भाषण शुरू करेंगे।

लेकिन वह न हुआ। सभा के एक ओर से कुछ अस्पष्ट गड़बड़ शुरू हुई। गड़बड़ पहले अस्पष्ट रहने पर भी एक सेकेंड के बाद कुछ अधिक स्पष्ट हो गयी। जैसे कोई कहीं गड़बड़ कर रहा हो। उनके जीवन में इस तरह की घटना यह पहली ही न थी। उन्होंने उस ओर देखा। यह क्या हुआ ? दो-चार लोगों ने परस्पर हाथापाई शुरू कर दी। उन्होंने सोचा फिर जैसे भाषण शुरू किया जाता है वैसे ही करेंगे। उसके बाद जैसा कि

क़ायदा है, गड़बड़ रुक जायेगी।

लेकिन...।

अचानक क्या हुआ? उनके कलेजे में ज़ोरों की आवाज़ के साथ आकर कुछ लगा और वह मंच पर ही लुढ़क गये। उसके बाद उन्हें होश न रहा। सभा में मारामारी शुरू हो गयी। जैसे कोई किसी को पकड़ने के लिए भागा। 'क्या हुआ, मशाई? यहाँ क्या हुआ?' चारों ओर ज़ोरों का शोर मच गया।

एक आदमी बोला, 'एक आदमी ने सभापति को गोली मार दी है।'

बात सुनने के साथ ही सब डर गये। भागो, सब लोग भागो। महिलाएँ घबरा गयीं। चारों ओर से छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों को लेकर विशेष परेशानी थी। माँ-बाप छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों को कलेजे से लगाये बाहर निकलने की राह ढूँढ़ने लगे। लेकिन भम्भड़ में बाहर निकलने के सारे रास्ते उस वक़्त बन्द थे। उस वक्त ऐसा लग रहा था कि सबका दम घुट जायेगा।

लेकिन जो लोग 'सांस्कृतिक संघ' को चलाने वाले थे उनकी सबसे ज़्यादा मुसीबत थी। उनके सिर पर उस वक़्त जैसे गाज गिर गयी हो। तब कहाँ डॉक्टर, कहाँ ऐम्बुलेंस, कहाँ है अस्पताल? उन लोगों को कौन ख़बर देगा? हरिसाधन बाबू के घर पर उस वक़्त ख़बर देने की ज़रूरत थी। सब बेकार। इतने दिनों से इतना आयोजन करके यह अनुष्ठान हुआ, सब-कुछ बेकार हो गया। पुलिस के पास ख़बर चली गयी। वहाँ से जीप में चढ़कर पुलिस के ओ० सी० और थाने के कांस्टेबल आये। उनके पास से ख़बर लाल-बाज़ार गयी। लाल-बाज़ार से ख़बर पहुँच गयी चीफ़-मिनिस्टर के पास। वह ख़बर पाकर बहुत देर तक गुमसुम रहे। उसके बाद उनके पास दनादन टेलीफ़ोन आने लगे। उन्होंने गवर्नर को ख़बर दी। लाल-बाज़ार से और भी ज्यादा पुलिस-फ़ोर्स बेड़ापोता चली गयी। और उसके बाद रेडियो के द्वारा वह ख़बर पूरे पश्चिमी बंगाल में फैल गयी। स्थानीय संवाद की ख़बर लेकर घर-घर चर्चा होने लगी। आलोचना चलने लगी बलरामपुर में। गौर मोदक अपनी मिठाई की दूकान का रेडियो खुला रखकर मिठाई की ख़रीद-बिक्री कर रहा था कि तभी कान में ख़बर पड़ी। वहाँ सुनायी पड़ा विपिन आदि के कानों में, हेडमास्टर साहब के कानों में, कॉलेज के प्रिन्सिपल के कानों में। बलरामपुर के बी० डी० ओ० साहब ऑफ़िस का काम निबटाकर तभी घर आये थे कि पत्नी से ख़बर सुनी। उसके बाद ख़बर नन्द के कानों में पड़ी। ख़बर सुनकर वह ज़ोरों से रोने लगा। बराबर नन्द ही सब जगह उनकी देख-भाल करता आया था। वह मानो एकाएक अनाथ हो गया।

और मुक्ति ? मुक्ति उस समय अपनी ससुराल में थी। रेडियो की ख़बर उसे वहाँ नहीं मिली। दूसरे दिन अख़बार के पन्नों में ख़बर पढ़ते ही वह वेहोश हो गयी। एक मुसीबत के असर से दूसरी मुसीबत का आघात उसके सिर पर आ गिरा। माँ पहले से ही नहीं थी। भाई का पता नहीं था। वलरामपुर से एकमात्र क्षीण सम्बन्ध-सूत्र था, वह भी शायद अव लुप्त हो गया।

अपनी मृत्यु के पहले एक दिन शम्भुसाधन चट्टोपाध्याय सतर्कवाणी का उच्चारण कर गये थे। वह वाणी शायद इतने दिनों में सार्थक हुई। शायद उनका अभिशाप ही फला। लेकिन अभिशाप ही क्यों कहा जाये? सम्भवत: यह भी इतिहास की एक अनिवार्य परिक्रमा है। इतिहास यदि पुनरावृत्ति करता है तो वह उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। यह तो इतिहास की एक अचूक परिणति है। एक जीवन की अहेतुक उच्चाकांक्षा के प्रति भाग्य-विधाता का यह एक मर्मान्तिक परिहास था। सभी मनुष्य नश्वर हैं। इस नश्वर पृथ्वी के समस्त मनुष्यों की तरह हरिसाधन चट्टोपाध्याय ने भी एक नश्वर जीव होकर जन्म लिया था। उन्हें किसी-न-किसी दिन मरना ही था।

तमाम लोगों के सामने एक ही प्रश्न था—हरिसाधन वावू का हत्यारा कौन है ? हरिसाधन चट्टोपाध्याय जैसे ऐसे देश-हितैषी की असमय मृत्यु कैसे हुई ? उन्होंने क्या अपराध किया था ? जो आजीवन निस्वार्थ भाव से देश-सेवा करते आये, उनकी हत्या कर किसकी क्या इच्छा पूरी हुई ? उन्होंने विपिन आदि से कितनी वार कहा, 'तुम लोग मुझे अव चुनाव में खड़े होने के लिए मत कहो। मुझसे अब यह काम न हो सकेगा।'

उन्होंने और भी कहा था, 'गांधीजी ज़बरदस्ती मुझसे देश-सेवा करने को कह गये थे, इसीलिए सव-कुछ छोड़कर यह काम कर रहा हूँ, नहीं तो मुझे क्या ज़रूरत है ?'

चुनाव के दिन सवेरे वह कहीं न जाते। अपनी वैठक में वैठे रहते। किसी से भेंट होने पर कहते, 'तुम लोगों ने मुझे तो वोट नहीं दिया है न ?'

ये सब बातें नये सिरे से होने लगीं। चर्चा चलने लगी गौर मोदक की मिठाई की दूकान पर, बी० डी० ओ० के ऑफ़िस में, वलरामपुर के स्कूल-कॉलेज में—सब जगह। असेम्वली-हाउस में भी शोक-प्रस्ताव हुआ। और भी प्रस्ताव हुआ कि देश से अविलम्व यह गुंडई, राहज़नी, हिंसा और ख़ून-ख़रावे की राजनीति वन्द करना होगी। निकम्मेपन के लिए पुलिस की भी निन्दा की गयी थी।

उस वक़्त रात कितनी थी, किसे पता! अलीपुर प्रेसीडेंसी के जेलख़ाने के सामने घूंघट काढ़े एक महिला आ खड़ी हुई। जेलख़ाने के फाटक पर क्या पहरा नहीं था? फाटक पर क्या ताला वन्द न था? फिर महिला विना किसी आवाज़ के जेलख़ाने के अन्दर कैसे घुस गयी? फिर और भी ताज्जुव की वात है कि महिला ज़ीने से होकर दो-मंज़िले के वरामदे पर चली गयी। लम्वा सूना वरामदा पार कर एकदम सीधे अन्तिम सेल के आगे स्वदेश के सामने आकर खड़ी हो गयी। अव तक स्वदेश जागते हुए सव-कुछ देख रहा था। रात में उसे किसी दिन नींद नहीं आती। वरस-पर-वरस अकेले में वीत गये थे। वहुत दिन हुए उसकी रात की नींद समाप्त हो गयी थी। अगर कभी नींद आ भी जाती तो वह केवल दुःस्वप्न ही देखा करता था।

महिला के चेहरे से घूंघट हटाते ही स्वदेश पहचान गया।

'कैसे हो?'

स्वदेश चौंक पड़ा। संध्या की यह क्या शकल हो गयी है! पूछा, 'तुम? तुम अन्दर कैसे आयीं?'

संध्या बोली, 'मेरे साथ इन लोगों की जान-पहचान हो गयी है। ये लोग मुझे आने देते हैं। उस दिन तुम घर क्यों नहीं आये? मैं शाम से बैठे-वैठे अन्त में लेट गयी। लेकिन नींद नहीं आयी। आख़िर पुलिस-थाने में ख़वर दी। वे भी कोई कुछ न वता सके। तुम कुछ वताते क्यों नहीं? अच्छा, एक बात वताओगे?'

स्वदेश बोला, 'और मुझे भी तुम्हारी कोई ख़वर नहीं मिली।

जानती हो, रात-भर मुझे बिलकुल नींद नहीं आती। यहाँ मैं किस तकलीफ़ में हूँ, यह तुमसे क्या बताऊँ? मुझे कब छोड़ेंगे, यह भी कोई कुछ नहीं बताता।

'लेकिन इन लोगों ने पकड़ा क्यों? तुमने किया क्या था?'

स्वदेश बोला, 'वही जो तुम्हारे ट्रंक से मैं तुम्हारा पिस्तौल उठा लाया था, वही मेरे बैग में इन लोगों को मिल गया था।'

'तो उसे तुम ही उठा लाये थे?'

स्वदेश बोला, 'मुझे डर था कि तुम उससे किसी की हत्या न कर दो।'

संध्या बोली, 'हत्या करने के लिए ही तो मैंने उसे रखा हुआ था।'

'उससे किसकी हत्या करतीं?'

संध्या हँसने लगी। बोली, 'बंगाल में क्या हत्या करने लायक़ लोगों की कमी है?'

'तीर्थ आदि तो अच्छे हैं?'

'अच्छे कैसे रहेंगे! हाँ, कह सकते हैं कि ज़िन्दा हैं, अभी भी मरे नहीं हैं। मरने के लिए वे सब तैयार हो रहे हैं।'

'मकान-मालिक शक्तिधर बाबू ने फिर तो कोई गड़बड़ नहीं की?'

संध्या बोली, 'नहीं।'

'तुम्हारा इतने दिन से ख़र्च कैसे चल रहा है?'

संध्या बोली, 'देख नहीं रहे हो, शरीर पर एक भी गहना नहीं है।'

स्वदेश बोला, 'सचमुच तुम बहुत तकलीफ़ में हो। मैंने कहा था कि तुम्हें आराम से रखूँगा। लेकिन अपनी बात खुद ही न रख सका।'

संध्या बोली, 'सुख देने के मालिक क्या तुम हो? क्या कोई किसी को सुख दे सकता है? जहाँ समाज की हालत ही ऐसी हो वहाँ सुखी रहना क्या सम्भव है?'

उसके बाद कुछ रुककर बोली, 'अब मैं चलूँ, मेरा वक़्त हो गया है, और ये लोग मुझे यहाँ रुका न रहने देंगे।'

कहकर जैसे आयी थी वैसे ही बाहर की ओर जाने लगी। स्वदेश ने पुकारा, 'संध्या, संध्या!'

उसने पुकारा तो लेकिन गले से आवाज़ न निकली। एक बार फिर कोशिश की। जी-जान से कोशिश करते ही नींद टूट गयी। स्वदेश ने अपने चारों ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखा। वह पसीने से बिलकुल भीग गया था। नाक से दुर्गन्ध आ रही थी। मच्छर काट रहे थे। झटपट उठकर कमरे में टहलने लगा।

सवेरे अस्पताल के डॉक्टर ने पूछा, 'क्या रोज़ ही सपना देखते हैं?'

स्वदेश बोला, 'हाँ, रोज़।'

डॉक्टर साहब ने एक टिकिया दी। बोले, 'यह टिकिया रात को सोने के पहले खा लेना। देखेंगे कि पूरी रात एक करवट में बीत जायेगी।'

स्वदेश ने अपनी कोठरी में आकर टिकिया को पैरों से कुचल डाला। वह क्यों सोये ? सोने से तो संध्या को न देख सकेगा। नींद न आये, फिर भी वह संध्या को रोज़ रात को देख तो लेता है। स्वप्न ही सही। संध्या को सपने में देखकर भी तो खुशी होती है।

जेल के फाटक के आगे कहने को दिन में सुबह-दोपहर—हमेशा ही छोटी-मोटी भीड़ लगी रहती है। सामने की सड़क पर से बस के आगे-पीछे आदमियों की भीड़ झूलते हुए जाती है। कोई तो काम से जाता है, कोई बिना काम जाता है। उस दिन एक साधु की तरह का आदमी गाना गाते-गाते जा रहा था। संसार में जो इतनी समस्याएँ हैं, इतने दुख हैं, उधर मानो उसकी दृष्टि ही नहीं थी। अपने में मग्न वह गीत गाता जा रहा था—गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का एक पद गा रहा था :

गिरा अरथ जलवीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद जिन्हहि परमपद खिन्न ॥

और लोगों की तरह मुक्ति ने भी गाना सुना। अपने बैग में से एक चवन्नी निकालकर साधु को देने लगी। साधु ने गाना रोककर मुक्ति की ओर देखा। बोला, 'माँ, मैं भीख माँगने के लिए नहीं गाता हूँ।'

मुक्ति को बहुत शर्म आयी। बोली, 'बाबा, मुझे माफ़ कीजिये, मैंने ग़लत समझा। आपका गाना मुझे बड़ा अच्छा लगा, इसीलिए।'

साधु बोला, 'सीता-राम की कथा अच्छी लगेगी ही, माँ ! राम-सीता के सिवा मनुष्य की और गति नहीं है...।'

कहकर साधु ने फिर गाना शुरू किया :

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परि हरि राम भक्ति सुरसरिता आस करत ओस कन की।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की ॥

सहसा फाटक का दरवाज़ा खुल गया; फिर गाना न सुनायी पड़ा। फाटक खुलने के साथ-ही-साथ स्वदेश बाहर निकल आया था। उसके चेहरे पर दाढ़ी-मूँछें थीं। फाटक से निकलकर वह मुख्य सड़क पर पैर बढ़ाने जा ही रहा था कि अचानक किसी ने पीछे से पुकारा, 'दादा...!'

स्वदेश ने पीछे घूमकर देखने पर भी किसी को नहीं पहचाना। मुक्ति ने आगे बढ़कर कहा, 'मुझे पहचान नहीं पा रहे हो, दादा? मैं मुक्ति हूँ, तुम्हारी यह क्या शकल हो गयी है!'

मुक्ति की माँग में सिन्दूर चमक रहा था।

मुक्ति बोली, 'तुम नहीं थे तभी मेरा ब्याह हो गया। यह देखो, इनके साथ ही मेरा ब्याह हुआ है।'

बग़ल में एक सूटधारी सज्जन खड़े थे। उन्होंने स्वदेश के पैरों को हाथ लगाकर प्रणाम किया।

मुक्ति बोली, 'मैंने पता लगा लिया था कि आज ही तुम्हें छोड़ा जायेगा। इसी से राह देख रही थी।'

उसके बाद ही सहसा पूछा, 'तुमने सुना है कि बाबा मर गये?'

स्वदेश चौंक पड़ा। बोला, 'नहीं तो। कैसे, कब?'

मुक्ति बोली, 'दो बरस पहले।'

दो बरस! स्वदेश मानो मन-ही-मन हिसाब लगाने लगा। तो उसने जेलख़ाने में कितने दिन काटे? कैसे, कब यह सब हो गया—उसका उसे पता ही न चला।

मुक्ति बोली, 'पता है, बाबा एक मीटिंग में लेक्चर देने गये थे, वहीं उनका नक्सल लोगों ने खून कर दिया।'

स्वदेश बोला, 'नक्सलों ने?'

मुक्ति बोली, 'हाँ, तुम थे नहीं, कोई नहीं था। मेरे दिन कैसे बीते, वह अगर तुम जानते! मैं तो ससुराल चली गयी थी। बलरामपुर के साथ कोई सम्पर्क नहीं था। सारा घर अब इसीलिए बहुत सूना लगता है। अब तुम आ गये, अब फिर भी घर थोड़ा अच्छा लगेगा।'

स्वदेश बोला, 'मैं तो अभी बलरामपुर न जा सकूँगा। मुझे एक काम है।'

मुक्ति बोली, 'यह क्या, मैं तो तुम्हारे लिए खाने-पीने का पूरा इन्तज़ाम करके आयी हूँ। न हो तो काम बाद में कर लेना। अभी इतने दिन बाद जेल से निकले हो, थोड़ा आराम कर, न हो तो, कल वहाँ जाना; नन्द-दा हम लोगों के लिए खाना-वाना लेकर बैठे हैं।'

स्वदेश बोला, 'नहीं रे, अभी मुझे एक बार वहाँ जाना ही होगा।'

कहकर उसने जाने के लिए पैर बढ़ाये।

मुक्ति बोली, 'अभी तुम कहाँ जाओगे, बताओ तो, दादा ?'

स्वदेश बोला, 'पूर्व पुटियारी।'

मुक्ति बोली, 'वहाँ कौन है ?'

स्वदेश ने कहा, 'संध्या।'

मुक्ति बोली, 'मैं समझ रही थी कि वही सोच रहे होंगे, लेकिन मैं कहती हूँ कि वह वहाँ नहीं है।'

स्वदेश ने ताज्जुब से मुक्ति की ओर देखा। बोला, 'नहीं है माने ?'

मुक्ति बोली, 'मुझे मालूम है, वह वहाँ नहीं है।'

'तुझे कैसे मालूम हुआ ?'

मुक्ति बोली, 'हाँ दादा, मुझे सब पता है। वह वहाँ होती तो मेरा ब्याह न होता।'

स्वदेश बोला, 'क्या बेकार की बातें तू कह रही है ?'

मुक्ति बोली, 'हाँ, मैं जो कह रही हूँ ठीक ही कह रही हूँ। तुम जब नहीं थे तो बाबा ने संध्या के हाथ-पैर जोड़कर तुम्हें छोड़ देने को कहा था। मेरे भले के लिए उसने तुम्हें छोड़ दिया था। नहीं तो मेरा ब्याह रुका जा रहा था। मेरे लिए ही उसने तुम्हें छोड़ दिया था, दादा ! जिससे तुम उसे खोज न सको, इसीलिए वह तुम्हारे जीवन से निकल गयी थी।'

'तुझे ठीक मालूम है ?'

'हाँ, बाबा उसे चालीस-पचास हज़ार रुपये दे आये थे। अपने ब्याह के बाद उसे सब बताने मैं पूर्व पुटियारी गयी थी। लेकिन सुना कि वह उसी दिन घर छोड़कर कहीं चली गयी। किसी से बताकर नहीं गयी।'

स्वदेश बोला, 'वह होगा, फिर भी मैं एक बार वहाँ जाऊँगा। जाकर अपनी आँखों से सब देख आऊँगा। तुझे पता नहीं है मुक्ति, बाबा ने उसे किस तरह बरबाद कर दिया ! बाबा ने उनका मकान जला दिया, बाबा ने उसके बाप-माँ सबको जलाकर मार डाला। मुझे एक बार वहाँ जाना ही होगा। वह जहाँ भी रहे, उससे मुझे एक बार मिलना जरूर है !'

कहकर स्वदेश फिर वहाँ न रुका। उन लोगों को वहीं छोड़ सड़क पकड़कर सीधा चलने लगा।

वहुत समय पहले किसी दिन मानव की मुक्ति की खोज का जो अभियान आरम्भ हुआ था, वह उस समय वीसवीं सदी के सप्तम दशक में आकर ठिठककर खड़ा हो गया। क्या केवल भगवान बुद्ध ? उसके वाद तो कितने महापुरुष आकर अहिंसा कर वाणी का प्रचार कर गये। वौद्ध, जैन, हिन्दू-वैष्णव, शाक्त महापुरुषों के आत्मत्याग के दृष्टान्त से युगों तक कितने ही मनुष्यों ने अनुप्राणित होकर मानव की ही मुक्ति के लिए सर्वस्व त्यागकर, अहिंसा की जय-पताका आकाश में फहरायी। सव लोग आज भी उनका स्मरण कर कृतार्थ होते हैं। कितने लोगों के घरों में आज भी उनकी मूर्ति पर माला अर्पित कर अपने को धन्य माना जाता है !

किन्तु अव ?

'तुम सुन लो कि मनुष्य की यह दुर्गति मैं सहन नहीं करूँगा। एक मनुष्य के अपमान का वदला अन्ततः मैं लूँगा। यहाँ जिन पर अत्याचार हुए हैं, यहाँ जो वंचित हैं, यहाँ जो सर्वहारा हैं, उनका संकट मैं अवश्य दूर करूँगा। मेरा और किसी पर दायित्व नहीं है। इतने दिन विश्व ब्रह्मांड की सारी सृष्टि में मैं उसी को ढूँढता फिर रहा हूँ। पुस्तकों के संसार के इतिहास में भी खोजता हूँ, विधि-शास्त्र में भी खोजता फिरा हूँ। लेकिन वह कहीं नहीं है। ऐश्वर्य में नहीं है, दारिद्रय में नहीं, ग्रहण के वीच नहीं, वर्जना के वीच भी नहीं है। है केवल प्रेम में। संध्या, तुम उस एक की ही प्रतीक हो, उसी एक में मैंने तुम्हें खोजकर पाया। तुम्हें और अपने को। तुम्हारा सहारा लेकर ही मैं अपने को खोज सका। किन्तु सवने मिलकर मुझे वहाँ से अलग कर लिया था। अव मैं फिर तुम्हारे साथ एकाकार हो जाऊँगा।'

सर्वजय वनर्जी की वात भी एक वार उसे याद आयी। उन्होंने कहा था, 'रुपया न होने से तुम्हारी इज्जत का क्या मूल्य है ? रुपया न होने से कौन तुम्हारी संभाल करेगा ?'

वावा ने भी वही कहा था। कहा था, 'और वहुत-से लोगों से तो तुमको और ज्यादा सिर ऊँचा रखना होगा। नहीं तो सवकी तरह वरावर वनकर रहने से तुम्हें कौन इज्जत देगा ?'

यही एक वात सभी उससे कहते आये थे। वावा से शुरू करके समाज में, संसार में, स्कूल में, कॉलेज में—सभी उसे वही एक ही वात सुनाते आये थे। लेकिन किसी ने तो नहीं कहा: 'तुम सवके साथ वरावर रहो, ऊँच-नीच, छोटे-वड़े, सवको वरावर समझकर देखना सीखो। किसी ने तो नहीं कहा कि इस विश्व चराचर की अनन्त परस्पर विरोधी शक्तियों के

साथ अनन्त छोटे-बड़े, अनन्त खींच-तान के साथ सामंजस्य का साधन करो।'

पूर्वं पुटियारी के शक्तिधर बाबू दुनिया वाले आदमी थे। वे स्वदेश को देखकर ताज्जुब में आ गये। बोले, 'आप? इतने बरस बाद आप इस बेवक़्त कहाँ से? स्वदेश बाबू, आपकी यह क्या शकल हो गयी है?'

स्वदेश ने उन सब बातों का जवाब न देकर कहा, 'बता सकते हैं कि संध्या कहाँ है?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'अरे, वह क्या, आज की बात है? वह तो मुझे कहे-सुने बिना ही एक दिन कहीं चली गयी।'

'बिना कहे-सुने के मतलब?'

'हाँ मशाई, एक दिन मेरा बाक़ी किराया तख़्त पर रखकर न कुछ कहना न सुनना, एकदम ग़ायब। जाते वक़्त बात कहकर भी तो जाना होता है। वह भी नहीं। एकदम जिसे कहते हैं लापता।'

स्वदेश बोला, 'क्या आपको पता है कि मेरी ग़ैरहाज़िरी में कोई आदमी उसे रुपये देने आया था? कोई बूढ़ा-सा आदमी?'

शक्तिधर बाबू तो और भी ताज्जुब में पड़ गये। बोले, 'रुपये? कोई बूढ़ा-सा आदमी? कहाँ मशाई, किरायेदार के यहाँ कौन आता है, कौन जाता है, या कौन क्या कर रहा है—यह सब छिपकर सुनने की मेरी आदत नहीं है।'

स्वदेश बोला, 'तो आपको कुछ नहीं मालूम?'

शक्तिधर बाबू बोले, 'नहीं।'

'ठीक है,' कहकर स्वदेश वहाँ से उठकर चल दिया।

शक्तिधर बाबू कुछ देर ताज्जुब से उधर देखते रहे। यह आदमी पागल है, या इसका दिमाग़ ख़राब हो गया है? दुनिया में कैसे-कैसे अजीब लोग हैं, कोई ठीक नहीं। इस आदमी ने क्यों तो उसका मकान किराये पर लिया था और इतने दिनों क्यों लापता हो गया था, कौन जाने! लड़की कौन थी? और वही इस तरह बिना कहे-सुने क्यों चली गयी...? यह वह अपनी अक़्ल से कुछ भी समझ न पाये। अन्त में घर के अन्दर की ओर जाने लगे। पत्नी को बुलाते हुए कहने लगे, 'अरे, सुन रही हो...।'

'अरे, स्वदेश तू ?'

उखड़ा-उखड़ा चेहरा देखकर एककौड़ी भी पहले तो उसे पहचान न पाया। कितने दिनों से उसे नहीं देखा था। एककौड़ी का हाल भी दूसरी तरह का हो गया था।

वोले, 'मैंने तुझे कितना खोजा, पता है ? तू तो देश गया और लौटा नहीं। उसके वाद मैंने तुझे तलाश करने के लिए एक नौकरी कर ली।'

'नौकरी ? मुझे तलाश करने के लिए ?'

एककौड़ी वोला, 'हाँ रे, काम में भी काम था घूमते फिरना। मेरा काम था तुझे खोजते फिरना। और उनका काम था एक लड़की को तलाश करना। सिर्फ़ घूमते फिरना। अन्त में इतने दिनों वाद तुझे तलाश कर ही लिया।'

'लड़की को खोजते फिरना ? कौन लड़की ?'

'वह भी एक क़िस्सा है, रे।'

स्वदेश वोला, 'किसकी लड़की ? उसको तलाश करते घूमने में तुम्हें क्या फ़ायदा ?'

एककौड़ी वोला, 'भाई इस कलकत्ता शहर में अजीव क़िस्सा हुआ। देवकान्त भद्र नाम का एक आदमी लड़कियों का रोजगार करता है और लड़कियों की ख़रीद-फ़रोख्त करता है। उसकी उसी तरह की एक लावारिस लड़की उसके चंगुल से निकल गयी। उसे खोज निकालना होगा हमें ; यही थी हमारी नौकरी...।'

स्वदेश वोला, 'देवकान्त भद्र ?'

'हाँ रे, एक तो खुद महा अभद्र, और नाम देवकान्त भद्र !'

'उस लड़की का क्या नाम था ?'

एककौड़ी वोला, 'संध्या।'

'संध्या' ! स्वदेश चौंक गया, मानो उसे विश्वास न हुआ हो। बोला, 'संध्या ?'

'हाँ, संध्या घोष। नाम सुनकर तू चौंक क्यों पड़ा ?'

स्वदेश ने उस वात का जवाव न देकर कहा, 'वता सकते हो, संध्या कहाँ है ?'

एककौड़ी वोला, 'विलकुल वता सकता हूँ। इतने दिनों तक तो उसे तलाश करते-करते ही घूमता रहा। वह अव जेलख़ाने में है।'

'जेलख़ाने में माने ? उसने क्या किया था।'

एककौड़ी वोला, 'उसने खून किया था।'

'खून ! खून किया था ? किसका ?'

एककौड़ी बोला, 'तेरे बाबा हरिसासन चट्टोपाध्याय का। तेरे बाबा का खून हो गया है। तूने कुछ नहीं सुना ?'

उस बात का कोई जवाब न देकर वह पागल की तरह चिल्ला पड़ा। बोला, 'पहले यह बता कि संध्या किस जेलखाने में है ? बता, कहाँ जाकर मैं उससे मिल सकूँगा ? बता, जो कुछ मालूम हो पहले वही बता। मैं उससे मिलना चाहता हूँ, बता, जल्दी बता।'

एककौड़ी जोरों से हँस पड़ा। बोला, 'तू भी आखिरकार लड़कियों के फेर में पड़ गया ! ओ रे, मैं तुझे सावधान किये दे रहा हूँ, शेयर मार्केट और लड़कियाँ—दोनों एक ही चीज़ हैं। इन दोनों को जिस तरह लेना है वैसे ही छोड़ना भी है। उस सब में तू मत पड़ना, ख़बरदार !'

उस वक़्त स्वदेश धीरज खो रहा था। एककौड़ी के कंधों पर हाथ रखकर झकझोरते हुए बोला, 'मैं जो पूछ रहा हूँ वह बता, पहले मेरी बात का जवाब दे।'

उस वक़्त देखते-देखते सड़क पर और भी दो-चार निकम्मे लोग जुट गये थे। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पास आकर पूछने लगे, 'क्या हुआ, मशाई ? क्या हुआ ! मारपीट क्यों कर रहे हैं ?'

एककौड़ी के कुछ जवाब देने के पहले ही एक साधु गाते-गाते आ पहुँचा :

जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम नहिं राम।
एक संग निवसत नहीं तुलसी छाया घाम॥

एककौड़ी बोला, 'तुम क्यों आये बाबा, हमारे पास पैसे-वैसे नहीं हैं। जेब बिलकुल ख़ाली है। इस वक़्त माफ़ करो, बाबा !'

साधु फिर गाने लगा :

राम सों बड़ो है कौन मो सों कौन छोटो।
राम सों खरो है कौन मो सों कौन खोटो॥

एककौड़ी ने जेब से एक पैसा निकालकर कहा, 'इस वक़्त तुम हमें तंग न करो बाबा, पैसा लेकर चले जाओ, हम इस वक़्त बहुत व्यस्त हैं।'

साधु बोला, 'मैं भीख नहीं चाहता बाबा, राम जिसके सहाय हैं उसे कभी भीख माँगने की जरूरत नहीं होती।'

कहकर फिर गाते-गाते चला गया।

स्वदेश ने फिर एककौड़ी से कहा, 'बता, वह कहाँ है ?'

एककौड़ी बोला, 'बता तो, क्यों ? उस लड़की के लिए तू इतना परेशान क्यों है ? देवकान्त भद्र की बात समझ सकता हूँ, उसने उसे इतने दिन खिलाया, पहनाया, अब भाग जाने से तो उसे लगेगा ही। लेकिन तुझे

क्या ? उसकी ख़बर पाने के लिए तुझे इतना सिरदर्द क्यों है ? वह तेरी कौन लगती है ?'

'तुझे नहीं पता, वही मेरी सब-कुछ है।'

एककौड़ी विद्रूप की हँसी हँसा। बोला, 'यह क्या रे ? तू डूबे-डूबे पानी पीता है ! पहले तो तेरा यह स्वभाव नहीं था। लेकिन अन्त में तुझे लड़की खा ही गयी ? छि:, छि: ! आख़िर में यह अधःपतन हुआ ?'

स्वदेश उस समय भी कहे जा रहा था, 'तू पहले बता कि उसे कितने बरस की जेल की सज़ा हुई है ?'

एककौड़ी बोला, 'अरे जेल नहीं, जेल नहीं, फाँसी।'

'फाँसी ? संध्या को फाँसी हुई है ?'

एककौड़ी बोला, 'न, फाँसी का हुक्म हुआ है, अभी फाँसी लगी नहीं है, लगेगी। लेकिन उससे तो तुझे मिलने नहीं देंगे।'

स्वदेश स्तम्भित की तरह एककौड़ी के दोनों हाथ उसी तरह पकड़े कुछ देर चुप रहा। उसके बाद बोला, 'मैं उससे ज़रूर मिलूँगा। जैसे भी हो ज़रूर मिलूँगा...।' कहकर एककौड़ी को छोड़कर भागने लगा।

एककौड़ी पुकारता रहा। पीछे से पुकारने लगा, 'अरे सुन, सुन !'

सहसा वही साधु फिर लौट आये। बोले, 'मुझे पुकार रहे हो, बाबा ?'

एककौड़ी चिढ़कर दूसरी ओर चला गया। साधु अपने-आप चलते-चलते गाने लगा :

तू दयालु, दीन हौं तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।

कहना पड़ेगा कि सर्वजय बनर्जी भले आदमी थे। स्वदेश को देखकर पहले तो वह अवाक हो गये। इतने दिनों बाद स्वदेश से फिर मुलाक़ात होगी, यह वह सोच भी न सकते थे। हरिसाधन उनके एक ही क्लास के मित्र थे। उनके बेटे का हित माने उनका अपना ही हित हुआ।

स्वदेश को देखकर उन्हें बड़ा दुख हुआ। बोले, 'क्या कहूँ, हमारे पिछले समय के ख़यालों से तुम्हारे इस वक़्त के ख़यालों का कोई मेल नहीं

है। इसीलिए इतने अच्छे आदमी होते हुए भी तुम्हारे पिता को जान देना पड़ी। पर देखो, एक दिन आयेगा जब उन्हीं हरिसाधन की पत्थर की मूर्ति बनवाकर इस कलकत्ता की किसी सड़क के मोड़ पर बिठायी जायेगी। लड़के स्कूलों की किताबों में हरिसाधन की जीवनी पढ़ेंगे। एक दिन महात्मा गांधी की भी यही हालत हुई थी। अब हरिसाधन की भी वही दशा हुई...।'

उस समय स्वदेश के कानों में एक बात भी सुनायी न पड़ रही थी। वह सिर्फ़ चाह रहा था संध्या से एक बार जेलख़ाने में भेंट करा देने की व्यवस्था करा देना। सर्वजय बाबू के कोशिश करने से स्वदेश के लिए वह व्यवस्था सम्भव हो सकती है।

अन्त में वह बोले, 'तो जिसने तुम्हारे बाबा की हत्या की उससे भेंट करने का तुम्हें इतना आग्रह क्यों है? सुना है कि वह तो नक्सल लड़की है।'

यह सब बेकार बातें सुनने का सचमुच स्वदेश को समय न था। सर्वजय बाबू बोले, 'अच्छा, कोशिश करके देखूंगा, यह चिट्ठी दे रहा हूँ। यह लेकर तुम जेल-अधिकारियों से मुलाक़ात करो।'

उससे ही काम हो गया। विशेष रूप से जब उसने बताया कि वह हरिसाधन चट्टोपाध्याय का ही बेटा है, उस समय बात और भी थोड़ी आसान हो गयी।

अफ़सर बोले, 'आप कुछ दिन पहले नहीं आ सके? कल ही तो आसामी को फाँसी देने की सब व्यवस्था ठीक हो गयी है।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन फाँसी कुछ दिन और रोकी नहीं जा सकती?'

'अफ़सर यों तो बहुत सख्त आदमी था। लेकिन हरिसाधन चट्टोपाध्याय का लड़का समझकर शायद उसे कुछ दया आयी। बोला, 'लेकिन आसामी से मिलने क्यों जा रहे हैं? उससे आपको क्या फ़ायदा? आसामी तो प्रेज़िडेण्ट से दया की प्रार्थना भी नहीं करना चाहती।'

स्वदेश बोला, 'मैं उससे सिर्फ़ दो-एक बातें कहूँगा। उससे दो-एक सवाल करूँगा।'

वह सज्जन बोले, 'फाँसी तो आसामी को पहले ही हो जाती, लेकिन गड़बड़ हुई सिर्फ़ एक पॉइंट को लेकर। आसामी से पूछा गया—उसकी अन्तिम इच्छा क्या है?'

'उसकी अन्तिम इच्छा क्या है?'

'आसामी ने कहा था कि उसे जब फाँसी लगे तो 'जन-गण-मन' का राष्ट्रीय गीत बजाया जाये। लेकिन हमें उसमें आपत्ति है। हमने ऊपर वालों से पूछा था। ऊपर वालों का जवाब आने में ही छः महीने का समय

लग गया। उसके बाद आसामी ने एक अपील की। उससे भी बात में और देर हो गयी। मामला और भी ऊपर मिनिस्ट्री के पास गया। वहाँ चिट्ठी जाने, जवाब आने में ही इतनी देर लग गयी।'

'क्यों, 'जन-गण-मन' गान बजाने में आपको आपत्ति क्यों हुई ?'

सज्जन बोले, 'उसे बजाने को मान लेने से तो राष्ट्रीय गान का अपमान होता। उसकी अनुमति किस तरह दी जा सकती है ?'

अन्त में तय हुआ कि केवल पन्द्रह मिनट के लिए स्वदेश आसामी से मुलाक़ात और बातें कर सकता है। रुकने का समय न था। स्वदेश विदा लेकर निकल पड़ा। जब जेलख़ाने के अन्दर फाँसी की कोठरी के सामने जाकर खड़ा हुआ तो एक पुलिस-इंस्पेक्टर साथ में था।

संध्या छड़ों के सामने आ पहुँची।

'संध्या !'

संध्या बोली, 'तुम आ गये ? इतने दिनों तक कहाँ थे ?'

स्वदेश के चेहरे की ओर देखकर संध्या समझ गयी कि वह रो रहा है। पूछा, 'रो क्यों रहे हो ? मैंने रोने का तो कोई काम किया नहीं। मैंने जो कुछ किया अच्छा ही सोचकर किया। फिर भी तुम रो रहे हो ?'

स्वदेश ने अपने बारे में बताया। क्यों वह किस कारण से इतने दिनों तक जेल में रहा, यह भी बताया, वहाँ से निकलकर ही वह सीधे यहाँ आया—यह भी बताया। उसके बाद कहा, 'इतनी देर से ख़बर मिली कि मैं यह नहीं समझ सका कि क्या करूँ? तुमने जो कुछ किया बुरा नहीं किया, लेकिन तुम्हारे चले जाने के बाद मैं क्या करूँगा ? मेरी हालत पर तुम ज़रा सोचो।'

'क्यों, तुम पहले भी जो करते थे वही करोगे। जब मन ख़राब हो तो मेरी बात सोच लेना। मुझे भी तो तुम्हारी बात सोचकर ही हमेशा हिम्मत मिलती रही।

स्वदेश बोला, 'मेरा मन काश तुम्हारी तरह कठोर होता !'

संध्या बोली, 'इस ज़माने में मन कड़ा न रखने से तो तुम हार जाओगे, स्वदेश-दा ! देखो तो, मैं किस तरह हँस रही हूँ !'

'एक बात कहूँ ?'

'क्या ?'

'देखो, अभी तुम्हारे बचने का एक रास्ता है। राष्ट्रपति के पास अगर तुम एक प्रार्थना करो कि तुम दुखी हो, अनुतप्त हो तो प्रेज़िडेंट में क्षमता है कि वह तुम्हारी फाँसी माफ़ कर दें।'

संध्या गरज उठी, 'क्या ? मैं अनुताप करूँगी ? मैं क्षमा चाहूँगी ?

तुम कह क्या रहे हो ? मैंने कोई ग़लत काम तो नहीं किया है। मैंने जो कुछ किया, सब-कुछ समझ-बूझकर ही किया। तो देख रही हूँ कि इतने दिन तक तुम मुझे पहचान ही नहीं पाये।'

स्वदेश बोला, 'लेकिन यह तो सभी करते हैं, संध्या ! ऐसा करने में तो कोई शर्म की बात नहीं है।'

संध्या बोली, 'लेकिन मैं क्या और सब की तरह हूँ ? तुम क्या यही सोचते हो ?'

पास से इंसपेक्टर ने आकर टोका। 'वक़्त हो गया है। चलिये। बाहर चलिये।'

अब चारा नहीं था। स्वदेश पीछे घूमकर देखने लगा। एक बार पुकारा, 'संध्या...!'

संध्या ने कोई जवाब नहीं दिया। स्वदेश को जाते हुए एकटक देखती रही।

ईश्वर की पृथ्वी पर मनुष्य ने अनेक बार सत्य के लिए आत्मोत्सर्ग किया है। सत्य की तलाश में कोई पर्वत पर गया, कोई अरण्य में गया, कोई गुहा में। फिर किसी ने जनपद-जनपद में ईश्वर के नाम का गायन करके सत्य का प्रचार करना चाहा। सत्य मानव के निकट इतना दूर, इतना दुर्गम, दुरधिगम्य है, और उसी सत्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों को, सारे स्वभाव को किस प्रकार उलट-पुलट करना पड़ता है, उसका इतिहास छपी किताबों में भी लिखा है।

लेकिन बीसवीं शताब्दी के इस दशक में उसका एक और जाज्वल्यमान प्रमाण मिला।

स्वदेश की सारी रात किस तरह बीती, उसका साक्षी शायद वह स्वयं ही था। सारा कलकत्ता शहर जब नींद में बेहोश था, फुटपाथ पर, पार्कों में जो व्यक्ति छटपटाता घूम रहा था उसे कोई नहीं देख पाया; देखता तो कोई पहचान भी न पाता।

लेकिन रात जब समाप्त होने को हुई तो वह फिर जेलख़ाने के सामने फाटक पर आकर खड़ा हो गया। फ़ौलाद का बड़ा भारी दरवाज़ा था। जेलख़ाने की घड़ी में टन्-टन् कर रात के तीन बजे। घंटा तीन बार बजा। और मानो उसके कलेजे पर बड़े भारी हथौड़े की तीन चोटें पड़ीं। इसके बाद साढ़े तीन बजेंगे। और उसके बाद चार। इस बीच शायद संध्या को नींद से जगा दिया गया हो। तैयार हो जाओ। अगर तुम सत्य को आराध्य मानती हो तो उसका एवज़ाना दो। चरम क्षतिपूर्ति कर तुम

सत्य की मर्यादा रखो। ईश्वर का स्मरण करो, जो ईश्वर तुमको तुम्हारे किये कर्मों के लिए क्षमा करेंगे।

जेल के फाटक पर पुलिस का पहरा था। उसके पास जाकर स्वदेश ने अन्तिम प्रयत्न किया।

'सिपाहीजी, मुझे एक बार अन्दर जाने देंगे।'

सिपाही ने पूछा, 'क्या काम है ?'

'आज एक व्यक्ति को फाँसी होगी। मैं उससे आख़िरी बार भेंट करूँगा।'

'तुम कौन हो ?'

स्वदेश बोला, 'मैं कोई नहीं हूँ।'

सहसा फ़ौलाद का फाटक खुल गया, और साथ-ही-साथ दो-तीन गाड़ियाँ एक के बाद एक अन्दर गयीं। लगा कि डॉक्टर, मजिस्ट्रेट, जेलर और अन्य लोग थे। वे फाँसी के वक़्त मौजूद रहेंगे। वे देखेंगे कि फाँसी के क़ायदे-क़ानून में कोई ग़लती न हो।

स्वदेश भी घुसने जा रहा था, लेकिन सिपाही बहुत सख्त मिजाज आदमी था। स्वदेश के मुँह पर ही फाटक बन्द कर दिया।

उस दिन सर्वंजय बनर्जी बहुत रात तक काम कर सोने गये। नींद टूटने में थोड़ी देर होने की बात थी। घर पर कह रखा था कि कोई उन्हें जगाये नहीं। लेकिन सवेरे पाँच बजे ही उन्हें उनकी बेटी जयन्ती ने पुकार लिया। पहली मंज़िल पर उनका चेम्बर था और चेम्बर की तीसरी मंज़िल पर उनका सोने का कमरा था। नींद के खुलते ही उन्होंने पूछा, 'क्या हुआ ?'

जयन्ती बोली, 'बाबा, तुम्हारे चेम्बर में आग लग गयी है।'

सत्यानाश हो गया! तमाम लोगों के तमाम मुक़दमों के दस्तावेज़, तमाम क़ानूनी किताबें उनके चेम्बर में थीं, क्या सब जल गयीं? किसने आग लगायी? क्या बिजली के तार में शॉर्ट हो गया?

लेकिन उस वक़्त इतनी बातें करने का किसी को वक़्त न था। झट-पट उसी हालत में चेम्बर में जाते-जाते ही कुछ वक़्त बरबाद हो गया।

तीन-मंजिले से दो-मंजिले होते हुए चेम्बर जाने के पहले ही देखा कि सारी जगह में धुआँ-ही-धुआँ भर रहा है। दरवान मालिक को देखते ही सामने आया। उन्होंने पूछा, 'हरकिशन, क्या हुआ ?'

हरकिशन बोला, 'हुजूर, रात के वक्त वकील साहव ने आकर कहा, अन्दर जाऊँगा। काम है। मैंने भी फाटक खोल दिया—उसके वाद...।'

सर्वजय वनर्जी चेम्बर के अन्दर घुसे। देखा कि ताज्जुब की बात है। स्वदेश ने उनके शेल्फ़ से तमाम क़ानून की किताबों को फ़र्श पर फेंककर आग लगा दी है। सर्वजय वनर्जी ने जाकर साथ-ही-साथ स्वदेश का हाथ पकड़ लिया। बोले, 'तुम यह सब क्या कर रहे हो ?'

स्वदेश ने उनकी ओर उदास दृष्टि से देखा। बोला, 'आप कौन हैं ? कौन हैं आप ?'

सर्वजय वनर्जी इस बीच उसे पकड़कर कमरे के वाहर ले आये। उसके सारे शरीर में उस समय जलने के निशान थे। दरवान से कई वाल्टी पानी लाने को कहा। ओर भी कुछ लोग धुआँ देखकर जमा हो गये थे। स्वदेश ने उस ओर देखकर कहा, 'जला दो, सब किताबों को जलाकर राख कर दो।'

सर्वजय वनर्जी ने उससे पूछा, 'वह सब क्यों जला रहे हो ?'

स्वदेश बोला, 'सब झूठ हैं, इनमें सब बेकार बातें लिखी हैं।'

कहते-कहते वह रो पड़ा। दोनों हाथों से मुँह ढककर वह रोने लगा। 'सारी किताबों में झूठी बातें लिखी हैं; उन सबको जला दीजिये। आप लोगों ने सारी ग़लत किताबें पढ़ी हैं; उनमें मैं सच बात लिख जाऊँगा। सब-कुछ वदल गया है, और ढाई सौ बरस पहले अँग्रेजी की लिखी दंड-संहिता क्यों न बदलेगी ? अब उसकी जिन्दगी ख़त्म हो गयी है। वे कब के चले गये। लेकिन आप लोग उनके गढ़े हुए झूठ से क्यों चिपके पड़े हैं ? आप वह सब न पढ़ें, उनमें सारी झूठी बातें लिखी हैं। सारी झूठी बातें, सारी, सारी—जला दें, जल्दी जला दें !'

•

अचानक चारों ओर कहीं वड़ा भारी शोर उठा। 'वह देखिये, वह देखिये, सर ! पूरे जेलख़ाने के कैदी गा रहे हैं, सुनिये वे गा रहे हैं : जन-गण-मन अधिनायक...।'

सर्वजय वनर्जी ने स्वदेश के दोनों हाथ पकड़कर एक झटका दिया। बोले, 'कहाँ गा रहे हैं ? तुम क्या कह रहे हो ? मैं तो कुछ नहीं सुन पाता हूँ।'

स्वदेश बोला, 'सुन नहीं पा रहे हैं ? यह देखिये, डॉक्टर आ गया है, मजिस्ट्रेट आ गया है, जेलर आ गया है ! अब सुन रहे हैं ?'

उसके बाद जैसे किसी अदृश्य को लक्ष्य कर चिल्ला पड़ा, 'संध्या, तुम मर्सी पेटीशन करो, तुम प्रेज़ीडेंट के पास एक दर्ख़ास्त दो। लिख दो, तुमने ग़लती की है, कहो तुमने अन्याय किया है, कहो कि तुमने भूल की! कहो, संध्या, कहो! न, न, न, उसे गले में मत डालो, वह फाँसी की रस्सी है, वे लोग तुम्हें फाँसी देकर मार देना चाहते हैं।'

स्वदेश फिर चीख़ पड़ा, 'वह सुनिये सर, वह सुनिये...।'

सर्वजय बनर्जी ख़फ़ा होकर बोले, 'तुम क्या बेकार की बातें बक रहे हो! क्या सुनूँ? मुझे तो कुछ भी सुनायी नहीं देता।'

'नहीं सुन पाते हैं? सो कैसे सुन पायेंगे? कोई नहीं सुन पाता है। चंगेज ख़ाँ नहीं सुन सका, नवाब सिराजुद्दौला नहीं सुन सके, चर्चिल न सुन सके, हिटलर, मुसोलिनी नहीं सुन पाये। सुनने से देश के लोगों का भला जो होता! सुनने से देश के लोगों का मंगल जो होता!'

सर्वजय बनर्जी अब धैर्य न रख सके। चीखकर बोल पड़े, 'क्या वाही-तबाही बक रहे हो? चुप करो।'

स्वदेश ने अपनी आवाज़ को और भी ऊँचा किया, 'आपने सोचा है कि मुझे चुप कर आप पार पा जायेंगे? मुझे रोककर आप सबको रोक सकते हैं? आज आपने एक संध्या को फाँसी दी है। लेकिन जिस दिन हज़ारों-लाखों संध्या फाँसी के लिए गला आगे कर देंगी, उस दिन इतने फाँसी देने वाले लोग खोज सकेंगे? इतनी फाँसी की रस्सियाँ बाज़ार से ख़रीद सकेंगे?'

तभी स्वदेश को पकड़कर सब उसका मुँह बन्द करने की कोशिश करने लगे। स्वदेश उस समय भी जी-जान से कहने की कोशिश करता रहा, 'वह देखिये, संध्या हँस रही है, हँसते-हँसते संध्या फाँसी की रस्सी गले में डाल रही है। वह देखिये, जेलर वारंट पढ़ रहा है, देख सकते हैं न, संध्या के सिर पर वे लोग काली टोपी पहनाये दे रहे हैं।'

उसके बाद अपने मन से ही दूर जैसे किसी ओर देखकर चिल्लाकर पुकारने लगा, 'संध्या, संध्या, संध्या...!'

तभी फायर-ब्रिग्रेड को टेलीफ़ोन कर दिया गया था। उन्होंने क्षण-भर में आकर अपना काम शुरू कर दिया था।

और सबके पीछे खड़े-खड़े निःसंगभाव से जयन्ती सारा दृश्य एकटक देख रही थी। अब उसकी आँखों में भी आँसू आ गये।

उसी दिन सर्वजय बनर्जी ने हरिसाधन चट्टोपाध्याय की लड़की को टेलीग्राम कर दिया, 'आपके बड़े भाई पागल हो गये हैं, आप जल्दी आकर उसे यहाँ से ले जायें।'